प्रकाशक :
भारतोदय प्रकाशन,
२०४–ए, वैस्ट एण्ड रोड,
सदर, मेरठ

प्रथम संस्करण
वीर निर्वाण,सवत् २५००

मूल्य . चालीस रुपये

मुद्रक
निष्काम प्रेस,
मेरठ

जिनके आशीर्वाद से

'मित्र' को प्रकाश मिला

उन आराध्य मुनि

**श्री विद्यानन्द जी महाराज**

को

सार्चन समर्पित

चलते चलते राह हैं, बढ़ते बढ़ते ज्ञान ।
तपते तपते सूर्य हैं, 'विद्यानन्द' महान ॥
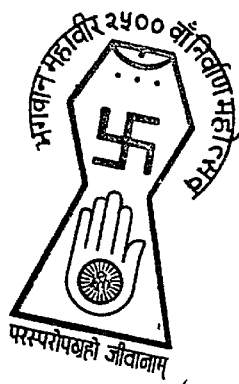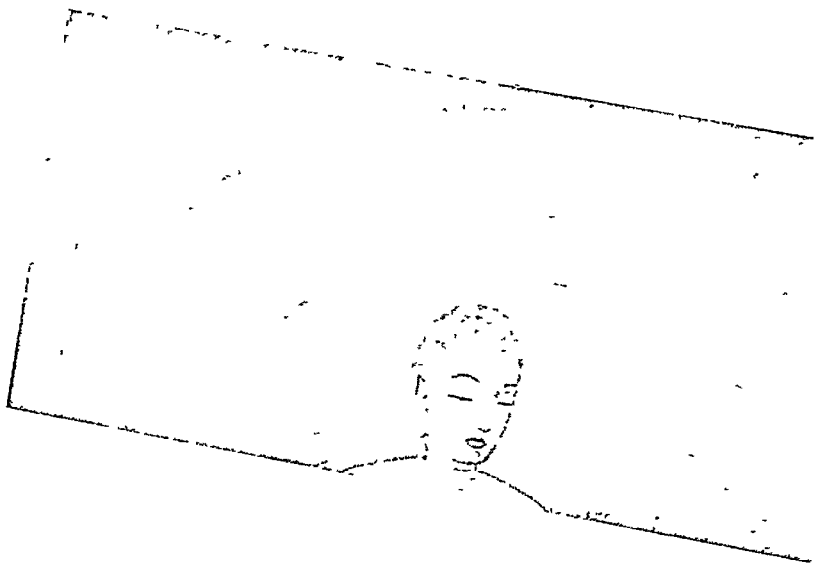
'मित्र'

# पूर्वालोक

विवेक जीवन का गुरु है। ज्ञान भगवान् का साक्षात्कार है। धर्म आदर्शो का आलोक है। धर्म एक है रूप अनेक। मूल उद्गम अनेक धर्म धाराओ मे वदल जाता है। धर्म जीवन की पगडण्डियो पर मर्यादाओ का सागर है। धर्म नैतिक नीतियो का सैद्धान्तिक सौन्दर्य है।

धर्म कण कण का सगीत है। धर्म शाश्वत है। धर्म वन्धमुक्त है, धर्म न्याययुक्त है। धर्म शक्ति और सिद्धि का मन्त्र है। धर्म से कर्म है, धर्म से ज्ञान है, ज्ञान से मोक्ष है। धर्म प्रकाश से प्रकट जीवन धन है। अणु धर्म से है, विभु धर्म से है। धर्म स्थायी है, अनन्त है। धर्महीन शव है, धर्मवीर शिव है।

एक के अनेक रूप प्रत्यक्ष हैं। स्यादवाद रूप-रूपान्तरो का दर्पण है। अनेकात मे मूल की परिवर्तनशील सज्ञाएँ दिखाई देती है। व्यष्टि की विविध चित्रशालाओ मे सन्दर्भ योग से एक ही रूप अनेक सम्वोधनो से पुकारा जाता है। प्रासगिक विशेषणो से विशेष्य वदल जाता है।

श्रद्धा मे भक्ति है ज्ञान मे शक्ति। जीवन सुख की खोज मे भटकता रहता है। सुख ऊँचे आदर्शो मे है। ससार मे कितना भी मिल जाए फिर भी और पाने की इच्छा वनी रहती है। इच्छाओ की पूर्ति और मुक्ति सन्तोष मे है।

सन्तोप उत्थान का सूर्य है। सन्तोष लोक मे आध्यात्मिक सौरभ है। सन्तोप मे सुख है असन्तोप मे दु ख। सन्तोष से उत्थान है असन्तोप से पतन। सन्तोष का अर्थ अकर्मण्यता नही कर्म करके सुखी होना है। सन्तोप ज्ञान का प्रथम चरण है। फल के लिए निष्फल चिन्ता क्यो करे? भगुर उपलब्धि के लिए दुखी क्यो हो? उपलब्धि के लिए तप किया जाता है। तप भी तव तक किया जाता है जव तक कर्मो का क्षय नही होता। कर्मो का क्षय ज्ञान से होता है। ज्ञान से जीव का विकास होता है। ज्ञान से लोक के आनन्द और मोक्ष के प्रकाश मिलते है। कैवल्य प्राप्त होता है।

चेतना चिन्मात्र की चमक है। मति की महिमा कमलो पर खेलती है। सरस्वती की सिद्धि लौकिक और पारलौकिक सुखो की निधि है। विद्या ऊहा की शक्ति है। ऊहा से अमृत मिलता है। ऊहा से उत्थान होता है। आप्त वाक्य पथ के प्रकाश है। विद्या धन अक्षय धन है। चेतना ज्ञान चक्षुओ की ज्योति है। ज्ञान सर्वतश्चक्षु है। ज्ञान धर्म का अन्तश्चेतन है। ज्ञान विचारो का आदर्श है। ज्ञान विज्ञान का सूर्य है।

ज्ञान विज्ञान का आध्यात्मिक स्वरूप है। जीव और पुद्गल क्रियाशील द्रव्य हैं। पुद्गल विज्ञान का तत्व ज्ञान है। पुद्गल वे द्रव्य है जिनके सघात से शरीर मन प्राण आदि का निर्माण होता है। पुद्गल ज्ञान का परमाणु प्रसाद है। ज्ञान-

हीन पुद्गल अचेतन है। चेतनायुक्त पुद्गल चराचर है। ज्ञान, धर्म और क्रिया की सगति से सस्कृति बनती है।

सस्कृति किसी देश एव जाति की जिन्दगी है। सस्कृति के बिना देश प्राण-हीन है। सभ्यता के सहारे अनुशासन, प्रशासन, स्वतन्त्रता एव सिद्धि सुरक्षित है। जो देश और जीवन सस्कृति के सहारे चलते है उनका उत्थान शाश्वत है।

असभ्यता और अज्ञान से असन्तोप बढता है। सभ्यता ज्ञान की गरिमा है। भोगो भरी दुनिया भगुर सुखो की दूकान है। ज्ञान और सस्कृति से सजी जिन्दगी आदर्शो की सुगन्ध है। दुर्गन्ध की ओर बढने वाले नरकगामी हैं। सुगन्ध की ओर दौड़ने वाले ज्ञान पुरुप औरो के लिए सुख और स्वयम् के लिए आनन्द रूप है।

ज्ञानियो के आदर्श रास्ते के दीपक है। आदर्शो के आइनो मे साधुओ की शक्ले दिखाई देती है। आदर्शो पर चलना दीपक की तरह जलना है। आदर्शो को अपनाना आग पर आसन लगाना है। आदर्शो के शिव को विषपान करना पडता है। आदर्श चरित्र उत्तम काव्यो के नायक बन जाते हैं। आदर्शो के उदाहरण अमर हैं। आदर्शो के आलम्बन आदित्य है। आदर्शो के प्रकाश आर्षेय है।

आदर्श धर्म उन समस्त सिद्धान्तो का एकाकार है जो सृष्टियो के तप से प्रकट है। धर्म समन्वय का शाश्वत उजाला है। धर्म उपासना का प्यारा भगवान है। धर्म सत्य का अबाध मार्ग है। धर्म विरक्त महात्माओ के आदर्शो का व्याकरण है। धर्म विभिन्न देशो और जातियो का जागरण है। धर्म स्याद्वाद का समन्वय ज्ञान है। स्याद्वाद विविध रूपो का निर्मल दर्पण है। विभिन्नता मे अभिन्नता का आदर्श अनेकान्तवाद का कल्पवृक्ष है। स्याद्वाद भीतर और बाहर का उजाला है।

स्याद्वाद से वस्तु की निश्चित अवस्था का बोध होता है। एक ही समय मे एक वस्तु के अनेक रूप होते है। एक अनार यदि बडे नारियल और छोटे अनार के पास रखा है तो नारियल से छोटा और अनार से बडा कहलायेगा। एक ही समय मे एक फल के अलग-अलग रूप हो जायेंगे। एक व्यक्ति अनेक आदमियो के मध्य विविध रूपो मे होता है, किसी का भाई, किसी का चाचा, किसी का पिता, किसी का मित्र, किसी का शत्रु और किसी का पुजारी।

स्याद्वाद जिसका जो स्वरूप है वही सामने रखता है। बडे को बडा और छोटे को छोटा मानता है। शुद्ध ज्ञान से सत्य का निरूपण करता है। स्याद्वाद सदा यही कहता है कि जो सत्य है वही सब का है। स्याद्वाद से सत्य मे दृढ निष्ठा होती है। स्याद्वाद से अहिंसा के आदर्श मिलते है, मानसिक अहिंसा की सात्विक प्रेरणा मिलती है, सर्वोन्नत ज्ञान की प्राप्ति होती है।

प्रत्येक वस्तु के आत्मभूत और अनात्मभूत लक्षण होते है। अपरिवर्तनीय स्वरूप आत्मभूत लक्षण है। यथार्थ रूप आत्मभूत है, परिवर्तनीय स्वरूप अनात्म-भूत है। स्याद्वाद गुणो का यथार्थ रूप है। स्यादवाद वास्तविकता का यथार्थ

दर्पण है। एक ही रग-रूप के व्यक्ति के एक ही समय मे अनेक चेहरे होते है। दृष्टि भेद और प्रकृति भेद से भाव भेद हो जाता है। भिन्न-भिन्न दृष्टियो मे एक ही प्राणी के इसलिए अनेक रूप होते है कि उसमे भी रूप भेद होता है। आलम्बन और आश्रय दोनो ही के अपरिवर्तनीय और परवर्तनीय रूप होते है। जैसे प्रकृति मे अपरिवर्तनीय आकार प्रकार एक होते हुए भी अनेक रूपान्तर होते है ऐसे ही धर्म के आकार प्रकार भिन्न भिन्न होते हुए भी आत्मभूत आकार प्रकार एक ही हैं। धर्म धर्म का आत्मभूत रूप अपरिवर्तनशील है। समस्त धर्मो का शाश्वत रूप एक है। एक से अनेक ही स्याद्वाद के प्रतीक हैं। तीर्थकर समस्त त्यागो एव पवित्रताओ के आत्मभूत ज्ञान है। केवल ज्ञान स्वरूप साध्य सारे धर्मो के समन्वय भगवान् है।

प्रत्येक प्राणी मे आत्मभूत परमात्म तत्त्व एक है। जातियता का धर्म से कोई सम्बन्ध नही, वर्ण व्यवस्था कर्मो से उत्पन्न रूढि है। प्रथाएँ प्रचलित होते होते दैविक कहलाने लगती है। धर्म सकुचित सीमाओ मे सिसकियाँ नही भरता। धर्म असीम आलोक है। धर्म विराट का आत्मभूत विधान है। हँसने और रोने वाली मानव जाति एक है। आत्मभूत एक मानवजाति से ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य शूद्र आदि न जाने कितनी विविध जातियाँ बन गई। मानवजाति के इन अनेक वर्गो को स्याद्वाद के अन्तर्गत मानना चाहिये, मूलोद्गम से अनेक धाराएँ दीखती है। देखना यह है कि धर्म का सम्बन्ध मूलोद्गम से है या अन्य अवस्थाओ से ? जो धर्म मानवमात्र के लिए उपादेय एव हितकर हो सकता है वह मूलोद्गम का आत्मभूत धर्म है, अन्यानेक धाराएँ मूल से उत्पन्न हो परिक्रमा करती हुई मूल मे ही मिल जाती है। मूल धर्म ईश्वरीय धर्म है, मूल धर्म परमात्म बोध धर्म हैं, मूल धर्म मे सभी धर्मो का समन्वय है, मूल धर्म किसी धर्म का तिरस्कार नही करता, अन्य धर्मो को प्रेरित करता है। समस्त धर्म धाराओ को स्वय मे मिलाकर मगल मार्ग दिखाता है। मूलोद्गम आत्मभूत ज्ञान से जो धर्म प्रत्यक्ष है वह शाश्वत है, सर्वागीण है, सब जीवो के लिए हितकर है। वही धर्म अद्रित उपादेय और अमर है जिसमे जीवमात्र की शान्ति निहित है। जिस धर्म मे जीव मात्र के शिव की शक्ति हे वह धरती का धर्म है। वह धर्म नही जो न्याय का ईश्वर नही है। धर्म एक सर्वोच्च न्यायालय है जो शाश्वत विधान के अन्तर्गत निर्णय प्रस्तुत करता हे। जहाँ प्रत्येक जीव का वाद लिखा रहता है। धर्म औचित्य का उद्गम और विकास है। धर्म सब का ससदीय निर्णय हैं। धर्म सर्व सम्मति से निर्वाचित प्रकाश पथ है। पथ वही है जिस पर महापुरुष चले हैं। महापुरुष उस पथ पर चले है जो सत्यो से निर्मित है। सत्यो से निर्मित वह मार्ग है जिस पर वे चले है जो सत्येश्वर है। सत्येश्वर वह है जो केवल ज्ञान का रूप है। केवल ज्ञान जन्म जन्म के तपो से प्राप्त होता है।

लोक भगवान् महावीर केवल ज्ञान को प्राप्त हुए। जन्म जन्म मे तपस्या करते हुए ये तीर्थकर हुए। ज्ञान मुक्तेश्वर महावीर को बारबार नमस्कार ! वे प्रज्ञ प्रभु तपो से प्रकट शाश्वत धर्म है। वे तीर्थकर शास्त्रो के स्वर है। वे 'त्रिशला'नन्दन

तपस्याओ की वाणी हैं। वे 'सिद्धार्थ' सुवन धरती और आकाश के सुमन है। वे जिनेन्द्र वर्धमान' इक्ष्वाकुवश, रूप वन मे चन्दन वन हैं। उन ज्ञान गौरव के चरण कमलो मे सुर और असुरो के मुकुट वन्दना करते हैं। वे मनु वश के अवतस मानव मात्र के आभरण है। वे विद्वानो के प्रकाश स्तम्भ है। वे सन्मति सूर्य 'नाथ' वश रूपी कमलो को खिलाने वाले हैं। वे 'वासुकुण्ड' के कणकण मे क्रीडा करने वाले वाल भगवान् अरुणोदय है। वे 'लिच्छवी' जाति के सुन्दर छन्द है। वे श्रामण्य धर्म के त्रयरत्न है। वे ध्वसो पर निर्माणो के ध्वज है। वे रीती 'वैशाली' की अद्भुत विभूति है। वे गहरे अँधेरे मे तपते प्रकाश हैं। वे विखरे हुए धर्मो मे समन्वय के सूर्य हैं। वे दाता है, माता है, भ्राता हैं, और ज्ञान है। ऐसे भगवान् का अर्चन है वार वार। उपवन के सारे फूल चरणो मे अर्पित हैं। जन-जन की मालाएँ गीतो मे लाया हूँ, पहनाऊँ, महकें गीत।

मोक्ष मार्ग रूप रत्नत्रय को प्रत्येक युग नमस्कार करता रहेगा। त्रयरत्न अमोघ अस्त्र है। सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चरित्र से ज्योतिवन्त भगवान् महावीर आराध्यो के आराध्य है। अनन्त आराध्य को अन्तरग श्री प्राप्त थी। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वल विभूषित भगवान् उस लेखनी को शक्ति दे जो उनके गुण गा गा कर यशस्वी होना चाहती है। जो पीडाओ के पहाडो से टकराती हुई चल रही है। जो अभावो को चावो मे वदल चुकी है। जो द्वार द्वार ठोकर खा खाकर भगवान् महावीर के चरणो मे आ पडी है। जो आँसुओ को पीकर जीती है। जो प्यासी गगा और परित्यक्ता 'सीता' है। वर्णांका का विश्वास है कि चतुपश्रीप्राप्त महावीर स्वामी सिद्धियो से कृतार्थ करेंगे। 'मित्र' और दुनियाँ के लिए वीरायन कल्याणक होगा।

शुद्ध चरित्र चन्दन वन है। चन्दन वन से आस पास के सभी वृक्ष सुगन्धित होते है। शुद्ध चरित्र से देश सुगन्धित होता है, धरती सुगन्धित होती है। उत्तम प्रज्ञा से ब्रह्माण्ड महकता है। विज्ञता से विजय मिलती है। शुद्ध चरित्र व्यक्ति और समाज का उन्नत ध्वज है। चरित्र का तत्व भी अनेकान्तवादी है। मन की शुद्धि हर दिशा मे ज्योति देती है। प्रत्येक आकार मे चरित्र के प्रकार रहते हैं। व्यक्तिगत क्षेत्र मे चरित्रवान निर्लिप्त दीखता है। सामाजिक क्षेत्र मे वही समाज सुधारक सेवा करता है, राष्ट्रीय क्षेत्र मे वही महात्मा होता है। व्यक्ति जब उठाये हुए धन को जेब मे रख लेता है तो वह चोर होता है। जब वह वही धन जिसका है उसे दे देता है तो ईमानदार कहलाता है। तात्पर्य यह कि स्याद्वाद बाह्य जगत मे ही नही अन्तर्जगत मे भी प्रत्यक्ष है।

अनुभूति विवेक की जननी है। अनुभूति और ज्ञान की सन्धि से सिद्धि होती है। अनुभूति अनमोल पत्थर है जिसमें खरे खोटे का ज्ञान होना है। अनुभूति अनुरक्ति और विरक्ति की दिशा है। अनुभूति साहित्य की चेतना है। अनुभूति साधना की स्थायी निधि है। अनुभूति अँधेरे मे उजाले मे लाती है। अनुभूति विचार अनुमान और सनातन भावों की आत्मा है। अनुभूति के बिना ज्ञान नहीं,

अनुभूति के बिना कविता नही। अनुभूति ललित कलाओ की कलम है। अनुभूति भावनाओ की विभूति है। अनुभूति रस की त्रिवेणीधारा है। अनुभूति मे विचारो की सरिताएँ साकार है। जल के एक और अनेक रग स्यादवाद के मन्त्र गाते हैं।

अनुभूति ज्ञान विज्ञान की निर्झरणी है। अनुभूति से वास्तविकता का वोध होता है। भावुकता से उमडा हुआ हृदय जो निष्कर्ष प्रस्तुत करता है वह समष्टि का सूर्य होता है। अनुभूति से आवश्यकता या आवश्यकता से अनुभूति का उदय जल मे कुम्भ और कुम्भ मे जल जैसा है। लहरे, ज्वार भाटा, वर्षा, झरने, कुएँ, ताल आदि सब मे पानी की अनुभूतियाँ और प्यास की भावनाओ के स्वर है। अनुभूति भाव पक्ष की कविता और कला पक्ष की मूर्ति है। अनुभूति मनीपा की प्रज्ञा है।

दुनियाँ मे भिन्न-भिन्न प्रकृति के व्यक्तियो से अनेकानेक अनुभूतियाँ होती है। अनुभूति स्वार्थ की सहचरी नही ज्ञान की राह है। किसी की आशा के विरुद्ध यदि कुछ हो तो देखना होगा कि आशा मे स्वार्थ था या न्यायोचित चाह थी। स्वप्न की तरह समाप्त होने वाली पूर्ति के भग होने पर क्रोध नही करना चाहिए, आत्म समीक्षा से न्याय की अनुभूति का आनन्द लेना चाहिए। आनन्द के लिए जीवन है। आनन्द के लिए रस है। रस की उत्पत्ति अनुभूति से होती है। साहित्य किसी भी विधा का हो अनुभूति उसकी आत्मा है। अनुभूति भावना की उपलब्धि है। काव्य के नौ रसो मे यदि अनुभूति नही है तो रस प्राण-हीन हैं। भापा के शरीर मे अनुभूति प्राणवायु है जो जीवन प्लावित करती है।

राग से अनुभूति कविता वन जाती है। वियोग से अनुभूति विरक्ति वन जाती है। राग मे होने वाली पीडाओ से वैराग्य जागता है। राग, रहते वैराग्य नही, वैराग्य के विना ज्ञान नही, ज्ञान के विना मोक्ष नही मिलता। प्रतिक्रिया रूप मे जो आभास हो वह अनुभव है। अनुभूत सत्य ज्ञान है। अनुभूति सम्वेदन शील उपलब्धि है। अनुभूति से अमृत और विप की जानकारी होती है। अनुभूति हृदय की उजाली है। अनुभूति सत्यो के मन्दिर मे अहिंसा की मूर्ति है।

गुरुओ की विद्या प्रज्ञा है। प्रज्ञा से परम सुख की प्राप्ति होती है। प्रज्ञा सिद्ध होने के लिए अनुभूतियो की मति गति देती है। प्रज्ञा-काय कोई विरला ही होता है। ज्ञान सिद्ध होने के लिए न तो मात्र मनीपा ही सब कुछ है और न केवल अनुभूति ही पूर्ण पूर्ति है अपितु अनुभूति सिद्ध ज्ञान से प्रकट तपस्वी को पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। हृदय और विवेक जब एकरस हो जाते है तब ज्ञान की गरिमा प्रकट होती है। भावना जब विवेक के सूर्य मे प्रकाश रूप हो जाती है तो ज्ञान कहलाने लगती है। भक्ति का ज्ञान मे और ज्ञान का भक्ति मे तादात्म्य पूर्ण प्रकाश है। भक्ति और ज्ञान मे कुछ अन्तर नही। जब तक अन्तर दीखता है तब तक कुछ और पढने के लिए शेप रह जाता है। भक्त ज्ञान के आराधन से आनन्द मानने वाला आत्मा है। भक्त और भगवान का आत्मैक्य ज्ञान का अद्‌भुत उजाला है।

सिद्धार्थ-सुवन त्रिशलानन्दन ज्ञान भगवान महावीर वेजोड आदर्श है।

त्रयरत्न तीर्थंकर पूर्ण ज्ञान के प्रकाश है। पूज्य भगवान सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक्‌चरित्र के अमोघ अस्त्र हुए। ब्रह्म गौरव अति वीर को अन्तरग श्री उपलब्ध रही। उनका अनन्त ज्ञान समय की परिक्रमाओ पर गतिमान है। उनका अनन्त दर्शन कण कण मे विद्यमान है। उनका अनन्त वल वडे वडे अस्त्र-शस्त्रो को पराजित करने मे समर्थ है। उनका अनन्त सुख सृष्टियो को सुख वाँट रहा है। चतुपश्री महावीर स्वामी समस्त हिंसक शक्तियो पर अजेय आदर्श है।

अहिंसा के आदित्य ज्ञान गौरव भगवान तव आये जव देश हिंसा से त्राहि त्राहि पुकार रहा था। जव आदमी आदमी को खाये जा रहा था। जव हत्याओ का अन्त नही रहा था। जव विचारे मूक पशुओ की यज्ञो मे वलियाँ दी जाती थी। जव समाज आमिप भक्षण करता हुआ अट्टहास कर रहा था। जव अत्याचारो की अति हो गई थी। जव वासनाओ का अन्त नही था। जव समाज की व्यवस्था भग हो गई थी। जव शासन स्वार्थो का पुतला वन गया था। जव देश दयनीय दशा मे था। जव धर्म के नाम पर अनर्थ हो रहे थे। जव धर्म के नाम पर तलवारें चल रही थी। जव रूप और जवानियाँ नीलाम होती थी। जव कन्याओ के आँसूओ से दु खो को भी दु ख होता था।

आर्प प्रवृत्तियो पर आसुरी वृत्तियो का नग्न नृत्य हुआ। झूठ, हिंसा, भोग, विलास और हर अति की आग मे विभूतियाँ राख होती चली गई। वह महान् 'वैशाली' जहाँ कभी राज्य भर मे सोने, चाँदी और तांवे के घर थे आज टीला वन कर रह गया है। प्रस्तुत काव्य रचना के उद्देश्य से जव मैंने सवधित स्थानो का भ्रमण किया तो 'वैशाली' को देखकर आँखें छलछला आई। 'वैशाली' की भूमि ने मुझसे चीख चीखकर कहा— "क्यो आये हो यहाँ ? अव यहाँ क्या धरा है ! क्यो इस टीले पर गीत गाने आये हो ! अव यह गढ नही लाशो से पटा हुआ गड्ढा है ! मेरी छाती मे घाव की तरह कसकता हुआ यह गर्त अथाह गहरा है। खोदते खोदते थक जाओगे। मर जाओगे फिर भी मेरे वैभव के चमकते हुए कोयले मिलते ही चले जायेंगे। इन ककडो मे मेरे वैभव के हीरे जवाहरात मिले पडे है। मेरी मिट्टी मे अनगिनत नगर-वधुओ की सुन्दरता चीत्कार कर रही है। मेरा पानी आँखो का खारा जल है। मैं खण्ड खण्ड होकर ध्वस्त हुई हूँ। छल-वल की तलवारो ने मेरी वोटी-वोटी काटी है। मेरी सुन्दर व्यवस्था को इस अवस्था तक पहुँचाने वाले मदान्ध भी आज कहाँ है ! मिट्टी के कण वनकर भटकते फिर रहे होगे। तुम मुझसे मेरा इतिहास जानने आये हो। क्यो जगाते हो मेरी सोई पीडा ! मत कुरेदो मेरे जख्मो को। मैं मरी पडी हूँ। मैं वह व्यथा हूँ जिसकी कथा तक मर चुकी है। मत रुको यहाँ, जाओ यहाँ से। तुम कुछ पाने आये हो तुम्हे कुछ नही मिलेगा। इस खाक मे तुम भी खो जाओगे।"

'वैशाली' की वेदना ने मुझे भावुक कर दिया। मैंने करुणा और निर्वेद के तीर्थ पर धीरे से कहा— "तुम्हारे जीवन के अंधेरे मे भी अनन्त उजाला मुखर

है। तुम्हारे जितने भी वैभव धूलिधूसरित हुए उन सबसे श्रेष्ठ वैभव था, है और रहेगा। चतुपश्री, त्रयरत्न तीर्थंकर भगवान महावीर यही तो अवतीर्ण हुए थे। 'वैशाली' गणराज लोकतन्त्र का प्रथम दिनमान था। भोगो के वादलो ने प्रजातन्त्र के उस आदि सूर्य को ढक दिया। ढाई हज़ार वर्ष वाद वह सूर्य फिर सम्पूर्ण भारत मे उदय हुआ। जैन धर्मों के तत्वो के आदर्श पूज्य महात्मा गाँधी जी ने सम्पूर्ण-प्रभुत्वसम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज की स्थापना की। गर्व के साथ कहा जा सकता है कि भगवान् महावीर के आदर्शो ने देश को मुक्त कराया। दुनिया को मानवता का संदेश दिया। भगवान् वीर ने वीर बनाये। भारतमाता के मन्दिरों मे मुक्त कण्ठो के भजन गूँज उठे। धरती के देशो मे ज्ञान के बोल फैल गये। जीवन मे विचारपूर्वक बढने की प्रवृत्ति आई। निवृत्तिमूलक प्रवृत्ति के दीप जले।

दुनिया कुछ इस तरह परिक्रमा करती है कि उत्थान पतन की ओर आती जाती दीखती है। ससार नीचे ऊपर जाने आने वाला हिंडोला है। अतियो से अवनतियाँ होती हैं। भौतिक सुखो मे जब आध्यात्मिकता नही रहती तो दु.ख बढते हैं। भौतिकता और आध्यात्मिकता का मेल आवश्यक है। मात्र भोगो मे शान्ति नही। जिनके जीवन मे साधु सत्सग रहता है वे सुखी रहते हैं। भगवान् महावीर ने उस परम्परा को जन्म दिया जिसमे आध्यात्मिकता और भौतिकता की सधि है। उस 'अर्जिका सघ' की स्थापना की जिसमे निवृत्तिमूलक प्रवृत्ति है। तीर्थंकर भगवान् की वाणी जीवन चेतना की वाणी है।

ज्ञान भगवान् महावीर की वाणी मानवता की वाणी है। यह उत्तम अवसर आया कि भगवान् महावीर का पच्चीससौवा निर्वाण महोत्सव मनाया जा रहा है। यह निर्वाण महोत्सव तव मनाया जा रहा है, जब देश मे वैसी ही परिस्थितियाँ उभरना चाहती है जैसी 'वैशाली' गणराज्य के काल मे थी। नैतिकता तमाच्छन्न होती जा रही है। अनैतिकता ने घरघर मे घर कर लिया है। न्याय और व्यवस्था अवस्थाहीन हो रही है। भले आदमी का जीना कठिन हो रहा है। बुराइयो का विप वढता जा रहा है। समाज मे ज़हर घुल गया है। रास्ते और उद्देश्य मलिन हो गये हैं। धनयुग मे जनयुग जल रहा है।

ऐसे समय मे भगवान् महावीर की दिव्य वाणी जन-जन मे व्यापक होना मृत्यु मे जीवन है। समाज के विप को भगवान् की शिव वाणी ही पी सकती है। तम मे भटकने वालो को श्रवण परम्परा के प्रकाश की जरूरत है। मेरे मन में बहुत दिनो से चाह थी कि वीर वाणी गाऊँ। इच्छा से सकल्प, सकल्प से साधन मिल जाते है।

श्रद्धा ने तपस्या का व्रत लिया, सकल्प किया कि तपालोक वीर भगवान् पर महाकाव्य रचूंगा। अपनी लघुता और भगवान् महावीर की गुरुता का भरोसा किया। विश्वास और भक्ति ने जब कोई पूजा करता है तो भगवान् दया करते हैं। मुझ पर गुरुजनो की कृपा सदा रही है। आवश्यकतानुसार आदर्श प्राप्त होते रहे।

*आदर्शों की इति नही होती। आदर्श युग आदर्श चरित्र काव्यो मे प्रत्यक्ष* हैं। काव्य एक ऐसा मन्दिर है जो जनमानस मे स्थापित रहता है। रामचरितमानस द्वारा राम हर समय साकार है। मानवीय आदर्शों के सूत्र मे हमे सन्देश देते रहते है।

*'वीरायन' काव्य रचने का उद्देश्य जन-जन मे भगवान्* महावीर की वाणी का सन्देश देना है। भगवान् सन्मति की महिमा गाकर सुख पाना मेरा लक्ष्य है। कोई बडा धनवान भगवान् महावीर का विशाल मन्दिर बनवाकर पूजा करता है तो कोई कवि कविता से प्रभु की पूजा करता है। मैने 'वीरायन' काव्य से भगवान् महावीर का अर्चन किया है। लोक भगवान् को श्लोको की माला पहनाई है।

साहित्य समाज का गुरु है। साहित्य से समाज को ज्ञान मिलता है। साहित्य अन्तश्चेतना का आत्मभूत ज्ञान है। साहित्य की विविध विधाए ज्ञान निधि की अनेकानेक क्यारियाँ है। समाज को जीवन की अनेक आवश्यक उपलब्धियाँ साहित्य से प्राप्त है। साहित्य जीवन की विविध दिशाओ के लिए दर्पण है। हमारे अतीत, वर्तमान और भविष्य के ज्ञान का कोष साहित्य है।

साहित्यकार तपते हुए सूर्य की तरह है। कवि आग मे रहता है प्रकाश देता है। साहित्कार अपनी समस्त शक्तियो को सचित कर तपस्या करता है। कलम का दीपक अथक परिश्रम करता हुआ अनन्त ज्ञान देता है। रचयिता गहरा गहरा जाता है और मन्थन कर जीवन के रत्न निकाल कर लाता है।

साहित्यशून्य समाज अँधेरे मे भटकता हुआ दिग्भ्रान्त पथिक है। साहित्य का आदर करने वाला समाज आगे बढता है आगे बढाता है। साहित्य का सम्मान ज्ञान का सम्मान है। जो किसी के गुणो की प्रशसा करते है वे स्वयम् कीर्ति को प्राप्त होते है।

साहित्य तप से प्रकट ज्ञान है। साहित्य उन्नति का माध्यम है। श्रेष्ठ साहित्य को प्रणाम करना ईश्वर को प्रणाम करना है। श्रेष्ठ साहित्य लौकिक और पार-लौकिक आनन्द देता है। साहित्य की अनेक विधाओ मे काव्य शाश्वत सत्यो का वैभव है। काव्य मे समन्वय सस्कृति एव ज्ञान की सूक्तियो का आलोक सुख देता है। काव्य जीवन का सत्य है। काव्य समन्वय का इन्द्रधनुषी प्रकाश है। काव्य ज्ञान का अद्भुत आनन्द है। काव्य ज्ञान भगवान है। वही काव्य शाश्वत है जिसका विद्वान् आदर करें। कविता जन-जन को आनन्द देती है। हर देश, हर जाति, हर युग काव्य मे प्रत्यक्ष है। जो जीवन को अकथनीय आनन्द एव जागरण दे वह श्रेष्ठ काव्य है। जो जीवन के सत्यो को साकार करे वह मूर्तिमान काव्य है। काव्य जीवन और जगत का कभी न टूटने वाला दर्पण है। काव्य जन-जन मे जन-जन के लिए जन-जन का आदर्श है।

काव्य आदर्शो का दर्पण है और यथार्थ का चेहरा है। काव्य मे अन्तरग ज्ञान और बाह्य विभूतियो का हिसाब रहता है। यथार्थ जीवन से पृथक् नही है। आदर्श

के विना जीवन अज्ञान मे भटकता है। वास्तविक यथार्थ शाश्वत सुख है। अभंगुर आनन्द है। यथार्थ का आदर्श मे एकाकार व्यष्टि का समष्टिकरण है। यथार्थ का अर्थ जीवन को नीचे गिराकर दीन-हीन दशा को पहुँचाना नही है, यथार्थ का अर्थ जीवन को वास्तविक ज्ञान देना है। जो काव्य जीवन को, मन को व्यष्टि और समष्टि का मार्ग देता है, उसका महत्त्व अमर है। जिस काव्य का अस्तित्व समय के साथ समाप्त हो जाता है वह वाढ मे उठने वाली लहर की तरह है। जिस काव्य की गति कलनाद करने वाली गगा धारा की तरह जीवन और जगत को प्लावित करती है वह शिव के सिर चढी रहती है। काव्य का उद्देश्य शिव होना चाहिए।

शिव ने विष पिया अमृत दिया। कवि भी जहर पीता है सुधा देता है। दु खो का गरलपान करता हुआ कवि रवि की तरह तपता है। कवि अनुभूतियों से उत्पन्न प्रेरक प्राणी है। कवि दु ख और सुख की अनुभूतियो का निष्कर्ष है। कवि सहता है वहुत सहता है। अभावो मे जीता है। कवि के भावो मे अभावो के दीपक जलते रहते है। कवि की रचना मे आँसुओ का अमृत हिलोरे लेता है। कवि भक्ति और शक्ति का प्यासा गायक है।

ससार मे सघर्षो का अन्त नही, यहाँ सघर्षो मे ही सुख और शान्ति है। जव से दुनिया शुरू हुई है तव से ही पहले सघर्ष शुरू हुए। सघर्षो से पलायन करने वाला दुखी होता है। सघर्षो मे शान्ति मानने वाला सुखी रहता है। कवि सघर्षो का मोहग्रस्त 'अर्जुन' है। वह अपनो पर वाण नही चला सकता। कवि को 'कृष्ण भगवान' उपदेश देने का कष्ट कहाँ उठाते है। कवि को तो भगवान की ओर वाण पर वाण खाने की आज्ञा होती है। कवि व्यष्टि जगत मे अपने और परायो के तीर सह सकता है, तीर चला नही सकता। कवि अहिंसा की जलती हुई मोमवत्ती है। अपरिग्रह या तो शिवस्वरूप दिगम्वर मुनि के लिये है या अभावग्रस्त कवि के लिये है। कवि अस्तेय और पवित्रता का प्रतीक है। कवि समन्वय मे विश्वास रखता है। शाश्वत सत्यो मे कवि की आस्था होती है। पूर्ण कवि केवल ज्ञान है। दोपरहित काव्य ज्ञान का आराधन है।

केवल ज्ञान को प्राप्त भगवान् महावीर पर काव्य रचने की प्रेरणा मुझे उनके ज्ञान तत्त्वो से मिली। भगवान के निर्वाण महोत्सव के अवसर पर प्रभु की पूजा के रूप मे मैंने यह अनुष्ठान शुरू किया। तीन वर्ष हो गये मुझे इसी धुन मे लगे। मेरी साधना मे महामुनि 'विद्यानन्द' जी महाराज का वडा योग है। वर्द्धमान भगवान् के गुण गाने के लिए मुझे मुनि जी का आशातीत सत्सग मिला। मै प्राय. प्रतिदिन उनके चरणो मे स्थान पाता रहा। एकान्त मे वरावर उनसे सत्सग करता रहा। जव भी जिसको जो कुछ मिला है सव सत्सग से मिला है। सत्सग ज्ञान का मूल मन्त्र है। सत्सग के विना विवेक नही होता। मुनि महाराज ने वड़े प्रेम से पथ-प्रदर्शन किया। ज्ञान के दीपक दिये। रास्ते दिखाये। मैं उनका आभारी हूँ।

मुनिश्री जी के आशीर्वाद से वीर निर्वाण भारती ने 'वीरायन' के प्रकाशन मे

सहयोग देकर कृतार्थ किया है। अध्यक्ष श्री सुन्दरलाल जैन और मन्त्री बन्धुवर राजेन्द्रकुमार जैन एव सभी सदस्यो का मै अत्यन्त आभारी हूँ।

किसी काव्य की सफलता तभी है जब जनता मे उसका आदर हो। जो काव्य लोकवाणी नही बनता उसका होना न होना एकसा है। माना कि कवि आनन्द-विभोर होकर काव्य रचना करता है। अपने दु ख-सुख की अनुभूतियो की धुन मे रोता हँसता गाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी अपनी अनुभूतियाँ स्वान्त सुखाय रूप मे प्रस्तुत की थी। लेकिन वे अपने सारे ज्ञान की पूँजी भक्ति के दीपको मे जड-जड कर लोक-लोकान्तरो के लिये वितरण कर गये। लोक भगवान् महावीर पर मेरी रचना स्वान्त सुखाय होते हुए भी लोकहितकारी है।

भगवान् महावीर का जीवन लोकोपकारी है। उनका जीवन ज्ञान के तत्त्वो का जीवन है। वे ज्ञान के अमर मन्त्र थे, है और रहेगे। युग-युगान्तरो तक भगवान् सन्मति की महिमा गायी जाएगी। जीवन और जगत को लौकिक एव पारलौकिक उपलब्धियो के लिए तीर्थंकर भगवान् सिद्धियो के स्वामी हैं। श्रमण भगवान् लोकोपकारी चमत्कारो से सिद्ध आराध्य है।

आराध्य और आराधक का अन्योन्याश्रय नाता है। उपासक उपास्य पर आँखो से अर्घ्य चढाता रहता है। भावुकता से सुरभित सुमन चरणो मे धरता है। सदाचार के दीप प्रज्वलित करता है। ज्ञान के आदित्यो से आरती उतारता है। आराध्य को रिझाने के लिये गाता है, नाचता है। कवि नाचता है, गाता है। दु ख और सुख के साजो पर नृत्य करने वाला पुजारी प्रभु लीला का अनुकरण करता है। भक्त और भगवान् जब तक एक नही हो जाते तब तक सफल सृजन नही होता।

मेरा यह सृजन वीर भगवान् मे एकाकार का निरूपण है। मैंने धर्मो की परिक्रमा की। भगवान् महावीर मे मुझे उज्जवल तत्वो का रस मिला। उनका धर्म मानव धर्मो का निष्कर्ष है। जैन धर्म देवताओ की पूजा का घन है। इन्द्र आदि देवताओ ने भगवान् महावीर की पूजा की थी। देववृन्द तीर्थंकर का आराधन करते है। देवता ही नही असुर भी जिन भगवान् की पूजा करते है।

"पादारविन्द नत मौलि सुरा सुरेन्द्रै"

आशुतोष शिव भी सुर और असुर दोनो के पूज्य थे। मित्र ने सृजन के माध्यम से तीर्थंकर भगवान् की आरती उतारी है। मैं जानता हूँ मुझे पूजा करनी नही आती। अपने अभावो को पहचानता हूँ। न मेरे पास मणिमडित रत्नजडित स्वर्णदीप है, न मेरे पास ज्ञान के बोल है, फिर भी उत्साह से गाने लगा, मात्र भक्ति और सत्सग के भरोसे मैने कलम चलाई।

साधुजनो का सहयोग मिला। सरस्वती ने कृपा की। सद्ग्रन्थो ने दीपक दिखाये। मित्रो ने प्रेम दिया, विश्वास ने बल दिया, दिव्यवाणी ने सन्देश दिये, मन ने कहा भगवान् पर काव्य लिखना चाहते हो तो उपासना को उपास्य का रूपक मान कर पूजा करो।

प्रस्तुत काव्य मे मैंने भगवान् महावीर की महिमा गायी है, पूज्य तीर्थंकर की पूजा की है। कैवल्य की आरती उतारी है। सर्वशक्तिसम्पन्न के स्याद्वाद को सजाया है। समाज को विविध भावनाओ के पुष्प अर्पित किये है।

मैं वहाँ वहाँ गया जहाँ जहाँ वीर भगवान् के चरण गये थे। उस भूमि से वाते की जिस पर मुक्तेश्वर के ज्ञानाक्षर अकित है। उन वृक्षो से सम्भाषण किया जो तपेश्वर पर छाया करते रहे। उन पहाडियो पर चढा जिन पर लोक भगवान् की चरणधूलि चन्दन है। उन झरनो मे स्नान किया जिनमे वीर वाड्मय का पवित्र जल है। धन्य है वह धरती जो ज्ञानेश्वर की गरिमा से गौरवान्वित है। श्लाघ्य है वह आकाश जो धर्म ध्वज की ऊँचाई का प्रतिविम्ब है। पूज्य है वे स्थान जहाँ मोक्षेश्वर पर सुर असुर जड जीव पुष्प वर्षा करते है।

तात्पर्य यह कि वीरायन के छन्द सूत्र प्राय वहाँ वहाँ से लिये जहाँ जहाँ भगवान् ने विहार किया। 'वैशाली' के पावन क्षेत्र 'वासुकुड' मे मैंने त्रिशलानन्दन वीर के जन्म श्लोक लिखे। दिवगत राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी द्वारा २३ अप्रैल १९५६ को वीर जन्मस्थान 'वासुकुड' मे महावीर स्मारक का शिलान्यास हुआ। 'वासुकुड' सामाजिक एव राजकीय मान्यताप्राप्त जन्मस्थान है। यह स्थान पूज्य माना जाता है। ग्रामीण इस भूमि पर खेती नही करते, दीपक जलाते है। भगवान् महावीर का कुमार काल यही व्यतीत हुआ। सिद्धार्थ-सुवन ने युवाकाल मे यही ज्ञानाक्षर कहे। 'वासुकुड' से ही वीर ने तप के लिए प्रस्थान किया था। 'वैशाली' तटवर्ती 'वासुकुड' पूर्व भारत का सन्यासी शासक है। भगवान् महावीर मे अहिंसा की अपार शक्ति थी।

अहिंसा निर्वल की दुर्गा है। अहिंसा तलवार को काट सकती है, तलवार से कट नही सकती। अहिंसा पृथ्वी की अजेय शक्ति है। अहिंसा वीर की निधि है। यह वह विधि है जो जान पर खेलकर जान वचाती है। अहिंसा भक्ति की ज्योति है। अहिंसा पवित्रता की पूर्ति है। अहिंसा अन्दर और वाहर के शत्रुओ पर विजय देती है।

अनेक महात्माओ ने भगवान् महावीर की स्तुति की है। मैंने भी 'वीरायन' काव्य के माध्यम से तीर्थंकर भगवान् महावीर की पूजा की है। पूजा के दीपो में जीवन के अनुभव प्रज्वलित हैं। आरती मे भगवान् का स्तवन है। अक्षतो मे अम्लान मन हैं। फूलो मे भावो की सुगन्धित गूज हैं।

आशा है आप अपने और विश्व के शिव के लिए 'वीरायन' के छन्दो से भगवान् की पूजा करेंगे।

—रघुवीर शरण मित्र'

# क्रम सन्दर्भ

स्वयम् बुद्ध आलोक है, तीर्थंकर गुरु ज्ञान ।
पूजा पूजा में मुखर, महावीर भगवान ॥

–

# पुष्प प्रदीप

चिद्रूप तपोधन ब्रह्म नम., जय महावीर जय शिव अपार।
पूजा है पुष्प प्रदीपो से, वर्णाका करती नमस्कार।।
पथ जिनकी पूजा करते है, उनको हर गीत पुकार रहा।
जो तप तप कर भगवान बने, उनकी आरती उतार रहा।।

जो सद्ग्रन्थो की भाषा हैं, उनकी गति मेरे गीतों में।
फूलों मे है जिनकी सुगन्ध, वे वर्द्धमान हैं जीतो में।।
वे वहते वहते सिन्धु वने, वे चलते चलते राह वने।
वे सहते सहते धरा वने, वे चरण सभी की चाह वने।।

जो कालातीत गीत के धन, वे वन्दनीय जग के चन्दन।
चिन्मात्र चराचर सर्वेश्वर, आलोक पुज त्रिशला नन्दन।।
जो प्राणो के पथ दीपक हैं, उन सिद्धेश्वर को नमस्कार।
जो धरती के ऊँचे ध्वज हैं, अभिवादन उनको वार वार।।

जय महावीर तीर्थंकर की, अर्पित उनको सवकी माला।
फैला है सभी दिशाओ में, उनके श्वासो का उजियाला।।
गीतों के पावन इत्रो का, श्रद्धा से अर्घ्य चढ़ाता हूँ।
आँखों के दीप जलाता हूँ, सिर से पग धूलि लगाता हूँ।।

मैं दुःखो का विष पी जीता, रक्षक सिर पर भोले शंकर।
मेरी आँखो मे ज्योति पुज, मेरे गीतो में तीर्थंकर।।
उन शुद्धात्मा, के स्वर लाया, जो राजाओ के महाराज।
उन धर्मचक्र का मन्त्र मित्र, जिनके सिर पर आकाश ताज।।

पुष्प प्रदीप

जय शकर ऋषभ देव दाता, जय जन्मजात सुखदाता की।
जय हो जिनेन्द्र जग त्राता की, जय हो 'मरु देवी' माता की।
जय 'नाभिदेव' जिनके घर में, भगवान 'विष्णु' ने जन्म लिया।
यह धरती जिन से धन्य हुई, मुनियो ने जिन को नमन किया।

पुष्प समर्पित शुद्ध को, अर्पित गीत प्रदीप।
मैं कविता वे भाव है, वे मोती मैं सीप॥

नयन दीप स्वर आरती, द्वन्द हुए निर्द्वन्द।
तीर्थंकर आराध्य है, पूजा करते छन्द॥

विविध रूप पूजा विविध, रग रग के फूल।
वे माझी मैं नाव हूँ, मै सरिता वे कूल॥

अन्धकार में सूर्य है, मेरे पूज्य महान।
उनका वडा प्रसग है, मेरा छोटा ज्ञान॥

भाव कमल गायक भ्रमर, शब्द भजन मुनि साथ।
मन्दिर विद्यानन्द है, महावीर है नाथ॥

मेरी आँखो मे भरा, सद्ग्रन्थो का सार।
उनकी आँखो मे भरा, इन आँखो का प्यार॥

खेले 'सगम' नाग से, दूर किया अज्ञान।
खेले मेरे काव्य मे, वीर बाल भगवान॥

बसे वचन मन कर्म मे, 'वैशाली' के गर्व।
लोक त्राण के सूर्य वे, जिनका हर पग पर्व॥

गौरव 'नन्द्यावर्त' के, लो श्रद्धा के फूल।
क्षमा क्षमा करना क्षमा, अगर करूँ कुछ भूल॥

केवल ज्ञान स्वरूप जो, जो जन जन के प्यार।
वे मेरी सरकार है, वे मेरी पतवार॥

स्वयम् बुद्ध आलोक जो, तीर्थंकर गुरु ज्ञान।
वे मेरे उत्थान है, वे मेरे सम्मान॥

धरा गा रही है गगन गा रहा है।
वही पूज्य है त्याग जिसका महा है॥

स्वयम् पर विजय जिस पथिक को मिली है।
उसी से कली हर समय की खिली है॥
तपा वृक्ष सा जो वही छाँह देता।
वही वीर है दुःख जो बाँट लेता॥

वही धीर है दुःख जिसने सहा है।
धरा गा रही है गगन गा रहा है॥

पवन में वही है वही फूल में है।
वही डाल पर है वही मूल में है॥
वही फूल के रूप में खिल रहा है।
वही मार्ग के रूप में मिल रहा है॥

वही गीत जो ज्ञानियो ने कहा है।
धरा गा रही है गगन गा रहा है॥

उजाला यहाँ ज्ञान के दीपकों का।
उजाला वहाँ ज्ञान के दीपकों का॥
चले वे बने राह हम चल रहे है।
तपस्वी अमर दीप बन जल रहे है॥

अमृत वेग में उन स्वरों से बहा है।
धरा गा रही है गगन गा रहा है॥

इतिहास बना जिनकी गति से, शब्दो में उनके भरे श्वास।
जिनसे हम सबको ज्ञान मिला, वे पूजनीय पथ के प्रकाश॥
जो जन जन के विश्वास वीर, वाणी पर उनका चढा नाम।
जो तन्त्र मन्त्र तप धन चन्दन, उन गुरुओं को करता प्रणाम॥

गुरु का चरणोदक पान किया, अज्ञानी को मिल गया ज्ञान।
पाया गुरु से निगमागम धन, पढने लिखने में लगा ध्यान॥
गुरुवर की पूजा करता हूँ, अर्पित है छन्दो की माला।
गीतो के दीपों में दीपित, गुरु के प्रताप का उजियाला॥

पुष्प प्रदीप

वे 'चन्द्र' और यह मन चकोर, मैं पूजा हूँ वे फल दाता।
मैं प्यासी तपती धरती हूँ, वे सावन भादो जल दाता॥
मै 'तुलसी' सा प्यासा चातक, वे स्वाति बूंद वन जाते है।
मैं रूप-तृषा वे 'रत्ना' है, भगुर से मोह हटाते है॥

गुरु षट् रस, नौ रस, वन रसाल, कविता कोयल की वोली है।
गुरु ऋतुओ के राजेश्वर है, कविता ऋतुओ की रोली है॥
गुरु गगा की निर्मल धारा, मै मछली जल के विना नही।
सव फल है आशीर्वादो का, जव भी जो भी धन मिला कही॥

पद-चिह्न मुखर मैं लिखता हूँ, यह अद्भुत भेद अनोखा है।
कविता वीरो की गाथा है, वाकी जो कुछ है धोखा है॥
वे चले वन गये पथ जग मे, तूफान न उनको रोक सके।
जिनके श्वासो से गीत लिये, दुर्दैव न उनको टोक सके॥

जो वाधाओ मे वढते है, वे वन जाते है वर्द्धमान।
'उर्वशी' 'मेनका' हार गई, तिल भर न वीर का डिगा ध्यान॥
काँटो मे फूल खिला करते, कविता मे है दीपो के स्वर।
जय आदि अनादि अनन्त सन्त, जय महावीर जय जय शकर॥

दीपो के स्वर जय तीर्थंकर!

शत शत प्रणाम गुरु आशुतोष! जय तपालोक! जय जय दाता।
जय जय सतसगो के सूरज! जय योग-सिद्धियो के त्राता!
जय अगम निगम, दुखियो के मन! जय घोर दुपहरी मे छाया।
जय दिव्य ज्योति सम्भूत शिखर! लो गीतो के उपवन लाया॥
दीपक वन जलता मेरा स्वर।
दीपो के स्वर जय तीर्थंकर!

अर्चना कीर्तियो के ध्वज से, अर्चना लेखनी के रस से।
अर्चना तुम्हारी तन मन से, अर्चना शहीदो के यश से॥
लायाँ तारो से जुडे नयन, लाया गुरुओ के गुण लाया।
लो अर्घ्य दृगों के दीपो का, प्यासा पूजा करने आया॥
वन गये गीत सत्यो के स्वर।
दीपो के स्वर जय तीर्थंकर!

तुमने कैसा मधु पिला दिया, पी पी कर तृष्णा वढ़ती है।
मैं तो चरणामृत का प्यासा, इच्छा चोटी पर चढती है।।
लो इच्छाओं के गुँथे फूल, लो कर्मो के प्यासे जलधर।
लो ज्ञानोज्जवल! गीतो के स्वर, लो नयन सिद्धियो के शंकर।।

मै हूँ मयूर, तुम हो जलधर।
दीपों के स्वर, जय तीर्थंकर!

मुझ तुच्छ तिरस्कृत को तुमने,—युग युग की निधियो से पाला।
गूंगे को गीत दिये तुमने, पहनादी आँखो की माला।।
आँखो के कमल न मुरझाये, किरणे काया में वनी रहे।
जय जय गुरु! कथा व्यथा के स्वर, तुम कथा कहो, हम व्यथा कहे।।

तुम मेरे पथ, तुम मेरे घर!
दीपों के स्वर, जय तीर्थंकर!

तुम शकर, तुमको नमस्कार! तुम ब्रह्मा, तुमको गुरु प्रणाम्।
तुम गुणदायक गणनायक गुरु, तुम विष्णु और तुम सुवह शाम।।
तुमने शकर से मिला दिया, तुमने ब्रह्मा को दिखा दिया।
जो ज्ञान खोजते वडे वडे, वह ज्ञान अपढ को सिखा दिया।।

तुम हो शकर, तुम हो हरि हर।
दीपो के स्वर, जय तीर्थंकर!

तुम सत्य अहिसा के शिव हो! पी गये क्रोध की ज्वाला को।
कर दिया काम को भस्मसात, त्यागा मणियो की माला को।।
भोले वावा ने बिना कहे—भर दिये हृदय के सव छाले।
थोडी-सी पूजा के वदले— आँखो के आँसू चुग डाले।।

तुम वोल रहे मुझमें वस कर।
दीपो के स्वर, जय तीर्थंकर!

मैं सव मे हूँ सव मुझमे है, फिर भी हम सव में वहुत भेद।
यह मेरा हैं यह तेरा है, मुझको है इसका वहुत खेद।।
कुछ कॉटे वन कर चुभते है, कुछ फूल सुगन्ध दिया करते।
दुर्जन शूलो से चुभते हैं, सज्जन दुख वाट लिया करते।।

सुख देते है दुख लेते है, मिलते है जीवन मिल जाता।
सूरज की किरणे पडते ही, पानी मे पकज खिल जाता ॥
दुर्जन रोगो सा आता है, सज्जन प्राणो सा आता है।
पारस पथरी के छूते ही, लोहा सोना बन जाता है ॥

मै विनती कर कर हार गया, दुष्टो का हृदय नही पिघला।
सत्सग मिला जब सज्जन का, काली रातो मे दिन निकला ॥
जब पाप धरा पर बढते है, विज्ञान प्रलय बन जाता है।
जब पुण्योदय तन धरता है, सज्जन सौरभ सा आता है ॥

सज्जन से धरती ठहरी है, सज्जन से काल पराजित है।
जो जीवन देकर जीता है, वह काल पुरुष अपराजित है ॥
अपराजित है वह दिव्य पुरुष, जिसने अपना मन जीत लिया।
शिव महावीर को नमस्कार, सारा विष पीकर अमृत दिया ॥

सब अपने सुख के लिये दुखी, सज्जन पर पीडा का आँसू।
दुर्भिक्ष धरा पर लाता है, दुर्जन की क्रीडा का आँसू ॥
पीडा कविता बन जाती है, क्रीडा को दीप दिखाती है।
अनुभूति विभूति वेदना की, वाणी का धर्म सिखाती है ॥

तुम ऐसे बोलो मित्र रसिक, जैसे जग में तुलसी बोले।
ऐसे रसना के मोती दो, जैसे कबीर ने स्वर खोले ॥
तुम सूरदास की आँखे हो, देखो छवि लिखते रहो गीत।
वाणी वरदा को कर प्रणाम, त्रिशला कुमार की कहो जीत ॥

जय जय जय वाणी कल्याणी।
पूजा मे दीपक हर प्राणी ॥
तुम गीतो मे गति वर वाणी।
हम वीणा है तुम जय वाणी ॥

छन्दो मे रवि छवि रस गाथा। माता तुम्हे नवाता माथा ॥
अलकार अर्थो के लाया। भावो की माला ले आया ॥
शक्ति भक्ति भाषा बन आई। महिमा सब कवियो ने गाई ॥
तुम हो हर जीवन की बोली। तुम हो धरती माँ की रोली ॥

तुम लय तुम जीतों की वाणी।
तुम गूगे गीतो की वाणी ।।
जय जय जय वाणी कल्याणी।
पूजा में दीपक हर प्राणी ।।

तुम हो सब ग्रन्थों की भाषा। तुम हो गायक की अभिलाषा ।।
वर दो जय दो गति दो माता। श्रम हो सफल सिद्धि दो दाता ।।
टेक विवेक एक तुम अम्बे! जय जय जय जय जय जगदम्बे!!
यश दो रस दो चरण पखारूँ। आँखो से आरती उतारूँ ।।

तुम त्रैविद्य विधात्री वाणी।
तुम विधि ऋद्धि सिद्धि की वाणी ।।
जय जय जय वाणी कल्याणी।
पूजा में दीपक हर प्राणी ।।

कालातीत गीत हो मेरा। सरगम बोले स्वर हो तेरा ।।
वही कहूँ जो कुछ तुम बोलो। रंगों में अपने रस घोलो ।।
चारों ओर रूप हो तेरा। त्रिशला सुत का स्वर हो मेरा ।।
तेरा स्वर मेरा बन जाये। मेरा स्वर हर प्राणी गाये ।।

माँ! तुम से मुखरित हर प्राणी।
तुम वीणा हो तुम हो वाणी ।।
जय जय जय वाणी कल्याणी।
पूजा में दीपक हर प्राणी ।।

चामुडा मे रूप तुम्हारा। ऐंद्री महाशक्ति की धारा ।।
गीत बनो वाराही माता। माहेश्वरी न टूटे नाता ।।
ब्राह्मी हसवाहिनी वर दो। कौमारी ऊँचा ध्वज कर दो ।।
उत्स भरे नयनोत्पल प्यासे। दीप बन गये स्वर जल प्यासे ।।

तुम क्षत्राणी तुम रुद्राणी।
व्यष्टि समष्टि सृष्टि ब्रह्माणी ।।
जय जय जय वाणी कल्याणी।
पूजा में दीपक हर प्राणी ।।

क्षमा! शिवा! पूजा लो फल दो। दुर्बल को उठने का बल दो ।।
नयनो के जलजात चढाता। थकूँ न माँ यश गाता गाता ।।
रहे न तनिक निकट की दूरी। कभी न हो कोई मजबूरी ।।
सबके गीत गूथ कर लाया। तुम को पालूँ सब कुछ पाया ।।

तुम जग की जयश्री इन्द्राणी।
तुम वैष्णवी विधात्री वाणी ।।
जय जय जय वाणी कल्याणी।
पूजा में दीपक हर प्राणी ।।

जिनके श्वासो से दीप जले, उनकी बोली ले आया हूँ।
जो धूप शीश पर सहते हैं, मै उन तरुओ की छाया हूँ ।।
जिनके पदचिह्न बने दीपक, वे चरण न अब मैं छोड़ूँगा।
जो तप से आगे निकल गये, मैं उनसे नाता जोड़ूँगा ।।

युग पुरुष योगियो को प्रणाम, भगवान विष्णु को नमस्कार।
देवाधिप इन्द्र सहायक हो, जो नीति निपुण योद्धा अपार ।।
ऋषि मुनियो सिद्धो को प्रणाम, भक्तो की चरण धूलि स्याही।
लेखनी साधको की सपा, कविता आँसू से है व्याही ।।

इस युग को करता हूँ प्रणाम, जिसमे दु खो का अन्त नही।
जो आँसू के आधार बने, अब मिलते ऐसे सन्त नही ।।
वह कौन आज जिसके मन मे, छल कपट नही तम भरा नही।
वह कौन सुखी है इस युग मे, जो दुखी नही गम भरा नही ।।

विद्वानो का विश्वास गया, निष्ठा का नाम निशान नही।
मन चाहा शासन चलता है, चलता है राज विधान नही ।।
झोली फैलाये फिरते है, फनकार राज दरबारो मे।
जनता का जीवन भटक रहा, दुतकारो मे अधिकारो मे ।।

हम प्रजातन्त्र मे रहते है, जीते है राज-त्रिशूलो मे।
फूलो मे काले नाग छिपे, भारत है आज बबूलो मे ।।
पूर्णिमा अमावस्या है अब, जाडे की धूप बनी गर्मी।
डस रही तपस्याओ के फल, यह राजनीति की बेशर्मी ।।

उनको प्रणाम उनकी जय हो, जिनको प्रणाम का ध्यान नहीं।
उन वहरों को भी नमस्कार, खुलते है जिनके कान नही ॥
उनसे भगवान दूर रखना, जिनसे जलते है पेड हरे।
उनको न करेगा मित्र नमन, फिरते है जो अभिमान भरे ॥

उन पर शब्द प्रसून चढाता, जो स्वतन्त्रता लाये।
उन गद्दारों से डरता हूँ, जो बगुले बन आये ॥
वे फूलों में वे दीपों में, जो दे गये जवानी।
वे गगाजल वे यमुना जल, वे आँखों के पानी ॥

ऐसे भी थे देशभक्त जो— देश बेच देते थे।
भारत देकर दौलत लेकर, जाने ले लेते थे ॥
हिंसा के बूचड़खाने थे, पैसा पैसा पैसा।
कह न सकी पीड़ित 'वैशाली' पतन हुआ था जैसा ॥

काट रहे थे जेव विधर्मी, धन्धे चला रहे थे।
प्रजातन्त्र में लूट मची थी, गोले गला रहे थे ॥
उनका जीना व्यर्थ हुआ था, जो न डालते डाका।
स्वर्ण डकैती से मिलता था, कविता करके फाका ॥

देश भक्ति सिसकी भरती थी, मदिरा के प्यालो मे।
मानवता आहे भरती थी, आपस की ज्वाला मे ॥
धूप छिप गई थी सूरज मे, शर्म उसे आती थी।
वेशर्मी की हद थी, गद्दी भारत को खाती थी ॥

आँखो के मोती रोते थे, शब्दो की झोली में।
कविता भिक्षा तक सीमित थी, विकती थी वोली में ॥
दु:ख और सुख के प्रदीप हैं, कविता की थाली में।
मन्दिर वना लिया है सवका, मन की उजियाली में ॥

दशा देश की कहते सुनते, दु ख वहुत होता है।
दो पाटो में वचा न कोई, हर 'कवीर' रोता है ॥
तग आ गई थी यह धरती, प्यासे अधिकारो से।
जीता है विश्वास किसी ने, कव कोरे नारो से ॥

पुष्प प्रदीप

उन्नति की ऊँची चोटी तक, पतन चढा था ऐसा।
सीता तक साधू रावण का, पैर बढा था जैसा॥
राजाओं ने मनमानी से, देश खरीद लिया था।
हमको अपनी ही आँखों ने, धोखा बहुत दिया था॥

छीना था विश्वास हमारा, झूठे न्यायालय ने।
पूजा का अपमान किया था, अर्चित देवालय ने॥
ऊँचे पद ऊँची उपाधियाँ, कचन से मिलती थी।
तब गेहूँ की नही रोटियाँ, सोने की भिलती थी॥

प्रजातन्त्र मे राजतन्त्र था, राजतन्त्र में क्रीड़ा।
राजाओ की मनमानी थी, नाच रही थी व्रीड़ा॥
नम: देश के नये प्रहरियो ! नम. पुरानी छाया।
नाच रही है नचा रही है, अधिकारों की माया॥

आँसू चरणो पर गिरे,
करने लगे प्रणाम।
भारत की पीड़ा हरो,
तीर्थंकर सुखधाम॥

जो जलती दीप शिखाओ सी, उन देश ज्योतियो को प्रणाम।
जो रक्त दे गये ध्वज के हित, वे है धरती पर सुवह शाम॥
जो आँसू वन कर नही वहे, वे गगा वन कर वहते हैं।
वे उपवन वन कर खिलते हैं, जो दु ख न अपना कहते हैं॥

जो अगारो पर खूब चले, वे मौन गगन के तारो मे।
जो वीज धूलि मे मिले पडे, वे फूलो मे सत्कारो मे॥
उन वलिदानो की पूजा है, जिनसे यह भारत देश टिका।
उन वीरो को शत शत प्रणाम, आँसू पर जिनका शीश विका॥

यह देश अशेष महेश महा, विष पीकर जीवन देता है।
दु खो को गले लगाता है, पथ के पत्थर चुग लेता है॥
तरुओ मे भारत मूर्तिमान, फूलो मे भारत मुस्काता।
सरिताओ मे कलरव भारत, कोयल की वोली मे गाता॥

ऋतुओं में रगों में भारत, ऋतुराज देश प्यारा भारत ।
न्यारी भारत माँ की महिमा, न्यारे हम तुम न्यारा भारत ।।
धरती की सहन शक्ति इसमें, अम्बर की ऊँचाई वाला ।
दुनिया के कमल खिलाता है, तगते सूरज का उजियाला ।।

अवतीर्ण हुए है भारत में, शकर तीर्थंकर मुनि ज्ञानी ।
इन्द्रासन की रक्षा करते, निज अस्थिदान कर ऋषि दानी ।।
रूपों रासो में रागो में, त्यागो मे है भारत महान ।
अपने से पहले औरो का, भारत को रहता सदा ध्यान ।।

ऐसे उत्थानो का भारत, अर्चित है झरनों के जल से ।
यह देश महावीरों का है, वट वृक्ष बना तप के बल से ।।
यह वन है खिले गुलाबो का, फूलों में काँटे बड़े बड़े ।
यह देश सुगन्धित फूलो का, जब फूल छुवे तब शूल गड़े ।।

जय जय भारत देश हमारे,
जय जय जय आँखों के तारे ।
सन्तो की वाणी से मुखरित,
सुमन चढ़ाते सुर तरु सारे ।।

सागर चरण पखार रहा है, सुरभित सरिताएँ गाती है।
अम्बर भारत का गौरव है, धरती भारत की थाती है ।।
इसका तप यदि पूछे कोई, वर्द्धमान के दीप दिखाना ।
गुरुओं के वचनो से ज्ञानी, सीखा इसने ज्ञान सिखाना ।।

तप से प्रकट सिद्धि है भारत,
हम न कभी दुःखो से हारे ।
जय जय भारत देश हमारे,
जय जय जय आँखो के तारे ।।

पृथ्वी नित फल फूल चढाती, करती है रश्मियाँ आरती ।
वीणा बजा बजा लिखती है, भारत की कीर्तियाँ भारती ।।
शक्ति सजग पहरा देती हे, भक्ति मूर्तियो मे आकर्षण ।
दीपो में शाश्वत प्रकाश है, वीर शहीदो के प्राणार्पण ।।

धरती के दीपो से अर्चित,
पूजा करते प्राणी सारे।
जय जय भारत देश हमारे,
जय जय जय आँखो के तारे ॥

उन्नत शीश हिमाभ्र हिमालय, सूर्य सुनहरा मुकुट भाल पर।
परिक्रमा कर रहा हिमानिल, यहाँ नाचते कृष्ण व्याल पर॥
अणु अणु मे विभु का विजयोत्सव, कमल कमल मे युग निर्माता।
सन्देशो के दीप जले है, दीपो से शलभो का नाता॥

महावीर के चरण वरण है,
जिनसे जीवन के रिपु हारे।
जय जय भारत देश हमारे,
जय जय जय आँखो के तारे ॥

नमन देश मेरे अमर देश मेरे।
यहाँ भी वहाँ भी जले दीप तेरे ॥

दिया ज्ञान तुमने दुखो मे सुखो में।
गगन दीप हो तुम सुखी तुम दुखो मे ॥
अमर प्राण हो तुम सदा त्राण हो तुम।
सतत आत्मबल हो स्वयम् बाण हो तुम ॥

दिशा ज्ञान देते महामन्त्र तेरे।
नमन देश मेरे अमर देश मेरे ॥

तुम्हारे सुमन हर तरफ खिल रहे है।
तुम्हारे चरण मृत्यु पर मिल रहे है ॥
शिखा पर ध्वजा जीत गाती तुम्हारी।
सुरभि हर हवा खीच लाती तुम्हारी ॥

पवन गीत गाता सवेरे सवेरे।
नमन देश मेरे अमर देश मेरे ॥

सिद्धियों के सुमन विश्व की जीत हो।
कर्म के दीप हो धर्म के गीत हो ॥
मित्र हो तेज हो तीर्थ हो ज्ञान हो।
वेणु हो धेनु हो धन्य हो ध्यान हो ॥

सभी दीप तेरे सभी गीत तेरे।
नमन देश मेरे अमर देश मेरे ॥

जो तपःपूत चिद स्वानुभूत, वे आराध्यों के कठहार।
जो कर्मो के जय दीप जीव, वे समय सार वे सृष्टि सार ॥
जो काम क्रोध पर जय पाते, वे अमर गीत वे अमर जीत।
क्या लोभ मोह, क्या राग द्वेष ! क्यो हो इनमें जीवन व्यतीत ॥

ऐसे सद् पुरुषो को प्रणाम– जो भोगो के रस त्याग चले।
उन पथिकों को हर बार नमन, जिनके चलने से दीप जले ॥
वे कल्पवृक्ष वे कामधेनु, जो जग को ज्ञान दान करते।
वे आत्मोज्ज्वल वे जीवन जल, वे कालातीत नही मरते ॥

देते हैं जो अनुभूत ज्ञान– वे ज्ञानोदय सर्वोदय है।
खेते हैं जो जग की नौका– वे माँझी वीर तपोमय हैं ॥
जो श्रम से जग के जीवन है– वे धूलिघूसरित पडे प्राण।
जो अपने तप के फल देते– वे महावीर है लोक-त्राण ॥

तन हाथी है आत्मा अंकुश, मन है सवार आँधियाँ प्रबल।
जो आत्म-तेज से चलते है, वे गंगा लाते फोड़ अचल ॥
जिनके श्रमकण निर्माणों में, वे तपी मन्दिरो में अर्चन।
जो सैनिक मृत्युंजय महान, उनका छन्दो से अभिनन्दन ॥

श्रमिकों के तप के दीप जले, आँधी पानी अंगारों में।
श्रम रूपान्तर से पुजता है, मन्दिर मस्जिद गुरुद्वारो मे ॥
ये श्रमिक साधुओं के स्वरूप, ये हलधर धरती के हल है।
भगवान परिश्रम मे रहते, श्रम दीप दुर्बलों के बल है ॥

यह प्यासा श्रम के पानी से— सूरज की ज्वाला पी जाता।
भगवान रूप हो जाता है— दोपहरी में गाता गाता॥
आराध्य काव्य के आलम्वन! श्रम धन से पूजा करता हूँ।
श्रम के फल फूल चढाता हूँ, आँखो के दीपक धरता हूँ।

हाथ पैरो के धनेश्वर— भूमि भरते ही रहेगे।
धर्मयोगी कर्मयोगी, दीप धरते ही रहेगे॥

आँधियाँ चलती रहेगी, बत्तियाँ जलती रहेगी।
मेघ श्रम करते रहेगे, डालियाँ फलती रहेगी॥
कर्म सूरज कर रहे है, कर्म धरती कर रही है।
भाल पानी दे रहे हैं, भूमि पानी भर रही है॥

भूमि पर जड़ जीव जंगम, कर्म करते ही रहेगे।
हाथ पैरो के धनेश्वर, भूमि भरते ही रहेगे॥

देव दानव ने किया श्रम, रत्न सागर से निकाले।
कर्मवीरो ने धरा पर, सिन्धु गागर से निकाले॥
कर्म करके देश का धन, कर्महीनों से बचाना।
कर्म ईश्वर कर रहा है, रूप ईश्वर का बताना॥

श्रम सपूतो से सुखी सब त्याग करते ही रहेगे।
हाथ पैरो के धनेश्वर, भूमि भरते ही रहेगे॥

श्रम फलेश्वर श्रम जलेश्वर, श्रम जनेश्वर जय श्रमिक की।
विश्व के हर पेड़ मे है— जय श्रमिक की वय श्रमिक की॥
भूमि के भगवान की जय, प्राण धन दिनमान की जय।
पूर्ण है ईमान जिसका— उस तपी इसान की जय।

धूप मे जो तप रहे वे— दुःख हरते ही रहेगे।
हाथ पैरो के धनेश्वर, भूमि भरते ही रहेगे॥

ऐसे त्यागोज्ज्वल धन्य धन्य, जो सुख देते है दुख लेते।
जो प्राणो को दे देते है, जो धर्म नही अपना देते॥
जिनका जीवन जग का जीवन, जो क्रूर नही मजबूर नही।
अभिवादन उनको बार बार, जो है आँसू से दूर नही॥

जो सूक्ष्म और विस्तार स्वयम्, वे हर आँसू की कविता है।
जो ज्ञान विश्व को देते है, वे अन्धकार में सविता हैं॥
मित्रो ! जब पुण्योदय होता, तब साधु भाग्य से मिलते है।
जो सत्संगो के सूरज हैं, उनसे त्यागोत्पल खिलते है॥

साधू जो अलख अगोचर है, वे वर्णिका को वाणी दे।
जो अप्रमेय आलोक लोक, वे महाशक्ति कल्याणी दे॥
जो शास्त्र रूप कवि की सज्ञा, उन सत्यो को मेरा प्रणाम।
जो सुन्दर है, शिव है, चिद् है, उन सबको मेरी राम राम॥

जो मलयज अज अनवरत अर्घ्य, वे आदि अन्त से आगे हैं।
जो युग युग के जागरण गीत, वे जग से पहले जागे है॥
जय नारायण प्रतिनारायण, जय नायक, खल-नायक मेरे।
विनती है एक पुजारी की, गति को न कही वाधा घेरे॥

जो निश्चित है जो नीतिकुशल, उन चक्रवर्तियो को प्रणाम।
जो निराकार साकार सार, अणु अणु में उनका अमर नाम॥
जिनसे मन के रावण हारे, वे राम मुझे मन की जय दे।
जिनकी बासुरी नाग फण पर, वे कृष्ण मुझे अपनी लय दे॥

लो उनकी वाणी का प्रसाद, जो कभी कभी ही आते है।
वे सब मेरे मगलाचरण, जो फूलो में मुस्काते है॥
जो युगाधार अवतार हुए, वे भावुकता के गान वने।
जो तीर्थंकर भगवान हुए, वे गीतों को वरदान वने॥

नमः चिदानन्द आनन्द दाता।
नमः अगोचर नमः छन्द दाता॥
नमः देव ब्रह्मा नमः तमोहर।
नमः विष्णु सर्वम् नमः मनोहर॥
नमः नीलकठाय नमः शिवाय।
नमः इन्द्र इन्द्रा नमः सूर्याय॥
नमः शिवा सुत नमः शक्ति माता।
नमः चिदानन्द आनन्द दाता॥

जो शेष ज्योति जो देश ज्योति, जो वेश ज्योति वें मेरे वन ।
जो धरती के धन है वन है, वे धरण वरण वर मेरे मन ॥
जो स्वयम् सत्य आचरण युक्त, उनकी पवित्रता मुझे मिले ।
वे चरण चरण में स्वरलय हो, जिनसे चरित्र के फूल खिले ॥

जय उनके चरण चूमती है, जो समझ स्वयम् को चलते है ।
उन पर परवाने आते है, जो दीपक वन कर जलते है ॥
पहचान लिया परमेश्वर को, सव अपनो को पहचान लिया ।
यह दुनिया सिर्फ स्वार्थ की है, मैंने दुनिया को जान लिया ॥

जैसे कीचड मे कमल खिले– वैसे कवि जग में खिलता है ।
जलजात रश्मियो से खिलते– जव कोई सूरज मिलता है ॥
उन कवियो को करता प्रणाम– जो ज्वाला में आग्नेय खिले ।
कुछ जन पूजा के फूल मिले– कुछ चुभने वाले शूल मिले ॥

वे कवि रवि है जो तपते है– जो कहते है वह करते हैं ।
जो सत्य निडर होकर कहते– उनसे पापोदय डरते है ॥
जो शब्द सत्य के चित्रकार– वे किसी काल से मरे नही ।
जो सत्य अहिंसा के प्रतीक– वे तलवारो से डरे नही ॥

जो शास्त्रो को श्रद्धा देते– ऐसे आदर्शो को प्रणाम ।
वे भोज विक्रमादित्य मित्र– जो दे मणियो के सही दाम ॥
वे मैल न आने दे मुझमें– जो निन्दा करने वाले हैं ।
जो मेरी त्रुटियो को कहते– वे जीवन के उजियाले है ॥

दलवन्द निन्दको को प्रणाम– दुष्टो को करता नमस्कार ।
जो मणि वाले सर्पो से है– वे गुणी सताते वार वार ॥
मणि रवि पवि फणि झझा तम गम– उर पर तलवारे धरते है ।
हम है जो इन सव नागो को– वशी से वश मे करते है ॥

शूल गडते रहे पैर वढते रहे ।
दुष्ट जलते रहे वैर वढते रहे ॥

हम मनाते रहे वे बिगड़ते रहे।
वे विना बात भी रोज अड़ते रहे ॥
रोकते राह वे रोक पाते नही।
कर्म के पेड है भीख खाते नही ॥

दोस्त लडते रहे दोष मढते रहे।
शूल गडते रहे पैर बढते रहे ॥

सामने मित्र है पीठ पीछे छुरे।
जो चरण चूमते वे बताते बुरे ॥
वहुत चालाक हैं विप भरे ये घड़े।
कर्म के नीच है दीखते है बड़े ॥

धूर्त सड़ते रहे मित्र चढते रहे।
शूल गडते रहे पैर वढ़ते रहे ॥

जो स्वयम्सिद्ध है वे न रुकते कभी।
जो दिगम्वर हुए वे न झुकते कभी ॥
त्याग के सामने शस्त्र क्या अस्त्र क्या ?
साधुओ के लिये अन्न क्या वस्त्र क्या ?

पर्वतो पर तप.पूत चढते रहे।
शूल गडते रहे पैर बढते रहे ॥

नाग क्या आग क्या मृत्यु का डर नही।
जन्म लेकर मरा कौन सा नर नही ?
क्यो किसी से डरूँ दाग कोई नही।
सत्य को डस सका नाग कोई नही ॥

फूल खिलते रहे नाग चढ़ते रहे।
शूल गड़ते रहे पैर वढ़ते रहे ॥

जो शुद्ध अहिंसा से सुरभित, सम्यक दर्शन के अमर ग्रन्थ।
वे सव धर्मो के कल्पवृक्ष, उनसे निकले है सभी पन्थ ॥
उस महावृक्ष को जल देता, जिसकी शाखाए है अनेक।
दीखा करते है पेड़ वहुत, पर धरा एक भगवान एक ॥

जो योग भोग से मुक्त शान्त, वे धीर वीर भगवान धन्य ।
जो ऋषि मुनियों के तिलक रत्न, वे अद्भुत ज्योति के वर अनन्य ॥
जिन स्वर्ग और श्री की विभूति, जिन जगतालोक जनार्दन हैं ।
जिन की महिमा किरनें गातीं, जिन धर्मचक्र आवर्तन हैं ॥

जिन से धरती धन से भरती, जिन से कुबेर धन बरसाता ।
जिन के गुण कलाकार गाते, जिन से ब्रह्माण्डों का नाता ॥
जिन में जगदीश्वर रहते हैं, जिन से गंगा की धारा है ।
जिन में संसार हमारा है, जिन में परलोक हमारा है ॥

जिन कष्ट नष्ट कर देते हैं, जिन मुँहमाँगे फल देते हैं ।
जिन आँसू पोंछ दिया करते, जिन हर पीड़ा हर लेते हैं ॥
जिन हैं विदेह जिन से विदेह, वाणी पाते हैं गाते हैं ।
जिन से लँगड़े लूले प्राणी, आकाशों पर चढ़ जाते हैं ॥

जिन के चरणों के मिलते ही, अन्धों को आँखें मिल जातीं ।
जिन के श्वासों को छूते ही, ऊसर में खेती खिल जाती ॥
जिन के दर्शन मिल जाने से, संसार सार मिल जाता है ।
जिन के आसन के हिलते ही, ब्रह्माण्ड तुरत हिल जाता है ॥

वो संकटमोचन महावीर, क्योंकि उनकी दासी है ।
मीरा सी कलम नाचती है, पूजा करती है प्यासी है ॥
दो प्यासी को अपने स्वर दो, तुम बोलोगे वह गायेगी ।
लेखनी पुजारिन दर्शन कर, तुम में तुम ही हो जायेगी ॥

न भूलूँ न भटकूँ न अटकूँ दया हो ।
'त्रिशंकु' नहीं हूँ न लटकूँ दया हो ॥
मुझे राह में शक्ति देना तपोधन !
मुझे चाह में भक्ति देना यशोधन !
सभी संकटों से बचाना बचाना ।
मुझे हर कुपथ से हटाना हटाना ॥
तुम्हारे लिये गीत मेरा नया हो ।
न भूलूँ न भटकूँ न अटकूँ दया हो ॥

न मन को गिराऊँ न तन से गिरूँ मैं।
विजय पाप पर हो न घेरूँ घिरूँ मै॥
मुझे शक्ति देना मुझे ज्ञान देना।
सिखादो सिखादो मुझे दान देना॥

दया धर्म की हो सहायक जया हो।
न भूलूं न भटकूं न अटकूं दया हो॥

बहुत रो चुका हूँ बहुत खो चुका हूँ।
वहुत सो चुका हूँ बहुत वो चुका हूँ॥
मिला दर्द काफी मिली प्यास काफी।
किया है कलम ने यहाँ रास काफी॥

दिखा दो मुझे पथ जहाँ तक गया हो।
न भूलूं न भटकूं न अटकूं दया हो॥

तुम जो चाहो दे सकते हो, दो शक्ति मुझे दो भक्ति मुझे।
जय तीर्थंकर सम्पन्न शिवम्, दो धर्मो मे अनुरक्ति मुझे॥
तुम एक अनेकों के उद्गम, किरणे फूटी रच गये धर्म।
तुम ब्रह्माण्डो के वर मुमुक्ष, दो मुझे विश्व हित पुण्य कर्म॥

निर्धन के धन कवियो के मन, तुम माँझी तुम पथ के प्रकाश।
तुम जप से तप से डिगे नही, जग ने कितने भी किये रास॥
मैं चरित तुम्हारा गाऊँगा, स्वर को अन्तर श्री की लय दो।
मैं धर्मक्षेत्र में उतरा हूँ, पथ की वाधाओ पर जय दो॥

जग कुरुक्षेत्र में शान्ति मौन, बज रहे युद्ध के शख यहाँ।
हो रहे महाभारत मन के, रचने वैठा हूँ काव्य जहाँ॥
जीवन की विकट समस्याए, पल पल आ आ टोका करती।
मैं वार वार मरता रहता, चिन्ताए मगर नही मरती॥

दो चिन्ताओ से मुक्ति मुझे, दो मुक्ति मुझे हर भिक्षा से।
दूं दुखी विश्व को शान्ति सौख्य, गुरु महावीर की शिक्षा से॥
वधिको के पास कुटी मेरी, प्रति पल कटते रहते प्राणी।
शोलो को फूलो का मन दे, मुनि नाथ जिनेश्वर की वाणी॥

जो बकरी पत्ते खा जीती, इसान उसे भी काट रहा।
प्यालो मे शोणित पीता है, बच्चो की हड्डी चाट रहा॥
मुझको ज्वाला मे पानी दो, धरती की आग बुझा डालू।
जिन आँखो मे अगारे है, उनमे आँखो का जल डालूँ॥

युद्धो की ज्वाला धधक रही, मन मन मे लपटे बहक रही।
तोपो टैंको को पता नही, सरिताए कितनी दहक रही॥
फूलो को काटा करती है, शोणित की प्यासी तलवारे।
सन्तेश्वर श्री से शिक्षा ले, कुर्सी कुर्सी की तकरारे॥

तुम्हारे गीत गाने आ गया वरदान दो दाता!
तुम्हारी प्यास पाने आ गया उत्थान दो दाता॥

हृदय अस्तेय हो मेरा, सदा सम भाव से गाऊँ।
दिये उपदेश जो तुमने, न उनसे दूर मैं जाऊँ॥
धरा को जो दिया तुमने, धरा से कम नही है वह।
बनूँ निष्कम्प लौ स्वामी! तुम्हारी ज्योति मे रह रह॥

तुम्हारी जीत से नाता तुम्हारी ज्योति से नाता।
तुम्हारे गीत गाने आ गया वरदान दो दाता!

न शिक्षित हूँ न दीक्षित हूँ, तुम्हे पढता रहा हूँ मैं।
तुम्हारे पग पकड़ कर शैल पर चढता रहा हूँ मैं॥
सफलता इस लिये निश्चित तुम्हारे गीत गाता हूँ।
मुझे विश्वास पूजा का, फलो के वृक्ष पाता हूँ॥

मुझे मधु-मास मिल जाते तुम्हारे पास जब आता।
तुम्हारे गीत गाने आ गया वरदान दो दाता!

न देना स्वर्ग भी मुझको पतन से और चोरी से।
मुझे तुम दूर ही रखना अनय से घूसखोरी से॥
अहिंसा प्रेम के जल से मुझे सिंचित सदा रखना।
अनिश्चतता नही भाँती मुझे निश्चित सदा रखना॥

तुम्हारे पैर छू पाषाण सागर पार हो जाता।
तुम्हारे गीत गाने आ गया वरदान दो दाता!

धरा को धूप में देखा बने तुम मेघ की छाया।
तुम्हे छू तक नही पाई सुखो की मोह की माया॥
भूमि जब नीर को तरसी बने बरसात मतवाले।
अमृत जग को दिया तुमने पिये है जहर के प्याले॥
तुम्हारी सुरभि से विकराल विषधर बीन बन गाता।
तुम्हारे गीत गाने आ गया वरदान दो दाता!
न कविता लिख रहा हूँ अर्चना के दीप धरता हूँ।
हवाएँ चल रही उलटी समय से बहुत डरता हूँ॥
तुम्हारे गुण तुम्हारे पग तुम्हारे प्राण मेरे है।
करोडो सूर्य जब हो साथ तो फिर क्या अँधेरे है!
न खाली हाथ जाता है तुम्हारे पास जो आता।
तुम्हारे गीत गाने आ गया वरदान दो दाता!

वे नही राह में रुकते है, जिनको होता सन्देह नही।
मुझको न राह मे छोड़ेगे, पथ निर्माता सन्मार्ग कही॥
जो कवि कुल गुरु तुलसी के गुरु, वे महावीर मेरे भी हो।
जो नाम राशि जो रूप राशि, वे धरा धीर मेरे भी हो॥

उन सब की विनती करता हूँ, जो धर्म वीर जो कर्म वीर।
उन सब की पूजा करता हूँ, जो है प्यासो के लिये नीर॥
जिस धरती पर भगवान हुए, उस धरती को करता प्रणाम।
वे मुझे मृत्यु मे जीवन दे, वाणी पर जिनका अमर नाम॥

जो निर्विकार जो निराकार, साकार नाम से है वे भी।
आकार न जिनका दीख रहा, आकार नाम से है वे भी॥
गुण से निर्गुण गुणवान हुए, मैं नाम भज रहा हूँ जिनका।
सागर की लहरो ने गाया, भारी है पर्वत से तिनका॥

आदर्श रूप है साधू का, आदर्श नाम है साधू का।
हर युग निशान है साधू का, हर गेह ग्राम है साधू का॥
आँखो मे सूरत आ जाती, जब नाम किसी का लेते है।
आस्था से रच आकार सार, अर्चना नाम को देते है॥

पुष्प प्रदीप

कुछ नाम न चिता जला पाई, कुछ नाम चिता में राख हुए ।
कुछ नाम मन्दिरो मे पुजते, कुछ वीज पेड की शाख हुए ।।
कुछ धीरोदात्त धरा धन है, जो कवियो को सुख देते, है ।
जो गुणदायक नायक महान, कवि उनसे वाणी लेते है ।।

वाणी को पीडा होती है, भगुर भावो को गाने से ।
गीतो मे गति आ जाती है, ईश्वर के भजन बनाने से ।।
मै कोई सिद्ध समर्थ नही, जादू न मुझे कुछ आते है ।
त्रिशला नन्दन आनन्दकन्द, मेरा उत्साह बढाते है ।।

चाह उत्साह से राह मुझको मिली ।
राह मुझको मिली हर कली है खिली ।।
चाह जब तक नही राह तब नक नही ।
भावना के बिना वन्दना कब कही ।।
चल पडा मार्ग बनते गये स्वयम् ही ।
धूप मे मेघ तनते गये स्वयम् ही ।।
हिल गई हर शिला जिस समय यति हिली ।
चाह उत्साह मे राह मुझको मिली ।।
प्यास विश्वास से पैर आगे वढे ।
सागरो मे घुसे पर्वतो पर चढे ।।
मिल गया वह जिसे ढूढने थे गये ।
वे पुरातन नये फूल मेरे नये ।।
गीत गाने लगी चोट जो थी छिली ।
चाह उत्साह से राह मुझको मिली ।।
विश्व सग्राम मे जीत कर ही रहे ।
प्यास के कठ मे नीर बन कर वहे ।।
दाह को शान्ति का जल पिलाते रहे ।
पुण्य दुगने हुए दु ख जितने सहे ।।
कट कटारे गई लेखनी जब हिली ।
चाह उत्साह से राह मुझको मिली ।।

दीपों के स्वर फूलों के मन, सन्मति की पूजा करते है।
जिन की वोली में सुधा भरा, वे जगत सुधा से भरते है ॥
अर्पित है पुष्प प्रदीप धान ! चरणो मे पूजा प्रणत मित्र।
जीवन को ऐसा पानी दो, जैसा गगा का जल पवित्र ॥

मेरे विदेह मेरे स्वामी, उपदेश तुम्हारे मेरे हों।
प्रश्नों के हल नभ के तारे, मेरे ये सभी सवेरे हो ॥
युग युग की कीर्ति पताका दो, ज्वाला पर तपने वाली को।
स्याही दीपक की उजियाली, वरदान वनो उजियाली को ॥

दुर्गन्ध सुगन्ध करो मेरी, अक्षर अक्षर मै इत्र भरो।
उतरा अथाह सागर में मै, जैसे भी हो प्रभु! पार करो ॥
लिखवा कर काव्य कटखनो पर, पूरा करवादो अनुष्ठान।
तीर्थंकर तीर्थ मिले मुझको, मुनियों का मुझको मिले ध्यान ॥

गुणियो के गुण गणनायक दो, दोषो से मुझे वचा लेना।
हर सकट से रक्षा करना, तुम माँगे विना दया देना ॥
इस दुनिया मे मक्कार वहुत, मुँह मे मधु मन में जहर यहाँ।
तुम दौड़े आना नाथ वहाँ, मै तुमको भूलूँ नाथ जहाँ ॥

मै जग का मैला कमल एक, चरणो मे चढने आया हूँ।
रूखा सूखा सा है प्रसाद, आँखो के दीपक लाया हूँ ॥
पूजा के दीप प्रकाश वने, धरती पर अन्धकार फैला।
मैंने उनकी चादर ओढी, जिनका न हुआ आँचल मैला ॥

वुध राहु केतु शनि को प्रणाम, वलवान सदा अनुकूल रहें।
मगल की कृपा रहे मुझ पर, उपवन में खिलते फूल रहें ॥
रवि शशि खुलती मुँदती आँखे, हो रहे रात दिन के फेरे।
धरती पर त्राहि त्राहि करते, जलते दीपो से स्वर मेरे ॥

वे पथ वे छाया वे गति है—
जो धरती की तरह चले।
तप से परे सिद्धि से आगे—
पथ के गीत प्रदीप जले ॥

आँख उन पर अर्घ्य चढाती,
जो तप तप कर चाह बने।
पुष्प प्रदीप समर्पित उनको—
जो चल चल कर राह बने ।।

यह धरती है इस धरती पर,
चलने वाले खूब चले।
उन पर गीत शलभ है मेरे—
जो दीपों की तरह जले ।।

लगा न जिनको दाग एक भी—
स्याही मे घुस कर निकले।
वे पथ वे छाया वे गति है—
जो धरती की तरह चले ।।

कोई 'कस' सताता सब को—
कोई 'कृष्ण' बचाते है।
जब जब 'रावण' शोर मचाता—
'राम' दौड़ कर आते है ।।

तब तब 'लव कुश' पैदा होते—
जब जब 'सीता' रोती है।
घोर अधर्मो के बढने पर
गीता पैदा होती है ।।

तभी शेषशायी आते है—
जब पृथ्वी के नयन ढले।
वे पथ वे छाया वे गति है—
जो धरती की तरह चले ।।

स्वतन्त्रता की धूप दुखी है।
पापो के बन्धन भारी ।।
किरणो पर तम का शासन है।
फूलो पर चलती आरी ।।

आत्मा की आवाज बन्द है।
प्रेतो की मन चाही है॥
अन्धकार बढ़ता जाता है।
ज्योति कलम की स्याही है॥

वे मेरी आँखों में बन्दी
जो आँसू बन नही ढले।
वे पथ वे छाया वे गति है
जो धरती की तरह चले॥

विविध भाव प्राणी विविध, पूजा विविध प्रकार।
स्यादवाद के स्वरो से, अर्चन बारम्बार॥

सब रूपों की वन्दना, अनेकान्त है मित्र।
जग में जितने इत्र है, सब मिट्टी के इत्र॥

जितने भी भगवान है, जितने भी इंसान।
जड़ चेतन सब जीव जो, वे सब मेरे ज्ञान॥

## पृथ्वी पीड़ा

हँस रहे फूल! बोलो भी तो, हँस पडो भूमि, बोलो बोलो!
क्यो मौन? कौन तुम? कब से हो? सब कथा कहो, गति विधि खोलो!
इस मरती जीती दुनिया मे, क्या क्या देखा क्या क्या बीता?
वह कौन कि जो रोता रहता? वह कौन कि जो हँसकर जीता?

हँसने वालो की खुशी कहो, रोने वालो की व्यथा कहो।
कुछ बात करो बोलो बोलो, सब व्यथा कहो सब कथा कहो॥
माँ बोलो मौन खोल भी दो, माँ! हँस दो और बोल भी दो।
स्याही को रोली कर भी दो, आँसू मे अमृत घोल भी दो॥

इतना न कभी कोई सहता, माता तुम जितना सहती हो।
छाती पर बम वर्षा होती, सह लेती हो, क्या कहती हो॥
तुम हो अथाह बल है अथाह, भगवान भूमि पर खेले है।
तुमने आँखो से देखे है, जितने भी हुए झमेले है॥

युद्धो मे क्या क्या ध्वस हुए, तलवारो ने क्या क्या खाया?
कितने कितने निर्माण मिटे, अगारो ने क्या क्या पाया?
सामन्तो और पिशाचों की, क्रीडाए कितनी देखी है?
मरघट में पडी चूडियो की, पीडाए कितनी देखी है?

कितनी अलको की लाली को, धोया आँखो के पानी ने।
कितनी सीताए देखी है, अब तक लव कुश की नानी ने॥
तुमने ही सबको जन्म दिया, तुम मे ही तो सब समा गई।
बेटियाँ हिमालय के ऊपर, आँखो का पानी जमा गई॥

जड़ से चेतन, चेतन से जड़, किसके इगित से होते है ?
किसकी इच्छा से हँसते है, किसकी इच्छा से रोते हैं ?
वह कोन कि जो माँ से महान ? वह कौन कि जो जग चला रहा ?
यह कौन वत्तियाँ बुझा रहा, वह कौन वत्तियाँ जला रहा ?

मौन फूलो कहो तप्त तारो कहो ?
गीत लिखने लगा बोलते तुम रहो ॥

किस लिए हँस रहे किस लिए मौन हो ?
बोलते क्यों नही कौन हो कौन हो ?
क्या खिले हो भ्रमर के लिए भूमि पर ?
क्यो बसे हो गगन मे धरा छोड़ कर ?

दीपको की कहानी दुलारो कहो ।
मौन फूलो कहो तप्त तारो कहो ॥

मौन है पेड़ क्यो मौन आकाश क्यो ?
मौन है नीर क्यो मौन विश्वास क्यो ?
मैं पगों मे खड़ा बोलते क्यों नहीं ?
भेद भगवान का खोलते क्यो नही ?

जन्म किसने दिया है बहारो कहो ?
मौन फूलो कहो तप्त तारो कहो ॥

मौन है दर्द क्यो मौन हैं घाव क्यो ?
मौन हैं चाव क्यो मौन है भाव क्यों ?
मौन आराध्य क्यो मौन भगवान क्यो ?
भूमि के बोल से मित्र अनजान क्यो ?

क्या कहा मौन हम मौन तुम भी रहो ।
मौन फूलो कहो तप्त तारो कहो ॥

किस किसने फूल खिलाये हैं ? किस किसने दीप जलाये हैं ?
किस किसने हँसी बिखेरी है ? किस किसने अश्रु बहाये हैं ?
वह कौन मौन जो इगित से, ऋतुओ के रग दिखाता है ?
वह कौन कर्मयोगी अनन्त, जो अगणित ढग दिखाता है ॥

क्यों चुप है वह जो सृष्टा है, सृष्टियाँ बनाकर खेल रहा।
वह कौन हवा मे गति जिसकी ? यह कौन आग पर खेल रहा॥
क्यो मौन कर्मयोगी सूरज, क्यो मौन चाँदनी चमक रही ?
माया के आभूषण पहने, यह कौन दामिनी दमक रही॥

कुछ कहो मेदिनी सुख कितने ? दु खो के कितने आवर्तन ?
इस पथ पर आने जाने के, देखे कितने प्रत्यावर्तन॥
अपने अपने युग मे सबने, कितनी क्रीडाए कर डाली ?
कितने रावण कर गये राज ? कितनी सीताए हर डाली॥

धरती पर मन मानी की है, कैसे कैसे शैतानो ने!
ऋषियो मुनियो को कष्ट दिये, कैसे कैसे हैवानो ने॥
कैसे कैसे इन्सान हुए ? कैसे कैसे भगवान हुए ?
मैं वैसे वैसे गीत लिखूं ? जैसे जैसे भगवान हुए॥

मन्दिर मन्दिर मे रूप बहुत, पूजा पूजा में भेद बहुत।
धात्री! अम्बर की छाया में, है हर्ष बहुत या खेद बहुत ?
उत्कर्ष यहाँ किसका कितना, अपकर्ष यहाँ किसका कितना ?
सघर्ष यहाँ किसका कितना ? सघर्ष वहाँ किसका कितना॥

तारो के और बुदबुदो के, ये खेल हो रहे है कब से ?
सम्बन्धनो कर्मबन्धनो के, ये मेल हो रहे है कब से॥
ये मिलने और बिछडने के, छन्दो को कब से गाते है ?
क्यो रोते हुए यहाँ आते, क्यो जाते समय रुलाते है॥

जन्म लिया तो खुद रोया था—
मौत हुई तो दुनिया रोई।
रोया जन्म मौत भी रोई॥

रोने हँसने का क्रम क्या है ?
दुनिया मे मन का भ्रम क्या है ?
अपना और पराया क्या है ?
ममता क्या है माया क्या है ?

जो मेरी उलझन सुलझा दे—
ऐसा मुझको मिला न कोई।
जन्म लिया तो खुद रोया था—
मौत हुई तो दुनिया रोई॥
रोया जन्म मौत भी रोई।

चले गये रह गये बुलाते।
स्वप्न रिझाते स्वप्न रुलाते॥
झूल रहे कच्चे धागे पर।
जीव कहाँ जाता है मर कर॥

मैं मरघट की नयी चिता हूँ,
मेरी आग न पल को सोई।

जन्म लिया तो खुद रोया था,
मौत हुई तो दुनिया रोई॥
रोया जन्म मौत भी रोई!

धरती! मुझसे जल्दी बोलो।
आँखे खोलो मुँह भी खोलो॥
माता! मौन न मैं हो जाऊँ।
गाता गाता ही सो जाऊँ॥

थपकी दो लोरियाँ सुनाओ—
मेरी पीर न पल को सोई।

जन्म लिया तो खुद रोया था,
मौत हुई तो दुनिया रोई॥
रोया जन्म मौत भी रोई।

मेरी पीड़ा से पीडित हो, धरती माता साकार हुई।
छन्दो ने माँ की पूजा की, मैं, मैं न रहा मिट गई दुई॥
धरती का रूप देखने को, सिद्धियाँ तपस्याएं जागी।
माता की छवियो मे देखे, पूजा करते ऋषि वैरागी॥

शोभा अद्भुत सादगी खूब, कृत्रिमता कोई कही नही।
हरियाली के रोमाच खिले, झरनो के झूमर कही कही ॥
फूलों का तन सौरभकम्पन, आँखो मे पानी प्यास भरा।
अलको में रगो के नर्तन, सिर पर पर्वत का मुकुट धरा ॥

माँ हिमकिरीटनी माथे पर, मोती श्रमिको के जडे पडे।
गालो पर गगा लहराती, अधरो में कवि है बडे बडे ॥
पतली लम्बी तरु ग्रीवा मे, गीतो की मालाए मुखरित।
फल फूलो लदी डालियो मे, धरती की वालाए मुखरित ॥

कण कण मे प्राणो की श्री है, श्वासो मे जीवन की धारा।
वक्षस्थल मे है नीर क्षीर, नाभी मे कोष भरा सारा ॥
रस वहता चरण किनारो मे, उँगलियाँ मनोहर कलियो सी।
हँस पडी धरा तितलियाँ वनी, कविताए गूँजी अलियो सी ॥

रो पडी हो गया जलप्लावन, हिल गई हिल गया जग सारा।
खुश हुई भर गये रिक्त कोष, फूटी तो फूट पडी धारा ॥
धरती माँ मूर्ति अहिंसा की, परिधान दया के पहने थे।
मानो साकार क्षमा वसुधा, शाश्वत सत्यो के गहने थे ॥

धात्री की पूजा करती थी, रश्मियाँ आरती गा गा कर।
सुन्दरता से कुछ कहते थे, भौरे कलियो पर आ आकर ॥
पृथ्वी के अगणित रूपो मे, मुझको अनन्त एकता मिली।
आँसू ने माँ से कथा कही, धरती माता की मूर्ति हिली ॥

आँसुओ ने कहा भूमि सुनने लगी।
आँसुओ के गिरे हार चुनने लगी ॥
पीर सुनने लगी धीर के कान ले।
पीर सुनने लगी वीर से ज्ञान ले ॥
राम के कान ले वात माँ ने सुनी।
कृष्ण का ध्यान ले वात माँ ने सुनी ॥
भाव वढने लगे वीन उगने लगी।
आँसुओ ने कहा भूमि सुनने लगी ॥

वीर प्रह्लाद की याद मुखरित हुई।
धीर ध्रुववाद की याद मुखरित हुई ॥
शिव स्वयम् भूमि के स्वर बने उस समय।
लेखनी मे क्षमा हर बने उस समय ॥

मेदिनी पर पड़े फूल चुगने लगी।
आँसुओं ने कहा भूमि सुनने लगी ॥

भूमि कोयल बनी गीत गाने लगी।
पीर मेरी तुम्हारी सुनाने लगी ॥
भूमि मुखरित हुई सिन्धु के गान में।
भूमि बोली महावीर के ज्ञान में ॥

ज्ञान की तान सुन भूमि उठने लगी।
आँसुओं ने कहा भूमि सुनने लगी ॥

भूमि गाँधी बनी शान्ति का राग ले।
शेषशायी बनी कान्ति का नाग ले ॥
भूमि गीता सुनाने लगी मित्र को।
मित्र भरने लगा भूमि के इत्र को ॥

मौन के शब्द की साँस घुटने लगी।
आँसुओ ने कहा भूमि सुनने लगी ॥

•

धरती बोली मत कहो व्यथा, अवतार यहाँ रोते देखे।
मेरी मिट्टी में वडे वडे, राजा रानी सोते देखे ॥
होते देखे है युद्ध यहाँ, फिर घट मरघट जलते देखे।
अरबों सूरज उगते देखे, अरबो सूरज ढलते देखे ॥

दुनिया की भीषण वाढो में, मै वहुत वार तैरी डूवी।
आश्चर्य मुझे है अपने पर, जीवन से कभी नही ऊवी ॥
मैं ज्वालाओं से जली नही, प्रलयंकर जल में गली नही।
दिन आते जाते रहते है, मैं दिन रातो में ढली नही ॥

मुझ पर बम वर्षा होती है, मुझ पर तलवारे चलती हैं।
मुझ पर अन्याय हुआ करते, मेरी तस्वीरे जलती है॥
मैं व्यभिचारो से व्यथित मौन, मैं हत्याओ से दुखी बहुत।
मेरा तन जमा हुआ लावा, मै मूक शान्ति से सुखी बहुत॥

मैने वे भूखे देखे है, जो खाते खाते भी भूखे।
ऐसे भी पेड यहाँ देखे, जो पानी विना नही सूखे॥
मैं इतना देती हूँ फिर भी, भरता मनुष्य का पेट नही।
जिस जगह बुलाता श्रम मुझको, भोजन वन पहुँची वही वही॥

मैने रिश्वत की थैली में, देखे है आँखो के मोती।
यह पता नही है चोरो को, मुझको कितनी पीडा होती॥
यह कौन जानता है जग में, मुझ पर वीती कैसी कैसी।
मेरी आँखो की कविता है, निष्पन्दित दीपशिखा जैसी॥

मै खुदी फावलो से प्रति पल, खोदा है मुझे खुरपियो नें।
खेतो बागो मैदानो में, गोदा है मुझे खुरपियो ने॥
मैं खोदी गई खतियो से, लोहे के यन्त्रो नें भेदा।
मेरे शरीर को बार बार, पैनी कुदालियो ने छेदा॥

मैं मौन सब सहती रही—
हर आग मे हर राग मे।
सरिता बनी बहती रही—
हर खेत मे हर बाग मे॥

हर दुर्ग मे हर नीड मे,
मुझको चिना है राज ने।
मैं गिर पड़ी रोने लगी,
जब घर गिराये गाज ने॥

मैं मन्दिरो मे भक्ति हूँ।
मै मूर्तियो मे शक्ति हूँ॥
मैं श्राविका ससार मे,
मैं जीव में अनुरक्ति हूँ।

'सीता' रही 'लवकुश' दिये,
उज्ज्वल रही हर दाग में।
मैं मौन सब सहती रही,
हर आग में हर राग में॥

मरघट बने है वक्ष पर,
ज्वाला धधकती देह में।
आँखे बरसती मौन रह,
जलती चिताएँ मेह में॥

विष पी रही हूँ विश्व का,
मैं काल से हारी नही।
मैं उठ सकूँ यमराज से,
ऐसी सरल नारी नही॥

कविता दमकती ही रही,
संसार की हर आग में।
मैं मौन सब सहती रही,
हर आग में हर राग में॥

मेरी नशीली गन्ध है–
कनौज के हर इत्र मे।
मेरे रसीले रूप है–
हर मूर्ति मे हर चित्र मे॥

मैं भाल पर चन्दन बनी,
मैं मेहँदी हूँ हाथ मैं।
मैं स्वर्ण में, हर रत्न में,
मैं हूँ पथिक के साथ में॥

मैं ताज में, मैं तख्त में–
मै मणि दमकती नाग में।
मैं मौन सब सहती रही–
हर आग में हर राग मे॥

मैं साथ सूरज के तपी—
मैं साथ जागी मित्र के।
इतिहास मैं लिखती रही,
मै उत्स देती इत्र के॥

मै दुख में वहकी नही,
सुख मे कभी डूवी नही।
मैं धर्म से ऊवी नही,
मैं कर्म से ऊवी नही॥

मै हूँ अहिंसा सर्वश्री,
हर मार्ग मे हर स्वाग में।
मैं मौन सव सहती रही,
हर आग मे हर राग मे॥

वह कौन कि जिसके पैरो से, मैं दवी नही मैं गुदी नही।
वह कौन कि जिसके हाथो से, मैं रुँदी नही मैं खुदी नही॥
मजदूर मुझे पीसा करता, रौदा करता है कुम्भकार।
चोटो से घडता रहता है, मुझको हथौडियो से सुनार॥

मैं काष्ठ और मैं लोहा हूँ, मैं चाँदी हूँ मैं सोना हूँ।
मैं तरु हूँ फल हूँ पर्वत हूँ, मैं चोटी हूँ मैं कोना हूँ॥
मै रेती हूँ मैं खेती हूँ, मै जीवन हूँ मैं ज्वाला हूँ।
मै पनघट हूँ मैं मरघट हूँ, मै हाला हूँ मैं प्याला हूँ॥

मुझसे दौलत पैदा होती, मुझमे दौलत मिल जाती है।
मैं हिलती हूँ तो गर्वोन्नत, ऊँची चोटी हिल जाती है॥
मेरी छाती पर पर्वत है, मेरी छाती पर सागर है।
मेरे सिर पर फल फूल लदे, मेरे हाथो मे गागर है॥

मै कण से अणु अणु से विभु हूँ, सेवा करके सुख पाती हूँ।
कर्त्तव्यो की तपती निधि हूँ, मैं अचला घूमे जाती हूँ॥
मेरा विधान शाश्वत विधान, मेरा निसान सवका निसान।
भगवान् रूप हो जाता है, जव तप तप गाता है किसान॥

मैं दु.शासन के लिये प्रलय, मैं जय धर्मात्मा राजा की।
सेवा मे रत चरणो में नत, मै वय परमात्मा राजा की ॥
मैं भूमि प्रकृति श्री अद्भुत की, मै नवधा सेवा भाव भरी।
मैं खरी न खोटी होती हूं, मैं पारस पथरी हरी हरी ॥

लोहा जव मुझसे छू जाता, सोना ही सोना हो जाता।
वालों में मोती उग आते, जव कोई दाने वो जाता ॥
मैं तव वाणी बन जाती हूँ, जब कोई साधू गाता है।
स्वर-लहरी नृत्य किया करती, जब कोई 'सन्मति' आता है ॥

धर्मदूत धरती पर आते।
दुष्टो से भगवान बचाते ॥
तीर्थकर शकर सुख देते।
नारायण पीड़ा हर लेते ॥
जब पापो की अति होती है।
प्रकट पूर्ण सन्मति होती है ॥
हिंसक से प्रह्लाद बचाते।
धर्मदूत धरती पर आते ॥
जब जव जैसा राक्षस आता।
तव तव वह वैसा फल पाता ॥
शस्त्र शास्त्र से कट जाता है।
रवि आता तम फट जाता है ॥
मेरे वच्चे वीर वचाते।
धर्मदूत धरती पर आते ॥
कभी 'तारकासुर' चढ आया।
कभी 'वृकासुर' शिवपर छाया।
'कार्तिकेय' पैदा होते है।
असुरों को भू से खोते है ॥
जव जव पापी उधम मचाते।
धर्मदूत धरती पर आते ॥

'रावण' गर्जा क्या फल पाया ?
सारे कुनवे को मरवाया ॥
रक्षा 'राम' किया करते है।
धरती की पीडा हरते है ॥
महावीर 'सीता' सुधि लाते।
धर्मदूत धरती पर आते ॥

जब भी कोई 'कंस' सताता।
'कृष्ण' नाग के फण पर गाता ॥
मैं हूँ सती 'द्रोपदी' नारी।
बचा न कोई अत्याचारी ॥
मेरी साडी कृष्ण बढाते।
धर्मदूत धरती पर आते ॥

मिट मिट गई दुष्ट की माया।
'ध्रुव' का नाम नही मिट पाया ॥
शैतानो की नाव न चलती।
पल मे 'लका' धूं धूं जलती ॥
पुण्य पाप के महल जलाते।
धर्मदूत धरती पर आते ॥

जिनके कर्म बिगड़ जाते है।
मद मे अन्धे अडडाते हैं ॥
उनका नाम निशान न रहता।
पापी बनो विधान न कहता ॥
विधि के शाश्वत नियम न जाते।
धर्मदूत धरती पर आते ॥

अन्त महाभारत का क्या है ?
कत महाभारत का क्या है ?
तीर्थंकर का श्रीगणेश है।
शेष वीर वह गति अशेष है ॥

रहते धर्म कर्म के नाते।
धर्मदूत धरती पर आते॥

जो त्याग अहिंसा को देता, उसके बल की बलि हो जाती।
जो छल करके गर्वान्ध हुआ, उसकी अन्तर श्री खो जाती॥
जय सिर्फ शस्त्र की नही मित्र! शास्त्रो की जीत न जाती है।
जो वाणी कभी नही मिटती, वह कभी कभी ही आती है॥

सत्युग बीता त्रेता बीता, द्वापर बीता कलियुग आया।
सत्युग की महिमा बाकी है, उस युग का सत्य न डिग पाया॥
बिक गये स्वयम् राजा रानी, बेचा न धर्म बेचा न कर्म।
भारत के गौरव का प्रतीक, 'शिवि' 'हरिश्चन्द्र' का जीव धर्म॥

धरती 'दधीचि' से धन्य धन्य, भारती 'भारत' से धन्य धन्य।
रण रोक भूमि में समा गई, माता सीता सी कौन अन्य?
पापो शापो के कारण से, द्वापर मे नर सहार हुए।
रोती 'गान्धारी' से पूछो, वे कैसे हाहाकार हुए?

काले दागों से लिखी हुई, कलियुग की काल कहानी है।
वाणी वाणी में है गौरव, आँखों आँखो मे पानी है॥
इतिहास रक्त से भरा पडा, कुछ कुछ बाकी खो गया बहुत।
हम रहे विदेशी कारा मे, घट घट में विप हो गया बहुत॥

जिस असि में नही अहिसा है, वह काट नही कर सकती है।
जो तेज आत्म बल से प्रेरित, वह प्यास नही मर सकती है॥
'गाँधी' के पास अहिसा थी, वाणी थी महावीर वाली।
जय मिली बदल डाली दुनिया, की मुक्त क़ैद से उजियाली॥

उजियाली तम के घेरे मे, कलियुग मे कब से घुटती थी।
जब से अनार्य आ गये यहाँ, भारत माँ तब से घुटती थी॥
आये अनार्य इस धरती पर, राजाओ की मनमानी से।
शोणित की धाराएँ खेलीं, गगा यमुना के पानी से॥

आये यहाँ अनार्य देश में सकट आये भारी।
एक हाथ मे धर्म एक मे थी तलवार दुधारी।।
शास्त्र जलाने लगे यहाँ के फैल गये पाखंडी।
चडी रुष्ट हुई हम तुम से चढे नये पाखडी।।
लुटी मडियाँ लुटी वेटियाँ टूटे मन्दिर मेरे।
गिन न सकोगे लिख न सकूँगा डाले कितने घेरे।।
मुट्ठी भर राजा वन वैठे शक्ति वट गई सारी।
आये यहाँ अनार्य देश मे सकट आये भारी।।
छोटे छोटे राज्य रह गये छोटे छोटे राजा।
राज महल मे रास रंग मे खोये खोटे राजा।।
घुस आती दासता देश मे जव न वीरता रहती।
रहती नही अहिंसा जिस क्षण धरती पीडा सहती।।
खेल वन गये भोगी राजा वनी खिलौना नारी।
आये यहाँ अनार्य देश मे सकट आये भारी।।
उनका धर्म प्रचार हमारा ध्यान भोग मे खोया।
उनका राजा जाग रहा था अपना राजा सोया।।
वढती गई फूट घर घर मे अपने हुए पराये।
भटक गया जो अपने पथ से उसको कौन वचाये ?
ज्ञान गया विज्ञान खो गया स्वार्थो ने मति मारी।
आये यहाँ अनार्य देश मे सकट आये भारी।।

जव धर्म न धरती पर रहता, मनमानी होने लगती है।
जव कर्म न धरती पर रहते, जग की श्री खोने लगती है।।
जव सत्य छोड देते है हम, आत्मा का वल घट जाता है।
जव सिर्फ स्वार्थ रह जाते हैं, सुख का प्रभात हट जाता है।।
अतियो से आँधी आती है, कुदरत करवट वदला करती।
पानी से लपटें उठती हैं, धरती की गति मचला करती।।
मर्यादा के तट तोड़ तोड, सागर पर्वत पर चढते है।
उत्थान पतन वन जाते हैं, जव पैर पाप के वढते हैं।।

जब प्रकृति रोष में रो पडती, तब जल का नग्न नृत्य होता।
पृथ्वी जल में होती विलीन, जब धरती का कण कण रोता॥
जल दावानल बन जाता है, गीतों से आग निकलती है।
मुँह फाड फाड़ फेनिल धारा, सारा संसार निगलती है॥

श्वासों से धुवाँ फूटता है, अम्बर से बिजली गिरती है।
सर्पिणी सृष्टि डस लेती है, धरती की छाती चिरती है॥
पशुओ की बलि दी जाती है, यज्ञो से ज्वाला उठती है।
हिसा खुलकर खेला करती, अलको की लाली लुटती है॥

भूचालो को ला देता है, मृदु फूल पत्तियों का प्रकोप।
जब कोप गगन का होता है, हो जाता है संसार लोप॥
स्वार्थो की तलवारे चलती, विध्वस धरा पर होते है।
जो सता सता कर हँसते है, वे हँसने वाले रोते हैं॥

लो देखो धरती की पीडा, आ आ भूचालो ने गाया।
प्रलयकर लहरो मे देखो, कोमल कलिकाओ की काया॥
क्यो पृथ्वी के आँसू गिरते, क्या पता नही भूपालो को।
रोको तुम शस्त्रो से रोको, तूफानो को भूचालों को॥

धरा के मौन में आवाज होती है।
धरा चुपचाप हँसती और रोती है॥
बरा का रूप धर धरती कभी गाती।
कभी वीणा बजाती भूमि सुख पाती॥
धनुष मे राम की टकार होती है।
वज्र में इन्द्र की ललकार होती है॥
बड़ी बेहोशियो मे लाज रोती है।
धरा के मौन में आवाज होती है॥
धरा मुरली बनी जब 'कृष्ण' ने गाया।
धरा ने शख ध्वनि कर युद्ध मचवाया॥
धरा 'गाँडीव' के स्वर मे यहाँ बोली।
धरा चीत्कार के स्वर कर कभी डोली॥

गदा के घोष में भी भूमि होती है।
धरा के मौन में आवाज होती है॥

भूमि मे वीर रस भरपूर होता है।
धरा मे हास्य रस अगूर होता है॥
कलम को शोक होता रस करुण होता।
यहाँ पर भय भयानक भूत का पोता॥

यहाँ शृङ्गार रस में बात सोती है।
धरा के मौन मे आवाज होती है॥

भभकते क्रोध से ज्वाला धधकती है।
हृदय की आग से बिजली दमकती है॥
सडा शव गिद्ध खाते राह रोती है।
चिता को देख सबकी चाह सोती है॥

बड़े अन्दाज से यह भूमि रोती है।
धरा के मौन में आवाज होती है॥

नौ रस में धरती बोल उठी, कवि! काल चक्र चलता रहता।
चलता रहता ससार सदा, दीपक बुझता जलता रहता॥
जितना जो कुछ जिसने बोया, उतना वह सब उसने भोगा।
काँटो का अन्त नही होगा, फूलो का अन्त नही होगा॥

अपनें अपने अधिकार यहाँ, अपनें अपने है रूप यहाँ।
कोई होता है भूप यहाँ, कोई होता है सूप यहाँ॥
कर्मो से काल चक्र चलता, कर्मो से है विधि का विधान।
कर्मो से झुकता है निसान, कर्मो से उठता है निसान॥

जब सर्व प्रथम शुभ कर्म किये, उस भूमि बनाने वाले नें।
हर प्राणी को फल फूल दिये, सब पेड लगाने वाले ने॥
जिसमे कोई भी आँसू हो, ऐसा कोई भी देश न था।
जिससे मनुष्यता मुखर न हो, ऐसा कोई भी वेश न था॥

दुःखों का लेश नही था तव, सुख ही सुख थे सर्वत्र यहाँ।
ऐसा न कही कोई मन था, टिक पाता पल को पाप जहाँ॥
था दुखी न कोई भी प्राणी, दु खो का नाम निशान न था।
इन्सान राह पर चलता था, अकुश का कही विधान न था॥

कोई भी लक्षण हीन न था, कोई भी नेत्र विहीन न था।
पशु पक्षी बाते करते थे, कोई भी प्राणी दीन न था॥
दैहिक दु.खो का नाम न था, दैविक दु.खों के रूप न थे।
भौतिक दुःखो की बात न थी, भगवान राज था भूप न थे॥

प्रतिकूल पवन का पता न था, तूफानों का था नाम नही।
वरसात न उलटी होती थी, मतलव से थे तब काम नही॥
धरती पर थी तव धर्म ध्वजा, शीतल समीर सुख देता था।
सुख के सागर लहराते थे, अब जैसा बना न नेता था॥

कालचक्र मे श्रेष्ठ है, सुषमा सुषमा काल।
शिशु सिंहों से खेलते, अमृत पिलाते व्याल॥
सुषमा सुपमा काल में, कल्पवृक्ष हर पेड़।
सुख से खाती खेलती, साथ शेर के भेड़॥
नदियाँ थी घी दूध की, कामधेनु थी गाय।
मॉस न विकता था कही, कही नही थी चाय॥
तोते मैना प्रेम से, पढते थे श्री शास्त्र।
शस्त्र नही थे शास्त्र थे, श्री थी कविता मात्र॥
घर घर में मणि रत्न थे, थे सोने के पात्र।
शुभ कर्मो के पुण्य थे, वाणी पर थे शास्त्र॥
सिर्फ सत्य था सृष्टि मे, शिव था पूरा ज्ञान।
प्रकृति सिद्धि थी सभी की, सव थे सब के ध्यान॥
सुषमा सुपमा काल में, कही नही थे रोग।
भडारे भरपूर थे, घर घर मे थे भोग॥
कही नही दुर्गन्ध थी, दिशा दिशा थी इत्र।
तन वेले के फूल थे, मन थे बड़े पवित्र॥

सुषमा सुषमा काल की बड़ी अनोखी बात।
खूब सुहाते दिवस थे, खूब सुहाती रात॥
ग्रन्थ कठ मे थे सभी, वाणी पर था ज्ञान।
उस युग में जन्मा नही, शब्द कही अज्ञान॥
सब के सुन्दर रूप थे, सब मे थी शुचि प्रीति।
सब के सुन्दर गीत थे, सब मे सुन्दर नीति॥
प्रेम परस्पर था बहुत, थे सुख के सब साज।
सुषमा सुषमा काल पर, है धरती को नाज॥
अनावृष्टि तब थी नही, मन चाही बरसात।
मेघ बरसते प्रेम से, कृषि से करते बात॥
धर्म धुरधर श्रुति निपुण, कण कण था उस काल।
परमसुखी चिद्रूप थे, मानव व्याल मराल॥
पूर्ण धर्म हर व्यक्ति था, कही नही था पाप।
सब ऋषियो के रूप थे, अपनी श्री थे आप॥
अल्प मृत्यु तब थी नही, इच्छित अमर शरीर।
आँसू जन्मा था नही, कही नही थी पीर॥
वुद्धिहीन कोई नही, कोई दुखी न दीन।
उस युग मे जन्मा नही, कोई लक्षण हीन॥
कोई नही दरिद्र था, सम्यक् चारु चरित्र।
मानो युग का रूप धर, सुषमा प्रकट पवित्र॥
दम्भ किसी मे था नही, कही न कोई भ्रान्त।
मानो मानव रूप धर, प्रकट हुआ रस शान्त॥
वन उपवन मे फल सदा, सुरभित पवन वहार।
अभय सभी, आनन्द सव, अनुचित नही अहार॥
कलाकार पडित सुखी, सागर देते रत्न।
अब कवि को कौडी नही, कर कर हारे यत्न॥
हिल मिल लाती तितलियाँ, फूल फूल के रग।
सुषमा सुषमा काल मे, मधु मिश्रित सत्सग॥

कृत युग में चिन्ता नही, बिना दाम हर चीज।
बीज बीज से चीज थी, चीज चीज से बीज॥

भावो से सौरभ उड़ता था, मुस्कानो मे थी नयी कला।
बोलो में रस के सागर थे, जीवन, जैसे हो दीप जला॥
गति गगा लहरी जैसी थी, सुन्दरता उपमा हीन मित्र।
छन्दों के मन्दिर मे मुखरित, उसयुगके अद्भुतशिवम् चित्र॥

वह युग मुस्कानो का युग था, यह युग आँसू का काल रूप।
उस युग मैं हर प्राणी प्रभु था, इस युग मे है कंगाल भूप॥
उस युग में भय का नाम न था, इस युग मे रक्षक से भी भय।
उस युग में मोल न होते थे, इस युग में केवल क्रय विक्रय॥

उस युग में कोई अपढ़ न था, इस युग में पढे लिखे खोये।
वह युग धर्मात्माओं का था, इस युग मे धर्मात्मा रोये॥
तब कोई प्रज्ञाचक्षु न था, अब आँखों वाले भी अन्धे।
तब कोई चोर डकैत न था, अब जेब काटने के धन्धे॥

अब कोई ऐसा क्षेत्र नही, जिसमें चलती हो घूस नही।
वेश्या जैसी है राजनीति, नाचा करती है कही कही॥
सुषमा सुषमा युग सर्वश्रेष्ठ, दुषमा काल कलियुग कराल।
इस युग के प्राणी विषधर है, उस युग के प्राणी थे मराल॥

इस कालचक्र के आरे मे, परिक्रमा मेदनी करती है।
इच्छा जब पापिन बन जाती, तब करनी का फल भरती है॥
उस युग के प्राणी पारस थे, इस युग के प्राणी पत्थर है।
तब श्रम में श्रद्धा का सुख था, अब सब औरो पर निर्भर हैं॥

होते रहते उत्थान पतन, चलता रहना है कालचक्र।
कर्मो के भोग नही टलते, हो तुच्छ जीव या सिद्ध शक्र॥
निष्काम तपस्याओं से ही, सुषमा सुषमा युग आता है।
जब कर्म पवित्र नहीं रहते, दुख आता है सुख जाता है॥

अपने सुख में किसी की, किसको है परवाह ।
अपनी अपनी राह है, अपनी अपनी चाह ॥
समय समय के दिन यहाँ, समय समय की रात ।
बृहन्नला 'अर्जुन' बना, समय समय की बात ॥
देख समय के फेर को, साधु रहते मौन ।
श्वान गधे वक्ता जहाँ, सुने मित्र की कौन ॥
समय बड़ा बलवान है, राजा बने फकीर ।
नारायण वन वन फिरे, भटके 'पाण्डव' वीर ॥
समय फिरे सब कुछ फिरे, राजा हो या रंक ।
कभी कीर्ति मिलती यहाँ, लगता कभी कलंक ॥
क्या से क्या होता यहाँ, होते अद्भुत खेल ।
'नल दमयन्ती' के हुए, कैसे कैसे मेल ॥
सब कर्मों के खेल हैं, सब कर्मों के फेर ।
कर्मों से लगती नहीं, समय बदलते देर ॥
कर्मों में फल निहित है, फल है कल या आज ।
हार 'दुर्योधन' की हुई, धर्मराज का राज ॥
पुण्य घटे घटता गया, दुखमा सुखमा काल ।
तर्क बुद्धि में आ गया, उलझे सुन्दर बाल ॥
कालचक्र जग पर चढ़ा, आया दुखमा काल ।
मतियों में ज्योतित हुए, मतियों वाले ख्याल ॥

सुखमा दुखमा युग चला गया, पृथ्वी पर दुखमा युग आया ।
पहले अपना सुख प्रमुख हुआ, फिर दुःख औरों को पहुँचाया ॥
कुछ भेद भाव का प्रकट हुआ, अपने में और पराये में ।
सर्वोत्तम से उत्तम युग था, सब थे ऋषियों के साये में ॥

गत था प्रकाश का प्रथम काल, दूसरे काल ने चरण धरे ।
सम्यक दर्शन में मन आया, सब एक रूप थे हरे हरे ॥
हर समय उजाला नहीं रहा, हर शक्ति प्रभा भी नहीं रही ।
थोड़ी थोड़ी आ गई त्रुटि, फिर भी शिक्षा थी सही सही ॥

कर्त्तव्यहीन इंसान न थे, अधिकारों में अन्याय न थे।
सब स्वस्थ सुखी थे उस युग में, लँगड़े लूले कृशकाय न थे॥
सुषमा युग में स्वर सुन्दर थे, जग में सत्रामक रोग न थे।
सन्तोष सभी को सुख से था, उलटे सीधे तब भोग न थे॥

धीरे धीरे ईर्ष्या जागी, सेवा भावो के रूपो से।
छोटे अधिकारी चाह भरे, ईर्ष्या कर बैठे भूपो से॥
यह है समाज इसमे सब के, क्या एक रूप है हो सकते।
आसन मिलते कर्मानुसार, क्या सभी भूप है हो सकते॥

सेवा करता मजदूर यहाँ, सेवा राजा भी करता है।
तपता है एक खेत पर तो, दूसरा खेत पर मरता है॥
सेवा के क्षेत्र बहुत से है, सिहासन पर सीमाओ पर।
कैसा भी कोई दर्शन हो, कर्मो मै होगा ही अन्तर॥

आराध्य देश है हम सब का, आराध्य धरा है हम सब की।
हम सभी पुजारी मन्दिर में, आरती गा रहे सब रब की॥
मरघट में कोई भिन्न नही, आत्मा से कोई गैर नही।
हम सब के है सब अपने है, दो प्यार सभी को वैर नही॥

प्यार के बोल दो वैर को छोड़ दो।
टूट जो दिल गये प्यार से जोड़ दो॥
जोड़ दो तार टूटे हुए साज के।
जोड़ दो साज बिखरे हुए राज के॥
गीत दो प्यार के राग दो प्यार के।
फूल खिलते रहे शुभ्र संसार के॥
पाप का हर घड़ा पुण्य से फोड दो।
प्यार के बोल दो वैर को छोड़ दो॥

छोड़ दो हर कुपथ सब सुपथ पर चलो।
फूल बन कर खिलो दीप बन कर जलो॥
वीर वाणी सुनो वीर वाणी कहो।
कर्म करते रहो बाटते सुख रहो॥

श्रम करो श्रम करो भूमि को गोड दो।
प्यार के वोल दो वैर को छोड़ दो ॥
धार वहती रहे नीर ग्राता रहे।
हर पुरातन नया गीत गाता रहे ॥
हर हवा मे सुरभि हर दिशा की मिले।
हर निशा मे कुमुदनी हृदय की खिले ॥
तोड़ दो तोड़ दो जाल को तोड़ दो।
प्यार के वोल दो वैर को छोड़ दो ॥

घूमा ग्रागे को काल चक्र, सुषमा युग पीछे छूट गया।
मद लोभ मोह मे पथ भूले, स्वर ऋद्धि सिद्धि का टूट गया॥
सुषमा युग मे जव ग्रति ग्राती, दु.पमा काल पग धरता है।
सुषमा दु षमा काल मे मन, पापो को करता डरता है ॥
कुछ देशद्रोहियो की गति से, दुप्टो को पथ मिल जाता है।
पृथ्वी को पीडा पहुँचाने, कोई खलनायक ग्राता है ॥
ग्राते है चरण पापियो के, पर जीत पुण्य की रहती है।
सुषमा दु.षमा काल मे महि, सुख ग्रधिक दु.ख कम सहती है॥
धीरे धीरे राक्षस लाते, दु पमा ग्रौर सुषमा के पग।
सुख कम होते जाते जग मे, दु खो से घिरने लगता जग ॥
जग मे पापी वढ जाते हैं, सज्जन घटने लग जाते हैं।
दु षमा ग्रौर सुपमा युग मे, निकृप्ट कर्म चढ ग्राते है ॥
पीड़ित होती है वसुन्धरा, ग्राता है जव दु.पमा काल।
दु.खो की गति वढ जाती है, सवका होता है बुरा हाल ॥
दु षमा काल पाँचवाँ पथिक, ऊपर से गिर नीचे ग्राता।
प्राणी स्वार्थो मे मार्ग भूल, पृथ्वी को पीड़ा पहुँचाता ॥
फिर ग्राता है सर्पिणी काल, डसता है गरल उगलता है।
गर्वान्ध दुप्ट राजा वनते, मद मे इन्सान उछलता है ॥
हमने सर्पो से प्रश्न किया, क्यो मुँह से जहर उगलते हो ?
क्यो फण फैला फुकार मार, वल खाते ग्रौर उछलते हो ?

अजगर बोला निज दाँतों में, मैं जहर मनुज से लाता हूँ।
दबने पर काटा करता हूँ, बचता हूँ और बचाता हूँ॥
मेरा काटा बच भी जाता, बचता न मनुज के काटे से।
सज्जनता को गर्वान्ध दुष्ट, उत्तर देता है चाँटे से॥

आदमी मे आदमी रहा नही।
स्वार्थ जिस जगह है आदमी वही॥
मनुष्य सर्प बन गया मनुष्य श्वान हो गया।
मनुष्य गिद्ध बन गया दुखी जहान हो गया॥
मनुष्य बन गया बधिक वसुन्धरा पुकारती।
आँसुओ से आरती स्ववेश की उतारती॥
प्यास लग रही है नीर है कही?
आदमी में आदमी रहा नही॥
मनुष्य माँस खा रहा मनुष्य काट काट कर।
मनुष्य हाय हँस रहा हराम चाट चाट कर॥
न शर्म है न धर्म है न देश है न वेश है।
हाय हाय काँय काँय आदमी मे शेष है॥
स्वर्ग में नरक है दुख है यही।
आदमी में आदमी रहा नही॥
मनुष्य बोझ ढो रहा गधा बना हुआ यहाँ।
मनुष्य खूब सो रहा सडा सना हुआ यहाँ॥
न नीति है न रीति है न राय है न न्याय है।
न शान्ति है न कान्ति है कठोर भाँय भाँय है॥
द्रौपदी को नग्न कर रहे यही।
आदमी मे आदमी रहा नही॥
न प्यार है न सार है न साज है न राज है।
समाज कोढ से घिरा अराज राज आज है॥
न कौन झूठ खा रहा न कौन लूट ला रहा।
न कौन रक्त पी रहा न कौन माँस खा रहा॥

वालकों का माँस बेचते यही।
आदमी मे आदमी रहा नही ॥

आदमी आदमी रहा नही, घिर गई धरा धर्मान्धो से।
अपने अपने अभिमान बढे, भर गया विश्व गर्वान्धो से ॥
छोटे छोटे कट गये राज, बट गई जातियाँ भेद बढ़े।
आपस में तलवारे खनकी, भारत पर भारत वीर चढ़े ॥

भाई के आगे वहिन लुटी, हत्यारो को कुछ होश न था।
शिशुओ को भालो से गोदा, तलवारो को कुछ होश न था ॥
मानवता नगी कर डाली, धर्मान्धो की मनचाही नें।
भारतमाता को घेर लिया, धर्मो की घोर तबाही नें ॥

आतंक अनार्यो का फैला, सस्कृति पर अत्याचार हुए।
माँ वहिनो की अस्मते लुटी, दुष्टो द्वारा सहार हुए ॥
व्यभिचार हुए है सरे आम, सडको पर प्यासे बलात्कार।
हिंसा की अन्धी ज्वाला में, जल गये करोड़ो कलाकार ॥

सामूहिक भेदभाव फैला, सामूहिक अत्याचार हुए।
सामूहिक नगे नाच हुए, सामूहिक हाहाकार हुए ॥
हम है तुम क्यो ? तुम क्यो हम है, यह जहर बाढ बन कर आया।
धरती माँ ने चीत्कार किया, विधि का ब्रह्मासन थर्राया ॥

हिल गया इन्द्र का सिंहासन, लक्ष्मीपति की निद्रा खोयी।
शकर समाधि से जाग गये, जब धरती फूट फूट रोयी ॥
आँसू वोले तुम सोते हो, ऋषि मुनियो के वध होते है।
हत्यारो की मनचाही है, वे हँसते है हम रोते है ॥

आसुओं ने कहा संकटो को हरो।
भूमि डूबी नदी पार नौका करो ॥
पार नौका करो वाढ मँझ धार से।
नाथ ! रक्षा करो पाप के वार से ॥
कृष्ण ! शिशुपाल को कस को मार दो।
पाप मन के कहे सत्य दो सार दो ॥

संकटों को हरो नाथ रक्षा करो।
आँसुओं ने कहा संकटों को हरो ॥

हिंसकों से धरा डगमगाने लगी।
डायनों की तृषा जगमगाने लगी ॥
ताड़काएं तड़कने भड़कने लगी।
कच नखों की कलाएं मड़कने लगी ॥

घोर अज्ञान में ज्ञान की जय करो।
आँसुओं ने कहा संकटों को हरो ॥

डूब नारद रहे मोह की धार में।
घोर हिंसा भरी प्यार पतवार में ॥
ज्ञान दो ज्ञान दो तेज तलवार को।
काट दो काट दो काम के वार को ॥

बढ गये दुष्ट फिर एक फेरा करो।
आँसुओं ने कहा संकटों को हरो ॥

भगवान् विष्णु के खुले नयन, छूटी समाधि शंकर जागे।
पार्वती शारदा दुर्गा श्री, आ बोली धरती के आगे ॥
मत रोओ दिव्य ज्योतियों की, आभा धरती पर आयेगी।
आयेगी अद्भुत शक्ति देवी, तेरी गोदी भर जायेगी ॥

धरती का लाल वही है जो, पर नारी को माता माने।
हर उपवन का आधार बने, हर आँसू को अपना जाने ॥
फिर दिव्य ज्योति सम्भूत सिद्ध, पृथ्वी पर आने वाला है।
फिर पूर्व बन्ध से धरती पर, जैनेश्वर आने वाला है ॥

जिसमें अनन्त दर्शन होगा, वह वीर चतुष श्री आयेगा।
जिसमे अनन्त सुख की निधियाँ, वह विभु प्रकाश फैलायेगा ॥
जो है अनन्त ज्ञानोज्ज्वल श्री, वह अपराजित आ जय देगा।
जो अन्तरंग श्री वीर्यवान, वह तप तप पीड़ा हर लेगा ॥

दुनिया को दीप दिखायेगी, जलधार अहिंसावादी हो।
सत्यो की सुरभि उडायेगी, तकरार अहिंसावादी हो॥
जो अन्धकार में भटक रहे, उनको प्रकाश मिल जायेगा।
आयेगा ऐसा एक वीर, उपवन उपवन खिल जायेगा॥

जैसे सूर्योदय होते ही, तम की विभीषिका फट जाती।
जैसे पुण्योदय होते ही, दु खो की खाई पट जाती॥
ऐसे ही जब विभु आयेगा, अणु अणु मे उजियाला होगा।
वह वीरेश्वर विश्वास रूप, जीवन देने वाला होगा॥

वह विष्णु रूप वह शिव स्वरूप, वह राम रूप उज्ज्वल होगा।
वह दुनिया से ऊपर होगा, वह सत्यो का उत्पल होगा॥
सम्यक अमोघ अस्त्रो का स्वर, वह वीर रत्न त्रय आयेगा।
उस वाणी का नर्तन होगा, रत्नो से जग भर जायेगा॥

वह आयेगा वह आयेगा,
गूज उठी नभ वाणी।
धैर्य रखो धरती बदलेगी,
बदलेगा हर प्राणी॥

बदलेगा इतिहास नाश पर,
नया सृजन फिर होगा।
देर हुई अन्धेर नही है,
भोगा जो दुख भोगा॥

जन्म जन्म के पुण्य फलेगे,
सर्वोपरि प्राणी से।
दुनिया भर को ज्ञान मिलेगा,
कल्याणी वाणी से॥

पूर्व बन्ध उज्जवल कर्मो से,
ईश्वर होगा प्राणी।
वह आयेगा वह आयेगा,
गूज उठी नभ वाणी॥

तप से परे सिद्धि से आगे,
मानव का यश होगा।
उस अनन्त अद्भुत आभा में,
त्यागो का रस होगा॥
कालातीत तपस्वी योगी,
वर विदेह आयेगा।
आयेगा वह यह सारा जग,
धन से भर जायेगा॥

अन्तरंग श्री सिद्ध रत्न त्रय,
होगा अद्भुत प्राणी।
वह आयेगा वह आयेगा,
गूज उठी नभ वाणी॥

पृथ्वी की पीडा को कवि ने, कविताओ से कुछ धैर्य दिया।
फूलो पर गिरे आँसूओं को, कुछ किरणो ने पहचान लिया॥
मानव महान् से है महान्, मुझमें 'कवीर' आकर बोला।
चादर को दाग न छू पाये, निर्द्वन्द्व एक गाकर बोला॥

पत्ती खा दूध पिलाती जो, तुम उसकी खाल खीचते हो।
गउओ की हत्याएं करते, शोणित से यज्ञ सीचते हो॥
पापों की गठरी सिर धरते, पशुओ की वलि देने वाले।
माताओ को विष देते हैं, ये दूधामृत लेने वाले॥

ये जीव असंख्य जगत में जो, जलचर थलचर नभचर नाना।
कर्मो के फल से दुखी सुखी, कर्मो से है खोना पाना॥
कर्मो से उन्नति होती है, कर्मो से भाग्योदय होता।
उसको उतना ही मिलता है, जिसने जितना वोया जोता॥

पृथ्वी का कवि पृथ्वी का रवि, जग में आता है कभी कभी।
जव धर्म न धरती पर रहता, आता है वीर विदेह तभी॥
पिछले जन्मो के पुण्योदय, नर को नारायण कर देते।
आते है तीर्थंकर तप कर, जग मे उजियाला भर देते॥

जो आये आकर चले गये, दे गये जगत को उजियाला।
अपने शब्दो मे लाया हूँ, उनके स्वर सुमनो की माला॥
इन स्वर सुमनो को कह सुनकर, दुर्गन्धित मन सुरभित होगा।
जो तन्मय होकर गायेगा, धरती सा उसका चित होगा॥

मनवाछित फल मिल जायेंगे, दुखों से छुटकारा होगा।
मन सौरभ शुद्ध वुद्ध होगा, सुख पृथ्वी का नारा होगा॥
आत्मा का उजियाला होगा, कर्मो के वन्धन टूटेंगे।
मेरे स्वर मे तुम सव गाओ, दुःखो से हम सव छूटेंगे॥

जिनके शुद्ध चरित्र हैं,
गाओ उनके गीत।
जो जन करते नमन है,
होती उनकी जीत॥

दया अहिंसा के विना,
जीत सका है कौन।
दया धर्म की मूर्ति है,
जयश्री पृथ्वी मौन॥

धरा धर्म से कर्म से,
जीवन श्रम का मूल।
खिले मरण के वक्ष पर,
शुभ कर्मो के फूल॥

जो सुख की इच्छा तुझे,
अगर चाहता नाम।
वीस उँगलियो को चला,
है आराम हराम॥

कर्म करो विश्वास से,
कर्म करो निष्काम।
वन जाओगे 'कृष्ण' तुम,
वन जाओगे 'राम'॥

दु:ख न आये है स्वयम्,
बुला लिये हैं दु ख।
लालच दे दे सुखो ने,
बहुत दिये हैं दु.ख ॥

इच्छाएं बढ़ती गई,
कहाँ चाह का अन्त।
चाहो मे फँसते नही,
ज्ञानी साधू सन्त ॥

जग मे इतना जोड़िए,
कभी न फैले हाथ।
कदम कदम पर कर्मफल,
सदा रहेगे साथ ॥

कर्महीन के खेत में,
उल्लू करे पुकार।
खेत मर गया ठुट पर,
शोक मनाओ यार !

शक्ति अहिसा में बहुत,
सर्व सिद्धियाँ प्राप्त।
धरती दुर्गा शारदा,
एक शक्ति मे व्याप्त ॥

सदा यहाँ रहना नही,
सदा नही जलजात।
मेढक टर टर कर रहे,
दो दिन की बरसात ॥

सद्‌गुण सदाबहार हैं,
सद्‌गुण अपने मित्र।
सूअर खत्ता खा रहे,
भ्रमर सूघते इत्र ॥

हाथो में सब देव है,
हाथो मे भगवान।
भाग्य वनेगा हाथ से,
हाथो को पहचान ॥

पैर बढे विश्वास से,
जय चूमेगी पैर।
जिसका मन नीचे गिरा,
उसकी कही न खैर ॥

धनुष बाण ले 'राम' ने,
'रावण' डाला मार।
जिन वाणी से मर गये,
मन के 'रावण' हार ॥

जो तप तप भगवान है,
जो चल चल कर राह।
वे युग युग के गीत है,
वे जन जन की चाह ॥

# ताल कुमुदिनी

पृथ्वी पर आते जाते है, कितने राजा कितनी रानी।
अम्बर गाता गगा गाती, आता पानी जाता पानी ।।
वर्तुलाकार लहरे उठती, काँटे चुभते कलिका खिलती।
जिससे पृथ्वी को शान्ति मिले, वह वाणी कभी कभी मिलती ।।

उपकारी गोलाकार धरा, पानी में डूबी तैरी है।
कोई धरती का मित्र रहा, कोई धरती का वैरी है ।।
क्या क्या मिट्टी मे मिट्टी है? क्या क्या पानी में पानी है?
आओ हँस ले आओ गा ले, यह दुनिया आनी जानी है ।।

जो कहते थे वह करते थे, वे 'हरीश्चन्द्र' अव नही रहे।
कवि किससे अपनी व्यथा कहे, कवि किससे अपनी कथा कहे ।।
कहदे किससे सुनले किसकी, सव कथा भरे सव व्यथा भरे।
जिनसे भी जग में वाते की, वे वोले हम से 'हाय मरे' ।।

कुछ 'शिवि' 'दधीचि' से होते है, तन देते धर्म नही देते।
अपने प्राणो की आहुति दे, पृथ्वी के प्राण वचा लेते ।।
वे राजा रानी कहाँ गये, जो वचन नही जाने देते।
आते है कभी कभी वे भी, जो पाप नही आने देते ।।

अपने चरित्र अपने तप से, भारत का मान वढाते है।
पृथ्वी की पूजा करते है, पृथ्वी की शान वढ़ाते है ।।
धरती के पैर पखार रहे, अगणित पर्वत अगणित सागर।
ऊँचे नीचे में सँभल सँभल, नाचा करते है नट नागर ।।

भारत में पैदा 'राम' हुए, भारत मे पूज्य महान् हुए।
इस धरती पर इस भारत मे, श्री महावीर भगवान् हुए॥
उनका चरित्र उनकी महिमा, सब सुनो शान्ति से गाता हूँ।
पूजा के दीप जलाता हूँ, श्रद्धा के सुमन चढाता हूँ॥

नयन कमल अर्पित, समर्पित दीपो की माला।
गीत गीत अर्पित, समर्पित मैं गीतो वाला॥
शब्द शब्द मे तुम, भाव भाव मे तुम।
बात बात मे तुम, चाव चाव मे तुम॥
अलंकार तुम हो, युगाधार तुम हो।
सृष्टिसार तुम हो, कलाकार तुम हो॥
अमर गीत लिख दो, दीप हो मेरा मन काला।
नयन कमल अर्पित, समर्पित दीपो की माला॥
जन्म ज्योति दाता, वांछित फल पाता।
सर्व सिद्धि दाता, दीपक बन गाता॥
पूजा सफल करो, सब की पीर हरो।
मेरी वाणी पर, अपने दीप धरो॥
भव्य भाव भर दो, पहन लो गीतो की माला।
नयन कमल अर्पित, समर्पित दीपो की माला॥
जन्म गीत गाऊँ, बाल गीत गाऊँ।
लोरी मे तुम हो, लोरी बन जाऊँ॥
पग पग की ध्वनि दूँ, श्वास श्वास लिख दूँ।
दीपो के स्वर दूँ, प्यास प्यास लिख दूँ॥
जाल समेटू मैं, हटा दो मकड़ी का जाला।
नयन कमल अर्पित, समर्पित दीपो की माला॥

पहले भारत के वीरो का, उत्थान 'हस्तिनापुर' मे था।
विद्वान 'हस्तिनापुर' मे थे, विज्ञान 'हस्तिनापुर' मे था॥
थे 'कृष्ण' वहाँ थे 'व्यास' वहाँ, थे वीर वहाँ रणधीर वहाँ।
सब मिट्टी मे मिल जाता है, रहता है नही विवेक जहाँ॥

विज्ञान गया खो गया ज्ञान, रह गई चिता की राख शेष।
ऐसे अधर्म के कदम बढे, हो गया नष्ट सम्पन्न देश ॥
था क्रोध बहुत था लोभ बहुत, राजा तक बडे जुवारी थे।
खिचती थी लाज 'द्रोपदी' की, जड जैसे खड़े जुवारी थे ॥

बल में मतवाले दीवाने, युवतियाँ हरण कर लेते थे ॥
'अर्जुन' से वीर धनुर्धर तक, कर हरण वरण कर लेते थे।
'लाक्षागृह' बना 'पांडवो' को, जलवाने वाले स्वयम् जले।
'धृतराष्ट्र' ! नतीजा देख लिया, 'गाधारी'! कभी न पाप फले ॥

सब स्वाहा किया कामियो ने, भारत माँ का सब कुछ खोया।
शव ढोने वाले नही रहे, युद्धोपरान्त मरघट रोया ॥
भूखा हड्डियाँ चबाता था, हर गली नगर घर में मरघट।
ओठो के लिये तरसते थे, जल भरे हुए प्यासे पनघट ॥

छलछिद्रो और अधर्मो ने, वैभव विद्वान वीर खोये।
अब तक उनका विष गया नही, जो विष के बीज यहाँ बोये ॥
परिणाम यही जब हम डूबे, धरती पानी मे डूब गई।
घबराकर घोर अहिंसा से, अपने जीवन से ऊब गई ॥

राजा 'निचक्षु' के शासन मे, जल बढ़ा 'हस्तिनापुर' डूबा।
बाढे आई गगा गर्जी, जल चढा 'हस्तिनापुर' डूबा ॥
भागा 'निचक्षु' 'कौशाम्बी' को, फिर बना राजधानी जागा।
जागा पापो मे पुण्य भाव, अस्थिर मन इधर उधर भागा ॥

विकास डूबा ऋतुराज डूबा।
विधान रो रो कर गा रहा था।
न धर्म बाकी हर ओर पापी।
उद्यान डाकू दल से बचाओ।

नृशस स्वार्थी हर ओर छाये।
विद्वान ज्ञानी पग चूमते थे।
विचित्र क्रीडा उस राज की थी।
गुलाब काँटो पर झूलते थे।

कर्तव्य भूले अधिकार भोगी।
अज्ञान मे थे पथ भूल योगी।
समुद्र आगे बढ़ बोलते थे।
पहाड़ नीचे धस डोलते थे!

जब दैहिक दैविक तापो से, हम तुम पर बहुत कष्ट आये।
तब कष्ट निवारण करने को, कुछ धर्मात्मा हमने पाये॥
राजा 'निचक्षु' की पीढी में, क्रमश. छब्बीस नरेश हुए।
फिर 'शतानीक' द्वितीय हुआ, फिर 'उदयन' नृपति विशेष हुए॥
'श्रावस्ती' शस्यश्यामला मे, राजा 'प्रसेनजित' की जय थी।
कौशलपति निपुण नरोत्तम की, आदर्शो से सिंचित लय थी॥
मगधापति सरल 'रिपुजय' था, जिसको मन्त्री ने मार दिया।
नृप का विश्वास 'पुलिक' पर था, उसने धोखे से वार किया॥

'प्रद्योत' पुत्र का गद्दी पर, आमात्य 'पुलिक' ने तिलक किया।
अपने बेटे का तिलक किया, अपने राजा का रक्त पिया॥
करनी का फल मिलता ही है, कुछ दिन को पाप फला करते।
जिनमे हिसा की हँसी भरी, वे लका महल जला करते॥

कुल पाँच पीढियो तक आगे, 'प्रद्योत' वश का राज चला।
फिर 'शैशुनाभ' राजाओ का, सम्पूर्ण मगध मे दीप जला॥
वशानुकूल आगे चलकर, फिर 'विम्बसार' का राज हुआ।
यह राजा बडा प्रतापी था, तलवार प्यार का राज हुआ॥

उस समय 'अवन्ती' का राजा, क्रोधी था 'चण्ड' मदान्ध बडा।
नृप 'महासेन' क्रोधी प्रचण्ड, अद्भुत योद्धा था खूब लडा॥
'वासवदत्ता' का पिता 'चड', वीणा वादक से हार गया।
वन्दीगृह से 'उदयन' प्रवीण, ले राजसुता उस पार गया॥

'कौशाम्बी' लाकर व्याह किया, फिर मगध राजकन्या पाई।
'वासवदत्ता' चाँदनी रात, 'पद्मा' सुगन्ध बन कर आई॥
इस तरह 'अवन्ती' और 'मगध', 'कौशाम्बी' के हो गये भक्त।
तलवार प्यार ने वन्दी की, बढ गई शक्ति मिल गया रक्त॥

जिसका मन जिससे मिला,
उसको उससे प्यार।
'वासवदत्ता' उड़ गई,
धरी रही तलवार ॥

'वासवदत्ता' को हुआ,
कलाकार से प्यार।
मधुर मिलन से खुल गये,
कारागृह के द्वार ॥

जब तक होता है नहीं,
तन का मन का मेल।
तब तक हम तुम खेल ले,
छुवा छूत के खेल ॥

क्या दूरी क्या विषमता,
सब मनुष्य है एक।
गगन सभी पर छाँह है,
धरती सब की टेक ॥

व्याह करें तो पूछते,
जाति पाँति की बात।
गोरी हो तो काट दे,
वेश्या के घर रात ॥

रूप मिले तो जाति क्या,
पूर्ण करेंगे चाह।
वैसे करने के नहीं,
अन्य जाति में व्याह ॥

आडम्बर अन्याय को,
जो तोडे वह धन्य।
टूटे फूटे देश को,
जो जोड़े वह धन्य ॥

विखरे भारत के राज्यो में, छोटे छोटे राजागण थे।
कुछ शुद्धात्मा कुछ धर्मात्मा, कुछ माँ की छाती मे व्रण थे।।
छोटे छोटे थे राजतन्त्र, छोटे छोटे गणराज्य बने।
सबके अपने अपने ध्वज थे, सबके ही अलग वितान तने।।

इन राजाओ मे 'शुद्धोदन', गणधर शाक्यो के नेता थे।
ये शासक 'कपिलवस्तु' के थे, सघी सगठन प्रणेता थे।।
तप करती थी व्रत रखती थी, 'शुद्धोदन' की रानी 'माया'।
इस रानी 'माया देवी' से, जग ने 'सिद्धार्थ' सुवन पाया।।

वन में 'गौतम' का जन्म हुआ, धरती माता ने धैर्य धरा।
वह आया जिसके आने से, सूखा कानन हो गया हरा।।
'सिद्धार्थ' गोद मे क्या खेला, खिल गया गगन खिल गई धरा।
मकरन्द चुवा फल-फूलो से, कलियो मे अतुल पराग भरा।।

धरती पर ऐसे क्षण आये, जब दो अद्भुत गौरव आये।
साधना सफल मिल गया साध्य, 'त्रिशला' के चरण कमल पाये।।
'चेतक' राजा की कन्या का, वचपन प्रकाश था, ध्यान सद्र।
'लिच्छवि गणराज्य' कुमारी के, योद्धा भाई थे 'सिहभद्र'।।

सुख से रहते थे 'सिहभद्र', भौतिकता मे आध्यात्मिक थे।
तन सुन्दर था मन था पवित्र, फूलो मे सौरभ सात्विक थे।।
कवियो जैसा मन पाया था, माता थी खिले फूल जैसी।
मन के ज्वारो ने रत्न दिये, क्रीडाए की ऐसी ऐसी।।

'त्रिशला' के भाई सात गुणी, वहिने थी सात फुहारो सी।
सुन्दर थी इन्द्रधनुष जैसी, सुरभित थी पूर्ण सुधारो सी।।
'चन्दना' 'चेलनी' 'प्रभावती', जगज्योति वनी 'ज्येष्ठा' त्रिशला।
छवि प्रभावती थी मृगावती, शुचि प्रभा खिली सूरज निकला।।

त्रिशला तपस्या से प्रकट, कोई अनोखी सिद्धि थी।
त्रिशला अहिसा से प्रकट, कोई अनोखी ऋद्धि थी।।

सौन्दर्य उमड़े सिन्धु में, जैसे उछलते रत्न हों।
निष्कम्प ऐसे ज्योति थी, जैसे सफल सब यन्त्र हो ।।
हर बात सुन्दर सृष्टि थी, सद ग्रन्थ की उपलब्धि थी।
जो लोक दे परलोक दे, उस पन्थ की उपलब्धि थी ।।

त्रिशला सुरभि श्री से प्रकट, अद्भुत अनश्वर वृद्धि थी।
त्रिशला तपस्या से प्रकट, कोई अनोखी सिद्धि थी ।।

वे नेत्र थे या भूमि के, पानी भरे जलजात थे।
वे ओठ थे या दुःख से, निकली हुई हर बात थे ।।
वे गाल सोने के कलश, वे बाल मेघो के नयन।
वे हाथ सब के हाथ थे, वह वक्ष सद्गुण का चयन ।।

त्रिशला करोड़ों हाथ की, पूजा भरी श्रीवृद्धि थी।
त्रिशला तपस्या से प्रकट, कोई अनोखी सिद्धि थी ।।

वह रागनी थी कंठ में, वह रोशनी थी रात में।
वह साधकों की शक्ति थी, वह स्वाति जल बरसात में ।।
उपदेश के आलोक से, निर्मित मनोहर मूर्ति थी।
श्रम से प्रकट श्री से प्रकट, संसार भर की पूर्ति थी ।।

त्रिशला अमर नेतृत्व से, जीती हुई जय वृद्धि थी।
त्रिशला तपस्या से प्रकट, कोई अनोखी सिद्धि थी ।।

उस क्रांति ने उस कांति ने, दीपक जलाये शान्ति के।
उस बात ने उस बात ने, शोले बुझाये भ्रान्ति के ।।
उस रूप ने उस रश्मि ने, तम को पराजित कर दिया।
उस पूर्ति ने उस मूर्ति ने, संसार धन से भर दिया ।।

त्रिशला सुखी संसार की, ज्ञानोज्ज्वला अभिवृद्धि थी।
त्रिशला तपस्या से प्रकट, कोई अनोखी सिद्धि थी ।।

वह दीप्ति थी कोमल कली, सौरभ भरी सुषमा भरी।
वह कीर्ति थी ऊँची ध्वजा, वह ज्योति बिजली की परी ।।
वह मूर्ति मन्त्रों से बनी, वह पूर्ति तीर्थों की कला।
मानो करोड़ों पुण्य से, वह रूप का दीपक जला ।।

कर्मोज्ज्वला सुफला कला, संसार की समृद्धि थी।
त्रिशला तपस्या से प्रकट, कोई अनोखी सिद्धि थी॥

वह सूरज से पहले जागी, फुर्सत न उसे दिन रात मिली।
वह ऐसी रजनीगन्धा थी, जो दूर दूर दिन रात खिली॥
स्वर्णिम तलाव चाँदी का जल, वह कमल कुमुदनी लहर लहर।
सुन्दरता के गुण गाता था, वैशाली का ध्वज फहर फहर॥

पृथ्वी की दीपशिखाओ ने, राजा के घर में जन्म लिया।
'चेतक' थे पिता प्रवीण वीर, सन्तानो ने आनन्द दिया॥
त्रिशला के भाई 'धन' 'प्रभास', 'कभौज' 'अकेजक' दत्तभद्र।
योगांग योग्य भाई उपेन्द्र, धन धन्य 'तुपंतुम' पुण्य सद्र॥

'चेलनी' मगध की महारानी, वैशाली की मणि मगध गई।
वह ऐसी रस की सरिता थी, जैसी रस की हर बात नई॥
'तदतन' राजा की पटरानी, त्रिशला की अनुजा 'प्रभावती'।
उस 'कच्छ' राज रानी की श्री, परदेशी अब कर रहे सती॥

त्रिशला की अनुजा 'प्रभा' भक्ति, 'दर्शणा' देश की रानी थी।
वह रूपराशि की नयी कथा, सुन्दर से ज्यादा ज्ञानी थी॥
मृग जैसी अनुजा 'मृगावती', नृप 'शतानीक' को ब्याही थी।
हिरनी जैसी बिजली जैसी, दोनो घर की मनचाही थी॥

'शाक्वी' नरेश की पटरानी, मूर्ति थी ललित कलाओ की।
वीणा की ध्वनि कविता की लय, पूर्ति थी ललित कलाओ की॥
वह प्यास और वह सरिता थी, वह दीपक थी वह ज्वाला थी।
वह थी सितार वह थी कटार, वह हाला थी वह बाला थी॥

'शाक्वी' पटरानी 'मृगावती', 'उदयन' की माता न्यारी थी।
वीणा मे थी तलवार नयी, नारी तलवार दुधारी थी॥
माँ 'मृगावती' की गोदी मे, सुत वत्सराज 'उदयन' आया।
सुन्दर चरित्र से सब प्रसन्न, माँ और पिता ने सुख पाया॥

कही कहीं पर ताल थे,
कही कही जलजात।
'दधिवाहन' 'चेतक' चतुर,
रवि छवि कन्या सात॥

चम्पापति के वाग की,
अद्भुत कलियाँ सात।
'दधिवाहन' के ताल में,
फूलों की वरसात॥

छोटे छोटे राज्य थे,
वड़ी वड़ी थी वात।
कही कही दिन दीप्त था,
कही कही थी रात॥

घिर घिर आई आँधियाँ,
डिगा नहीं विश्वास।
अन्धकार वढता गया,
वढता गया प्रकाश॥

समय नही अनुकूल था,
लहरे थी प्रतिकूल।
स्वप्नों मे भूले हुए,
सूख रहे थे फूल॥

कही कही पर सत्य था,
कही कही पर झूठ।
कही कही पर न्याय था,
कही कही पर लूट॥

कही कही पर फूट थी,
कही कही पर मेल।
राजा बच्चो की तरह,
खेल रहे थे खेल॥

'त्रिशला' ने भारत को देखा, 'त्रिशला' ने आँसू को देखा ।
छोटी छोटी सीमाएँ थी, थी एक नही सीमा रेखा ।।
मेरा घर लुटता रहता था, हँसता रहता था प्रतिवेशी ।
आक्रमण देश पर होते थे, घुसता आता था परदेशी ।।

छोटे छोटे राजाओ के, उद्देश्य बहुत ही छोटे थे ।
तब नगर नगर वधुओ के थे, सोने के जेवर खोटे थे ।।
शैतान सडक पर छुरा दिखा, युवतियाँ उठा ले जाते थे ।
परदेशी ऐसे भी आये, जो माँस मनुज का खाते थे ।।

कर हरण भोग कर युवती को, दूसरे रोज खा जाते थे ।
फिर नयी किसी कन्या को ला, वे पहला खेल जमाते थे ।।
ये नृत्य रात दिन होते थे, ये काण्ड रात दिन होते थे ।
हत्यारे हिंसा करते थे, 'त्रिशला' के अक्षर रोते थे ।।

'त्रिशला' ने तकली कात कात, अपने परिधान बुने पहने ।
'त्रिशला' के अग अग पर थे, अन्तर के सत्यो के गहने ।।
वह कभी बाग को सीच सीच, फूलो से शिक्षा लेती थी ।
वह कभी धर्म के खेल दिखा, बच्चो को शिक्षा देती थी ।।

उसका बचपन था भोर सदृश, यौवन जाडे की धूप सदृश ।
उपमा विहीन हर क्षण नवीन, वह रूप स्वयम् के रूप सदृश ।।
अनुरूप सुता के 'चेतक' नृप, वर खोज रहे थे यहाँ वहाँ ।
जिसकी बेटी हो ब्याह योग्य, उसको आती है नीद कहाँ ?

यह भारत है इस भारत में, लडकी का जन्म मरण जैसा ।
बेटी का ब्याह समस्या है, है प्रश्न प्रथम, कितना पैसा ?
अपनी सूरत है तारकोल, लडकी बिजली सी चाह रहे ।
पीछे लडकी पहने दहेज, भारत मे किससे कौन कहे ।।

वे भी पहले माँगते—
पूरे बीस हजार ।
जिनको मिलता है नही—
आटा दाल उधार ।।

पिता कहे प्यासा कहे—
लडकी वड़ी ववाल।
उलटा धन दे विक रहा—
वेशकीमती माल ॥

कन्या की चिन्ता वड़ी—
यह पर धन यह दीप।
प्यासी बूंद कपूर है—
मोती देती सीप ॥

राजा 'चेतक' को चिन्ता थी, 'त्रिशला' का किससे व्याह करू ँ।
यह युग युग की उजियाली है, किस मन मन्दिर को सौप धरू ँ॥
जव से 'त्रिशला' का जन्म हुआ, जय पर जय पाता जाता हूँ।
इच्छा से अधिक प्राप्त सव कुछ, भोगों से ज्यादा पाता हूँ॥

'त्रिशला' जिस घर में जायेगी, वह घर आलोक लोक होगा।
'त्रिशला' जिस घर में जायेगी, उस घर मे नही शोक होगा॥
'त्रिशला' से पिता पूछ वैठे, वोलो वेटी! कैसा वर हो?
वेटी वोली क्या कहूँ पिता, 'त्रिशला' वेटी जैसा वर हो॥

पति मुझको दीनदयालु मिले, पति देशभक्त हो दाता हो।
अविकार भोगने से पहले, अपना कर्त्तव्य निभाता हो॥
मेरी इच्छा है मुझे मिले, निष्काम कर्म करने वाला।
मेरी इच्छा है मुझे मिले, सारे भारत का उजियाला॥

सिद्धान्त हीन भारत विखरा, भोगो में खोया हुआ दुखी।
तन मन की सुधि भूला भूला, रोगो मे खोया हुआ दुखी॥
कितने कितने है धर्म यहाँ, कैसे कैसे विश्वास यहाँ।
वह देश दुखी आश्चर्य वडा, ऋषि मुनि ज्ञानी भगवान जहाँ॥

जो मार्ग दिखाए दुनिया को, वह ईश्वर फिर कव आयेगा।
फिर कव तीर्थंकर का जीवन, जीवन का दीप दिखायेगा॥
मेरा मन जैन धर्म मे है, मेरा मन पिता! कर्म में है।
जितने भी धर्म कर्म जग मे, सव का रस इसी मर्म में है॥

मेरे श्वासो मे 'ऋषभनाथ', मेरे प्राणो में 'अजितनाथ'।
श्री 'सभवनाथ' दृगो मे है, मेरे अभिनन्दन नाथ साथ ।।
मैं 'सुमतिनाथ' की सेवा हूँ, मैं सदा 'पद्म प्रभ' की दासी।
मै भक्ति 'सुपार्श्वनाथजी' की, मै सदा चन्द्र प्रभ की प्यासी ।।

'पुष्प दन्त जी' की कथा, गति है 'शीतल नाथ'।
स्वामी श्री 'श्रेयास जी', 'वासु पूज्य जी' हाथ ।।

'विमल नाथ' जी साथ है, श्री अननन्त जी नाथ।
'धर्म नाथ' जी की दया, शान्ति नाथ है साथ ।।

'कुन्तु नाथ जी' की कृपा, आँखे है 'अरनाथ'।
'मल्लि नाथ जी' के भजन, गाये हम सब साथ ।।

'सुव्रत नाथ मुनि' को नमन, लाल कमल नमि नाथ।
'नेमि नाथ जी' जीत है, सदा शख है साथ ।।

'पार्श्व नाथ जी' सर्प का, करते है विष पान।
धर्म तीर्थ जो तपोधन, उनमे मेरा ध्यान ।।

मुझको जीवन ज्योति दे, धर्म तीर्थ के ज्ञान।
गर्भ जन्म तप ज्ञान गति, कल्याणक भगवान ।।

जो सुख है सत्सग में, कही नही है तात !
जो इच्छा हो वह करो, कह दी अपनी बात ।।

सुनकर बेटी की बात पिता, बोले बेटी! है भाग्य बडा।
बेटी बोली है कर्म बडा, दुर्भाग्य डूबता खडा खडा ।।
हँस पडे पिता ऐसे जैसे, बच्चे के मुँह से फूल झडे।
त्रिशला की अद्भुत बातो को, सुनते थे राजा खडे खडे ।।

इतने मे मन्त्री ने आकर, करके प्रणाम सन्देश दिया।
सन्देश लिया था राजा ने, सन्देश श्रवण कर अमृत पिया ।।
सन्देश पत्र नृप को देकर, मन्त्री बोले अच्छा वर है।
सिद्धार्थ 'कुडपुर' का राजा, क्षत्रिय वीर सुन्दर नर है ।।

चिट्ठी के अक्षर अक्षर मे, सिद्धार्थ धर्म से वोल रहे।
'त्रिशला' से प्रकट प्यार मुखरित, कवियो की भाषा खोल रहे ।।
यह अवसर चला नही जाये, सिद्धार्थ हमारा हो जाये।
जिसकी वहुतो को इच्छा है, वह वर त्रिशला वेटी पाये ।।

मन्त्री ने त्रिशला को देखा, लज्जा से थी छवि झुकी हुई।
मन्त्री के स्वर मे मुखर हुई, राजा की वाणी रुकी हुई ।।
आये हँसते खिलते गाते, त्रिशला के भाई वहिन सभी।
सवकी राजी में राजी से, पक्की कर डाली वात तभी ।।

हीरे मोती में जडा हुआ, नारियल कुडपुर भेज दिया।
शृगार कुडपुर से आया, त्रिशला छवि का शृगार किया ।।
जो त्रिशला पर विजली चमकी, वह दमक न देखी जाती थी।
जो रूप वढा जो रग चढा, वह गमक न देखी जाती थी ।।

त्रिशला सवसे थी वडी वहिन, सव वहिनो को थी खुशी वड़ी।
त्रिशला इन अद्भुत खेलो को, देखा करती थी खड़ी खडी ।।
कुछ चाव वढे कुछ भाव वढे, कुछ जीवन को सगीत मिला।
त्रिशला के मन की सुरभि उड़ी, त्रिशला के मन का फूल खिला ।।

चाव मन में उठे भाव मन के खिले।
गूजता था भ्रमर फूल तन के खिले ।।
ओठ गाने लगे मन थिरकने लगा।
स्वप्न उठने लगे तन थिरकने लगा ।।
एक अनजान सी जान आने लगी।
एक मुस्कान मन को लुभाने लगी ।।
ओठ खुलने लगे सृष्टि के स्वर मिले।
चाव मन मे उठे भाव मन के खिले ।।
आग उठने लगी जो सुहाने लगी।
एक लज्जा हृदय को लुभाने लगी ।।
चाँदनी रात के स्वप्न आने लगे।
आयु फल वात रस की वताने लगे ।।

उम्र चढने लगी देह को फल मिले।
चाव मन मे उठे भाव मन के खिले ।।

रूप की ज्योति रमणी प्रकृति की कली ।
जो न बुझती कभी वर्तिका वह जली ।।
दो हृदय का मिलन सृष्टि का मूल है ।
दो हृदय का जलज धर्म का फूल है ।।

वक्ष के वायु से नासिका पुट हिले।
चाव मन मे उठे भाव मन में खिले ।।

दिन जाते देर नही लगती, परिणय की बेला आ पहुँची।
शहनाई और बासुरी की, ध्वनियाँ 'वैशाली' जा पहुँची ।।
अद्भुत बरात अद्भुत वर था, अद्भुत बाजे, अद्भुत 'त्रिशला'।
मानो ऐरावत हाथी पर, दूल्हा 'देवेन्द्र' इन्द्र निकला ।।

देखने योग्य थी वह बरात, देखने योग्य था वह स्वागत।
देखने योग्य थी वैशाली, देखने योग्य थे अभ्यागत ।।
सौरभ उडता था सडको पर, इत्रो की वर्षा होती थी।
हर लहर हृदय की उमड उमड, हीरो के हार पिरोती थी ।।

स्वागत में भाई 'सिंहभद्र', हर ऋतु के फूल गूथ लाया।
बहिनो के मगल गीतो ने, आनन्द अनोखा बरसाया ।।
ऋतु ऋतु के फल व्यजन परोस, राजाओ ने सत्कार किया।
भर गया इमलियो मे मिठास, भोजन मे इतना प्यार दिया ।।

नारियाँ सीठने देती थी, गालियाँ सुहानी लगती थीं।
फैला फैला कर वाकजाल, अधखिली सालियाँ ठगती थी ।।
सज्जा अनूप अद्भुत मडप, वर कन्या फेरो पर बैठे।
मानो धरती के दो प्रहरी, जीवन के घेरो पर बैठे ।।

मडप मे स्वर्ण अग्नि जागी, अधिकार और कर्त्तव्य मिले।
दूल्हा दुलहिन ने वचन भरे, दो कूल मिले दो फूल खिले ।।
आनन्द और आलोक मिले, श्रद्धा को मिल विश्वास गया।
मिल गई प्यास से तृप्ति सृष्टि, गति विधि को मिला प्रकाश नया ।।

'त्रिशला' ने गुरुओं की वाणी, बाँधी श्वासो के आँचल में।
'त्रिशला' ने मन्त्रो की शिक्षा, बाँधी विन्दी मे पायल मे ॥
सिद्धार्थ मनोहर दूल्हा ने, 'त्रिशला' का जीवन थाम लिया।
छवि ने प्रियतम के चरणो मे, श्रद्धा से दीपक जला दिया ॥

आँगन तज कर चली चाँदनी,
आँखें भर भर आईं।
प्रियतम के घर चली चाँदनी,
माँ आँखे भर लाई ॥

पिता फूट कर ऐसे रोये,
जैसे सावन भादो।
लाडो विटिया हुई पराई,
वेटी को समझा दो ॥

रोते रोते कहा पिता ने,
सब की सेवा करना।
चलना धर्म मार्ग पर वेटी,
अनुचित कदम न धरना ॥

कहते कहते कंठ रुक गया,
वहिने पानी लाई।
आँगन तज कर चली चाँदनी,
आँखे भर भर आई ॥

वहिने लिपट गई त्रिशला से,
कन्धे मिल मिल रोई।
रोके रुके न आँसू उनके,
मानो जल मे खोई ॥

भाई ने त्रिशला को देखा,
शब्द न मुँह से निकला।
पल भर मे त्रिशला का सारा,
जीवन घूमा पिछला ॥

त्रिशला के बचपन की बाते,
घूम घूम कर आई।
आँगन तज कर चली चाँदनी,
आँखे भर भर आई॥

माता पिता और बहिनो से,
मिल मिल त्रिशला रोई।
जिसके पास न रोई त्रिशला,
बचा न ऐसा कोई॥

घर का पत्थर पत्थर रोया,
रोयी क्यारी क्यारी।
आशीर्वाद दिया वृक्षों ने,
खुश रह बेटी प्यारी॥

त्रिशला के बचपन की सखियाँ,
भेटे भर भर लाई।
आँगन तज कर चली चाँदनी,
आँखे भर भर आई॥

•

घर की दीवारे बोल उठी, बेटी! इस घर की लाज रहे।
आमो पर कोयल ने गाया, 'त्रिशला वाणी से अमृत वहे॥
फूलो ने वर के पग चूमे, फिर कहा कि 'त्रिशला है सुगन्ध।
जो हमको जीवन देती थी, वह इँगला पिँगला है सुगन्ध॥

हमने अपने इस उपवन की, तुमको यह राजकुमारी दी।
तुम इसको अपना मन रखना, हमने यह राजदुलारी दी॥
उपवन के पक्षी बोल उठे, अब हमको कौन पढायेगा?
गउओ ने आँचल थाम कहा, बोलो मन कौन लगायेगा?

सिद्धार्थ कुडपुर के राजा! रानी को ले जल्दी आना।
हे राजा! राजसुखो मे तुम, हम सबको भूल नही जाना॥
फूलो पर बिजली दमक उठी, बोली पूजा का दीपक धर।
मुस्कान हमारे अधरो की, मुस्कान तुम्हारे अधरो पर॥

'त्रिशला' किरणों की काया है, बर्फीली हवा झूम बोली।
सबकी आँखो की पुतली है, गोरी गरिमा 'त्रिशला' भोली॥
'त्रिशला' बोली मै जाती हूँ, तुम सबको कभी न भूलूँगी।
यह झूला इधर उधर का है, दोनो पटरी पर झूलूँगी॥

शृंगार करुण रस में बरसा, सयोग वियोगी का मन था।
'त्रिशला' में अणु अणु की गति थी, 'त्रिशला' में कण कण का तन था॥
'त्रिशला' में थे सिद्धार्थ मुखर, स्वर गूजे ताल कुमुदिनी के।
जल में तुषार भीगे पकज, मानो थे भाल कुमुदिनी के॥

धरती की बेटी विदा हुई, मन उमड़ा तन में ताल बने।
अधरो पर थे इतिहास नये, आँखो मे थे भूचाल घने॥
सुन्दर सकल्पो की गगा, क्यारी क्यारी को सींच चली।
तन का दीपक मन की बत्ती, पूजा करती थी गली गली॥

# जन्म ज्योति

नम परमेष्ठी पच प्रकाश ।
नमन करता दासों का दास ॥

सिद्धो अरहतो को प्रणाम, आचार्यो के पग दीप गीत ।
सब ज्ञान उपाध्यायो का है, वे वर्तमान वे है अतीत ॥
मेरी रचना मे ओकार, मेरी वाणी पर 'णमोकार' ।
अवतरण वरण तीर्थकर के, स्वर लाया भज कर णमोकार ॥

नम परमेष्ठी भू आकाश ।
नम. परमेष्ठी पच प्रकाश ॥

णमो अरहताणम जय जय !
णमो सिद्धाणम् सुन्दर लय !
णमो आइरियाणम् श्रीस्वर !
णमो मानव धन साधू वर !

त्याग आया मै विष वाताश ।
नम: परमेष्ठी पच प्रकाश ॥

'सिद्धार्थ' व्याह कर 'त्रिशला' को, निज राज्य कुडपुर मे आये ।
जव से 'त्रिशला' व्याही आई, घर घर मे मगल सुर लाये ॥
'त्रिशला' व्याही ऐसे आई, जैसे पहले युग की सुषमा ।
'त्रिशला' कानो मे ऐसे थी, जैसे सब कवियो की उपमा ॥

नम कवियो के स्वर की प्यास ।
नम परमेष्ठी पच प्रकाश ॥

'त्रिशला' आई वर्षा आई, प्यासी मिट्टी की बुझी प्यास।
खेतियाँ वहू के स्वागत में, गा गा कर करने लगी रास॥
वालियाँ भाल के झूमर सी, शोभा देती थी झूम झूम।
देता था आशीर्वाद पवन, दुलहिन का माथा चूम चूम॥

'त्रिशला' ने जब गउ ग्रास दिये, गउओ के थन से चुआ दूध।
पीते पीते छक गये सभी, भारत में इतना हुआ दूध॥
सगीत पक्षियो का स्वर था, वीणा थी पवन झकोरो की।
सडके थी इन्द्रधनुष जैसी, गलियाँ थी नर्तित मोरों की॥

नहलाया मधुर चाँदनी ने, फूलो ने जेवर पहनाये।
साडी पहनाई किरणो ने, कालीनो ने पग सहलाये॥
देवों ने भेंटे भेजी थी, वर दिये देववालाओं ने।
यौवन के फूलो को चूमा, उर पडी कठमालाओ ने॥

'त्रिशला' रानी के आने से, जल आया सूखी नदियो में।
दुनिया में ऐसी वधू मित्र! दर्शन देती है सदियो मे॥
घर में मगल वाहर मंगल, वन मे मगल आहा हा हा!
वर वधू एक रस सव रस में, रति ने गति को चाहा आहा!!

रस मे सरिता सागर में थी, सुख मे दो तन थे एकरूप।
तन के महलो में लीन हुए, रानी मे खोये हुए भूप॥
रानी राजा के चरण चूम, वोली प्रिय तुम जल मैं प्यासी।
पर प्यास हमारी नीर वने, उपवन के फूल न हों वासी॥

दासी की विनती है स्वामी! भगवान प्रजा को मत भूलो।
मै सदा तुम्हारे पास नाथ! जितना मन हो उतना भूलो॥
पर तव जव जनता राजा की, सुख से पूजा कर सुख माने।
राजा आनन्दविभोर हुए, सुन सुनकर 'त्रिशला' के ताने॥

मन उमडा तन उमड़ा मचला।
रति की गति में आई सजला॥

फूलों की आँखे बन्द हुईं।
तन मन की बाते छन्द हुईं ॥
उपदेश अधर पर प्यार बने।
दु.खो के धन घनसार बने ॥

मन के समुद्र मे ज्वार उठे।
तन की वीरा मे तार उठे ॥
श्वासों मे थे तूफान मधुर।
अधरो पर थी मुस्कान मधुर ॥

कम्पन से घूम गई अचला।
मन उमड़ा तन उमड़ा मचला ॥

राजा पीते थे रूप सोम।
मद मे कम्पित था रोम रोम ॥
उपवन के पत्ते हिलते थे।
कलियों से भौंरे मिलते थे ॥

संगम करते थे कमल ताल।
तन पर बिखरे थे स्वर्ण बाल ॥
वह रात बड़ी ही प्यासी थी।
गाथा है बात जरासी थी ॥

वर्षा से भीग गई सजला।
मन उमड़ा तन उमड़ा मचला ॥

तन पर चलते थे पुष्प बाण।
रस गन्ध उड़ाती रूप प्राण ॥
सीने पर बात चक्र सा था।
सीधा 'सिद्धार्थ' वक्र सा था ॥

बुझ बुझकर आग सुलगती थी।
उलझन मे प्रिया उलझती थी ॥
भोली अबोध को बोध हुआ।
कुछ खट्टा मीठा क्रोध हुआ ॥

नारी ने सीखी नयी कला।
मन उमड़ा तन उमड़ा मचला ।।

प्रियतम! यह शोध अनोखा है।
राजा! यह अद्भुत धोखा है ।।
प्रिय प्यास बढा डाली तुमने।
डाली लूटी माली तुमने ।।

रस भीगी कविता गूज उठी।
लुटती थी नूतन लुटी लुटी ।।
जीती थी कलिका मरी मरी।
रीती थी गगरी भरी भरी ।।

प्रिय! प्यास काम की वड़ी वला।
मन उमड़ा तन उमड़ा मचला ।।

गोरी सूरत हो गई लाल।
मन की मछली पर पड़ा जाल ।।
कुछ पता जोश में रहा नही।
था हाथ कही तो पाँव कही ।।

मन चलता था तन चलता था।
दीपक से दीपक जलता था ।।
सहसा गति में अवरोध हुआ।
कुछ मिचलाया सा वोध हुआ ।।

मीठा रस खट्टे मे वदला।
मन उमड़ा तन उमड़ा मचला ।।

चचलता कुछ गम्भीर हुई।
हो गई नवेली छुई मुई ।।
मन में मर्यादा सी आई।
हर ओर उजाली सी छाई ।।

'त्रिशला' को थी अनुभूति नई।
वह रात वात मे वीत गई॥
प्रात' प्रसाद लेकर आया।
सूरज ने सोना वरसाया॥

प्यासी चाहो से पुण्य फला।
मन उमड़ा तन उमडा मचला॥

प्रियकारिणी 'त्रिशला' प्रिया, चुग इमलियाँ खाने लगी।
कुछ उवकियाँ आने लगी, जम्भाइयाँ आने लगी॥
कुछ झुक गई कुछ तन गई, कुछ भर गई रस पूर्तियाँ।
पूजा सफल करने लगी, तीर्थंकरो की मूर्तियाँ॥

एकान्त मे कुछ गुनगुना, सीने लगी वुनने लगी।
वाते कही कुछ और थी, वह लोरियाँ सुनने लगी॥
वह जुगनुओ से वोलती, कहती खिलाना लाल को।
चन्दा! खिलौना वन सुधा, सुख पा पिलाना लाल को॥

सुन्दर भविष्यत की किरण, हर फूल पर आशा वनी।
सोना उगल गाने लगी, फूली फली खेती घनी॥
रोगी दुखी अच्छे हुए, रीते कुएँ भरने लगे।
दृग दीप 'त्रिशला' भावना, नित आरती करने लगे॥

कभी कभी तो वासना,
वन जाती वरदान।
कभी कभी तो काम से,
आते है भगवान॥

कभी कभी सौन्दर्य से,
आता सत्य स्वरूप।
ऐसे भी आते चरण,
भरते खाली कूप॥

कभी कभी तो प्यास से,
पैदा होता नीर।
गंगा लाता भूमि पर,
कोई पर्वत चीर॥
इच्छा से संकल्प से,
मिल जाते भगवान।
विना भाव के भक्ति कब?
विना धर्म कब ज्ञान॥
बिना चाव के प्यार क्या?
विना प्यार क्या सार?
प्यार सृष्टि का मित्र है,
बढता जाये प्यार॥

डाली बौरों से झुकी हुई, फल की आशा मे था माली।
सारा जग ज्योतिर्मय होगा, आयेगी ऐसी उजियाली॥
आशा विश्वास और श्रद्धा, आ गई भूप के चावों मे।
तीर्थंकर का आलोक उतर, आ गया रूप के भावो मे॥

'त्रिशला' की अद्भुत आँखो में, आश्चर्य अनोखा बोल उठा।
'त्रिशला' के मन्त्रो से स्वर मे, ब्रह्मा का यश भूगोल उठा॥
'त्रिशला' के दर्शन करने से, भय के बादल फट जाते थे।
'त्रिशला' की वाणी से भू पर, सत्यों के झरने आते थे॥

'त्रिशला' जब एक रात सोयी, वह अद्भुत स्वप्नो में घूमी।
प्रातः तक प्रियकारिणी प्रभा, सुन्दर शुभ शकुनो में झूमी॥
हाथी आ चार दाँत वाला, 'त्रिशला' के पग छू चला गया।
वह हाथी उन्नत हाथी था, उस हाथी का था रूप नया॥

देखा फिर बैल सफेद एक, प्रत्यक्ष धर्म का कर्म रूप।
भूखो को रोटी देता था, मानो धरती का श्रमिक भूप॥
फिर श्री लक्ष्मी प्रत्यक्ष हुई, 'त्रिशला' के सिर पर मुकुट धरा।
मानो आगन्तुक राजा का, अभिषेक किया आनन्द भरा॥

फिर एक उछलता हुआ सिंह, चन्दा मामा छूता देखा।
दो कमल भृग से दूध चुवा, खिंच गई वीरता की रेखा॥
पहनाई दिव्य देवियो ने, सुन्दर मदार की मालाएँ।
भर गई रक्त मे पूर्ण सुरभि, सुरभित आलोकित वालाएँ॥

देखे उदस्त शशि सूर्य तूर्य, मछलियाँ दृगो में दो झलकी।
दो घटे और सरोवर मे, कल कल करती लहरे ललकी॥
देखा समुद्र देखा विमान, सिंहासन नाग भवन देखा॥
थी आग, धुवाँ था कही नही, रत्नागर मे थी गति रेखा।

जागरूक 'प्रियकारिणी', देख रही थी स्वप्न।
सोलह स्वप्नो में मिले, सब तीर्थों के रत्न॥
स्वप्नमयी 'प्रियकारिणी', बनी ज्ञान की मूर्ति।
जागी लगी विचारने, क्या लक्षण क्या पूर्ति?
देख प्रिया को सोचते, बोल उठे 'सिद्धार्थ'।
आँखों मे लाखो कथा, पूजा आज यथार्थ॥
बहुत बहुत खुश दीखती, बोलो क्या है बात?
रात करोडो रग के, मुँहपर थे जलजात॥
'त्रिशला'! तुम सोती रही, मैंने देखे रूप।
सब रातो का चाँद था, तेरा रूप अनूप॥
मुस्काई 'प्रियकारिणी', बोली देखे स्वप्न।
श्वासो मे वे स्वप्न हैं, आँखो मे वे रत्न॥
कहो कहो मृगलोचनी, क्या क्या देखे स्वप्न?
क्या क्या सुख तुमने लिये, क्या क्या पाये रत्न?
'त्रिशला' ने प्रिय से कहे, सारे सोलह स्वप्न।
नाच उठे 'सिद्धार्थ' सुन, कहा प्राप्त सब रत्न॥
स्वप्न मूर्तियाँ दे गईं, रात हमे यह ज्ञान।
'त्रशला' तेरी कोख मे, तीर्थंकर भगवान॥
'त्रिशला'! तेरे दृगो मे, धर्मवीर की ज्योति।
जग मे होगी अवतरित, कर्मवीर की ज्योति॥

राज्यो से अर्चित सुवन, होगा वीर अजेय।
तेरे मेरे पुत्र के, यहाँ वहाँ गुण गेय ॥

पुत्र यशस्वी गुणी गुरु, नीर क्षीर वरदान।
'त्रिशला'! तेरी कोख मे, सुभित है भगवान॥

नष्ट करेगा मोह मद, धन्य हमारे भाग।
उदित करेगा ज्ञान रवि, धो देगा सब दाग ॥

पुत्र हमारा रत्न त्रय, सुख अनन्त श्री सार।
सुन्दरतम ध्यानी धरुण, अमृत कुड जलधार ॥

होगा सिन्धु अथाह सुत, ज्ञानवान धनवान।
अप्रमेय अद्‌भुत शिवम्, सुख देगी सन्तान॥

प्रिये बहाना पेट का, सुत हित सजा विमान।
चढ विमान पर स्वर्ग से, आयेगे भगवान ॥

शुभे! जन्म की ज्योति से, तीर्थ बनेगा गेह।
'त्रिशला'! तेरी गोद में, लेगा जन्म विदेह ॥

मानवीय गुरु गुणों से, पूर्ण पुत्र सर्वज्ञ।
जग मे करने आ रहा, जीवन के सब यज्ञ ॥

बिना धुँए की आग का, मै समझा यह अर्थ।
कर्मो का क्षय करेगा, तेरा पुत्र समर्थ ॥

शुभ शकुन हुए सुरभित समीर, सौरभ बिखेरता वह निकला।
जीवन के सुन्दर सत्यों का, इतिहास सुनाता था पिछला ॥
आनन्द वरसता था ऐसे, जैसे मन चाहा आता हो।
ऐसे गाता था पवन झूम, जैसे 'कबीर' तब गाता हो ॥

निर्मल अम्बर सुन्दर समीर, फैला वसन्त वन बागो मे।
मंगल ध्वनियाँ मनहर बाजे, पक्षी गाते सब रागो में ॥
नक्षत्र सभी अनुकूल हुए, शुभ घडियो की आ गई घडी।
उस क्षण की पूजा करने को, सिद्धियाँ खडी थी बड़ी बड़ी ॥

चन्द्रमा फाल्गुनी रेखा पर, चमका सूरज के तप जैसा।
जैसा त्रयोदशी को शशि था, हमने न कभी देखा ऐसा॥
वह सोम चैत्र शुक्ला का था, वह घडी ज्योति की भापा थी।
वह था मुहूर्त सव धर्मो का, वह गति जग की अभिलाषा थी॥

गा उठी धरा गा उठा गगन, तीर्थंकर आने वाले है।
वह ज्योति जन्म जल्दी लेगी, हम दर्शन पाने वाले है॥
रत्नो ने वरस वरस गाया, यह युग यह जग है धन्य धन्य।
जो ज्योति जन्म ले आयेगी, वह है अनन्त वह है अनन्य॥

वैशाली मे दीवाली थी, लद गये वृक्ष फल फूलो से।
वालक भर भर कर लाते थे, मोती कुडो के कूलो से॥
दृग गिराहीन गूगे मधुकर, रस लेते थे कहते कैसे ?
जो वसुकुड मे सुख देखे, न अभी तक फिर वैसे॥

अवतीर्ण हुई वह दिव्य ज्योति, जो युग युग के तम पर प्रकाश।
घर घर मे थे आह्लाद नये, घर घर मे धन घर घर प्रकाश॥
वह प्रकट हुआ जो धरा वन', वह प्रकट हुआ जो गगन वना।
वह आया जो ब्रह्माण्ड ईश, 'त्रिशला' ने अमर सपूत जना॥

जननी मुस्काती रही, खिले जन्म से फूल।
प्रसव वेदना का कही, चुभा न कोई शूल॥
दिव्य ज्योति सम्भूत सुत, अद्भुत अनुपम रूप।
सुखी राजमाता हुई, सुखी हुए सव भूप॥
'कुड ग्राम कोल्लाग' मे, 'वासु कुड' के पास।
जन्म हुआ था वीर का, फैला पूर्ण प्रकाश॥
ज्ञातृकुल मे वीर वर, वैशालिय अवतीर्ण।
अणु अणु कण कण में हुई, सुरभित ज्योति विकीर्ण॥
व्याप्त हुए ससार मे, वणिय ग्राम के गीत।
गीत गीत मे मुखर थी, मानवता की जीत॥
ऋतुए निर्मल हो गई, वावा वने 'सवार्थ'।
दादी श्री थी श्रीमती, उदित हुआ परमार्थ॥

धन्य धन्य 'सिद्धार्थ' ने, पाया पुत्र विदेह।
याचक दाता बन गये, बरसा ऐसा मेह॥
भू पर भरे कुबेर ने, रत्नो के भंडार।
मित्र! मोतियों के लगे, घर घर में अम्बार॥
महिमा चौथे काल की, कृत युग के आभास।
तीर्थंकर के जन्म से, बुझी भूमि की प्यास॥
रत्न लुटाये सिन्धु ने, हुआ नाथ कुल हंस।
इच्छवाकु के वंश मे, हुआ वश अवतस॥
जननी त्रिशला धन्य है, गोदी मे भगवान।
भारत माता धन्य है, जन्मा सिंह महान॥
वीतराग शिशु को नमन, जय जय 'त्रिशला' भक्ति।
धरती माँ की शक्ति है, माता! तेरी शक्ति॥

'त्रिशला' ने भारत माँ वनकर, शिशु गोद खिलाया दूध पिला।
मन में लहरे जग में लहरे, हर प्राणी को आनन्द मिला॥
भ्रमरो से भरे फूल नाचे, सुरवालाएँ तितलियाँ वनी।
जन्मोत्सव में सुख वर्षा थी, वन्दी छूटे, थी खुशी घनी॥
घर मे उत्सव वाहर उत्सव, उत्सव थे धरती अम्वर में।
कुछ ऐसा अद्भुत रग उड़ा, खिल गई उजाली घर घर में॥
जितने न शलभ तारे उतने, उत्सव उत्सव में दीप जले।
शिशु पर न्यौछावर होने को, सजकर इन्द्राणी इन्द्र चले॥
त्रिशलानन्दन के दर्शन को, धरणेन्द्र चले 'देवेन्द्र' चले।
'सिद्धार्थ' सुवन के वन्दन को, धरती अम्वर में दीप जले॥
दर्शन को जन सागर उमड़ा, अभिनन्दन को आलोक चले।
आँसू गीतों मे वदल गये, जाने कव कव के पुण्य फले॥
भारत का कण कण वोल उठा, यह जन्म मुक्ति का उजियाला।
जिसमे हिम की शीतलता हो, ऐसी भी होती है ज्वाला॥
जो पशु वल पर अकुश अजेय, अवतीर्ण हुआ वह वलशाली।
रीता न रहा कोई दीपक, रीति न रही कोई थाली॥

दिनमान भाल पर था शिशु के, गालों पर चाँद खिलौना था।
करते थे सिंह प्रणाम जिसे, वह शिशु ऐसा मृग छौना था।।
मलमूत्र रहित था देह दिव्य, तन पर न पसीना आता था।
था दूधामृत सा रक्त माँस, हँस हँस सौरभ बरसाता था।।

एक सौ आठ शुभ लक्षण से, सुन्दर शरीर सुरभित मन था।
अद्भुत दाता अद्भुत वक्ता, गम्भीर धीर जन्मा जन था।।
जन्मा था वृषनाराज वज्र, जन्मी विशेषताएँ सारी।
उल्लास अनोखा था सब में, उत्सव मे भीड लगी भारी।।

आ इन्द्राणी इन्द्र ने, लिया गोद मे लाल।
रत्नो की वर्षा हुई, भरे सभी के थाल।।
आये योगी सन्त जन, आये सिद्ध महान।
गोदी के भगवान मे, मुनियो का था ध्यान।।
आये आर्य अनार्य नर, आये सुर गन्धर्व।
ऐसा सम्मेलन हुआ, धर्म मिल गये सर्व।।
धर्म वृषभ पर शिव चढे, डाल गले में नाग।
वेष बदल आनन्द मे, सुनते थे सब राग।।
लक्ष्मी दुर्गा शारदा, उमा भूमि के साथ।
'त्रिशला' सुत को चूमती, पकड़ पकड कर हाथ।।
त्रिशलानन्दन देखकर, धरा रह गई मौन।
मुस्काने कहने लगी, ऐसा होगा कौन?
रूप विष्णु जैसा सुखद, अग अग मे तेज।
रग रग मे ज्योति थी, रग रग मे तेज।।
गणनायक शकर सुवन, गौरीपुत्र गणेश।
बाँट रहे थे सिद्धियाँ, ज्योतिवन्त था देश।।
तीर्थंकर को गोद ले, सुला पास शिशु एक।
चले सुमेरू शैल पर, करने को अभिषेक।।
लिये गोद में बाल प्रभु, चले इन्द्र सुरराज।
मानो सब कुछ मिल गया, इन्द्राणी को आज।।

रत्नमयी पांडुक शिला, अद्भुत जहाँ प्रकाश।
मन्त्र अहिंसा के वहाँ, भजते है वाताश।।

इन्द्राणी ने चाव से लिया गोद में वीर।
वीर शची के अङ्क में, मिटी विश्व की पीर।।

शची लाल के गाल से, उड़ा रही थी भृङ्ग।
गाल भाल पर भ्रमर थे, दृग पुतली के रङ्ग।।

बार बार क्यों पोंछती, शची! लाल के गाल।
पगली! यह पानी नही, यह गहनो की झाल।।

बालो पर बिजली नही, हो मत शची अचेत।
कुडल तेरे कान के, दमक रहे है श्वेत।।

नजर न लग जाये कही, तिलक लगादे श्याम।
मुँह पर मेरी पुतलियाँ, सदा श्याम सुखधाम।।

रत्न शिला पर इन्द्र ने, लगा पूज्य मे ध्यान।
सुरभित जल से तिलक कर, पूजे श्री भगवान्।।

सुरपति नें माला पहनाई, फिर कहा 'वीर'! जय हो जय हो।
ज्वाला जिसके तन पर जल है, तुम वह जय हो तुम वह लय हो।।
जल तुमको गला न पायेगा, तुम भ्राता हो तुम त्राता हो।
तुम पिता भुवन भर के दाता, तुम हर अनाथ की माता हो।।

सौधर्म इन्द्र लाये प्रकाश, कुछ चमत्कार ऐसा फैला।
तन का न रहा कोई मैला, मन का न रहा कोई मैला।।
'त्रिशला'! यह तेरा होनहार, वीरो में महावीर होगा।
यह पुण्य जन्म जन्मान्तर का, बालक गम्भीर धीर होगा।।

इसमे वे सब शुभ लक्षण है, जिनसे आगे शुभ शेष नही।
यह जन्मोत्सव तीर्थंकर का, ये युगादित्य भगवान यही।।
तीर्थंकर के पथ पर चलकर, नर नारायण बन जाता है।
यह सब धर्मो का धर्मेश्वर, यह सब धर्मो का दाता है।।

शिशु खेला शिशु के दाँतो से, हो गया उजाला यहाँ वहाँ।
'सिद्धार्थ'! तुम्हारा सुत सन्मति, सत्यो का सतत प्रकाश यहाँ॥
यह वर्द्धमान यह ज्ञानवान, यह अद्भुत ईश्वर का स्वरूप।
यह अपराजित यह सर्वाधिक, यह महाकूप यह महाभूप॥

तीर्थंकर शिशु का अर्चन कर, वात्सल्यामृत का पान किया।
बारी बारी राजाओ ने, शिशु की आँखो से अमृत पिया॥
त्रिशला की गोदी से शिशु ले, इन्द्राणी ने मनुहार किया।
फिर बड़े प्यार से 'त्रिशला' की, गोदी में उसका लाल दिया॥

यह मेरा तेरा सुत 'त्रिशला'!, शिशु पर न्यौछावर हो बोली।
रस और दूध से भीग गई, दोनो माताओ की चोली॥
लगता था स्वर्ग और धरती, हो गई एक उस क्षण रस से।
यति में गति थी गति मे लोरी, सुख बढा समन्वय के यश से॥

सोजा लाल! रात यह प्यारी।
गाने लगी चाँदनी न्यारी॥

सोजा सुबह खिलौना दूँगी।
सोने का मृग छौना दूँगी॥
दूँगी मिसरी और मलाई।
थपकी दे दे लोरी गाई॥

दूँगी तुझे मिठाई सारी।
सोजा लाल रात यह प्यारी॥

सोजा सोजा राजा बेटे!
माँ गाती थी लेटे लेटे॥
सोजा सुबह परी आयेगी।
तेरे लिए चाँद लायेगी॥

सोजा मैं तेरे से हारी।
सोजा लाल रात यह प्यारी॥

सो मेरे अधरों की भाषा।
सो मेरी सुन्दर् अभिलाषा॥
सो मेरी आँखों की बोली।
सो मेरे भारत की रोली॥

सोजा सोये सब नर नारी।
सोजा लाल रात यह् प्यारी॥

सो सोने की चिड़िया दूंगी।
गुड्डा दूंगी गुड़िया लूंगी॥
अगर न सोया तो क्या लेगा?
हँसता है कितना सुख देगा?

इन आँखों में दुनिया सारी।
सोजा लाल रात यह् प्यारी॥

सोजा मुझे नींद आती है।
तेरी नींद उड़ी जाती है॥
सोजा इतिहासों की आशा।
सोजा मानव की परिभाषा।॥

तेरी नींद उड़ गई सारी।
सोजा लाल रात यह् प्यारी॥

सोजा शुद्ध सिद्ध निर्मल सुत।
सो निर्लिप्त निरंजन संयुत॥
सो सम्यक चरित्र जगत्राता।
गाती चूम चूम मुख माता॥

निधियाँ पड़ी गोद में सारी।
सोजा लाल रात यह् प्यारी॥

लोरी 'प्रियंवदा' ने गाई।
किन्तु वीर को नींद न आई॥
दुनिया सोई वीर न सोया।
दुनिया रोई वीर न रोया॥

मुझ से रात भर गई सारी ।
सोजा लाल रात यह प्यारी ॥

शिशु ने चन्दा से सुधा पिया, तारों ने फूलों को चूमा ।
'त्रिशला' माता के तन मन ने, कुछ अद्भुत चमत्कार घूमा ॥
जितना न किसी को कभी मिला, माँ को इतना आनन्द मिला ।
जैसा न कभी भी कहीं खिला, गोदी में ऐसा फूल खिला ॥

देवों ने मानव को पूजा, उत्थान धरा का वीर हुआ ।
धरती पर अद्भुत वीर हुआ, अम्बर में अद्भुत वीर हुआ ॥
शिशु पर बरसाते हुए फूल, सुर देवलोक को चले गये ।
अवतीर्ण वीर अतिवीर हुए, प्रतिदिन उत्सव थे नये नये ॥

दुन्दुभी बजाते आये थे, दुन्दुभी बजाते चले गये ।
जयकारे गाते आये थे, जयकारे गाते चले गये ॥
आनन्द मनाने आये थे, आनन्द मनाते चले गये ।
सुर सोने जैसे आये थे, पारस बन गाते चले गये ॥

तन की जय पर मन की जय थी, लोहे पर फूलों की जय थी ।
जय महावीर जय महावीर, सुरपति नरपतियों की लय थी ॥
जय बोल उठे खग कुल नर कुल, जय बोल उठे जलचर थलचर ।
जय बोल उठे फूलों के स्वर, जय बोल उठे दीपों के स्वर ॥

जय हो जय हो जय हो जय हो, इतिहासों की वाणी बोली ।
भगवान वीर की अरुणाई, स्वर्णिम अम्बर सुन्दर रोली ॥
झर झर करते झरने बोले, आलोक पुंज अम्बर की जय ।
कलकल करती नदियाँ बोलीं, लहरों में तीर्थंकर की लय ॥

हिमगिरि की ऊँचाई बोली, ये पग ऊँचे मेरे सिर से ।
सागर की गहराई बोली, गम्भीर वीर आया फिर से ॥
जल बोल उठा ज्वाला बोली, सद्गुरु सूरज बन जाते हैं ।
पृथ्वी की गरिमा ने गाया, तीर्थंकर रोज न आते हैं ॥

नमः तीर्थंकर वीर अजेय !
नमः युग युग के अदभुत श्रेय !

नमः वैशालिय माँ के मान !
नमः त्रिशलानन्दन भगवान !
नमन देवों के देव विदेह !
नमन सन्मति तुम सबके गेह !

वीर ! तुम हो हम सबके प्रेय ।
नम. तीर्थंकर वीर अजेय !

नमन सिद्धार्थ सुवन श्री वीर !
नमः धरती माता के धीर !
धन्य है महावीर का ज्ञान ।
हमारे तीर्थंकर भगवान ॥

जिनेश्वर जैन धर्म के देय ।
नमः तीर्थंकर वीर अजेय !

वीर वैशालिक वर सद्ग्रन्थ ।
नमन लो जैन धर्म के पन्थ ॥
हमारे वर्द्धमान अतिवीर ।
वीर तुम महावीर गम्भीर ॥

तुम्हारा शब्द शब्द है गेय ।
नमः तीर्थंकर वीर अजेय !

नाथ कुल नन्दन की जय कहो ।
धरा पर गंगा बन कर बहो ॥
दयामय दाता वीर विछेद ।
सीप मे मोती तप का स्वेद ॥

जगत के नाथ काव्य के श्रेय !
नम. तीर्थंकर वीर अजेय !

भारतमाता ने तिलक किया, आरती उतारी ग्रामो ने।
उद्धार कर दिया दुनिया का, भगवान तुम्हारे नामो ने ॥
जो दीप धर्म के जलते है, प्रभु ! उनमे नेह नाम का है।
भगवान नाम का भजन करो, यह मेला सुवह शाम का है ॥

युग वीत गये वे चले गये, पर गया धरा से नाम नही।
जिनकी वाणी पर नाम नही, मिलता उनको आराम नही ॥
जो आये आकर चले गये, रहते है वे भगवान यही।
जब तक न नाम तब तक अवोध, गुण बिना नाम पहचान कही ॥

लोहा सोना वन जाता है, यह महिमा वीर नाम की है।
यह गुथी हुई है नामो से, यह माला बडे काम की है ॥
श्रद्धा बन्धन से मुक्त हुई, मिल गये चरण उद्धार हुआ।
चन्दना सदृश कविता श्री को, मिल गई मुक्ति सत्कार हुआ ॥

जब नाम भजा गुणवान हुए, लाखो कारा से मुक्त हुए।
यह महिमा नाम और गुण की, हम मुक्त हुए सयुक्त हुए ॥
कितनी ही दुखी 'चन्दनाएँ', ले नाम और गुण हुई सुखी।
जब जब न नाम रहता मुँह मे, तव तब होता है जीव दुखी ॥

जब नाम लिया तब ध्यान हुआ, पहचान लिया मन भाये को।
जब ध्यान किया तो जान लिया, पूजा, आँखो मे आये को ॥
जो मुक्त हुई अँग्रेजो से, वह नाम वीर का गाती है।
चन्दना वनी भारतमाता, जन्मोत्सव दिवस मनाती है ॥

इस युग मे महावीर स्वामी, गाँधी जी के मुँह से बोले।
बेडियाँ अहिंसा से काटी, भारत माँ के वन्धन खोले ॥
वह धर्म नही जो भगुर हो, वह राग नही जो सदा नही।
जन्मे सुन्दर जन्मे महान, पर जन्मी ऐसी अदा नही ॥

'त्रिशला' माँ की गोद मे, सिद्ध सात का अक।
व्रह्मरध्र मे अमृत घट, उज्ज्वल वीर मयक ॥
महाकालनिधि कालनिधि, पिगलनिधि भरपूर।
सर्व रत्न निधि पद्मनिधि, कव कविता से दूर ॥

प्राप्त माणवक निधि अतुल, प्राप्त शंखनिधि मित्र।
मिली पाण्डु निधि सभी को, शिशु श्री बड़ी विचित्र ।।
प्राप्त हुई नैसर्प निधि, नौ निधियाँ सुख ज्ञान।
जल अथाह नौका चली, माँझी ज्ञान महान ।।

शिशु कभी गोद मे हँसता था, गोदी से कभी निकलता था।
ऊपर को कभी उछलता था, शैया से कभी फिसलता था ।।
जो आती वह शिशु को लेती, हर माता को सुख देता था।
वह सुधा सभी को देता था, वह भेंट प्रेम की लेता था ।।

मै लूँगी पहले मै लूँगी, शिशु सबकी गोदी का धन था।
वह सब जीवो का जीवन था, सब जीवो का उसमें मन था ।।
जिसकी गोदी मे वीर गया, वह गोद भर गई गीतो से।
जिसने भी शिशु का वदन छुवा, वह हाथ भर गया जीतो से ।।

जिसने माथे को चूम लिया, उस जन का भाग्य महान बना।
जो चला 'सुदामा' वहाँ गया, वह निर्धन से धनवान बना ।।
जिन आँखों ने वे दृग देखे, उनकी न कभी भी ज्योति गई।
जिन कानों ने वे बोल सुने, वे कविता देते नई नई ।।

वे इन्द्र धनुष से गाल देख, तितलियाँ रँगी प्यारी प्यारी।
तितलियाँ सुनहरी रगो की, फूलो पर है न्यारी न्यारी ।।
वह फूल अनोखा गोदी का, वह फूल अनोखा डाली का।
हर गोदी स्वागत करती थी, उपवन उपवन के माली का ।।

शिशु मुकुल शीश का मुकुट मित्र, शिशु चाँद खिलौना शिशुओ का।
वह वीर कल्पतरु था सब का, वह शिशु मृगछौना शिशुओं का ।।
शिशु के खेलो में 'प्रियंवदा', खाना पीना सब भूल गई।
सेविका लोरियाँ गाती थी, लोरियाँ सुनाती नई नई ।।

पंखा झलती थी आँखो से, आँखो मे उसे सुलाती थी।
आँखो से झोटे देती थी, आँखो से उसे झुलाती थी ।।
आँखो से बाते करती थी, आँखो से उसे खिलाती थी।
आँखो के दीप जलाती थी, आँखो मे उसे हिलाती थी ।।

आँखो में बस गया है,
शिशु सिंह वीर प्यारा।
आँखों की पुतलियों मे,
संसार है हमारा ॥

आँखो की रोशनी है,
'त्रिशला' कुमार मेरा।
तिथियो मे पूर्णिमा है,
यह विश्व का सवेरा ॥

आँखो का रूप धन है,
ऐसा हुआ न होगा।
प्यासा नही है कोई?
ऐसा कुआ न होगा ॥

तारो मे वीर ध्रुव है,
शिशु सत्य का सहारा।
आँखो मे बस गया है,
शिशु सिह वीर प्यारा ॥

आँखो का यह कमल है,
आदित्य इत्र मे है।
आँखो की यह कला है,
हर गन्ध मित्र मे है ॥

आँखो मे ये नयन है,
ये गीत मित्र के है।
प्राणो मे ये पवन हैं,
ये स्वर पवित्र के हैं ॥

आँखो का देवता है,
यह सत्य का सहारा।
आँखो मे बस गया है,
शिशु सिंह वीर प्यारा ॥

आँखो से बोलता है,
यह रूप का बतासा।
आँखों को खोलता है,
यह बाल विभु जरासा ।।

आँखो में गा रहा है,
आदर्श की कथाएँ।
आँखों से शान्त करता,
विष से भरी प्रथाएँ ।।

तीर्थकरो की भाषा,
यह मुक्त धन हमारा।
आँखों में बस गया,
शिशु सिह वीर प्यारा ।।

शिशु धीरे धीरे मुस्काया, बिजली खिल गई चाँदनी पर।
चन्दा में ज्योत्स्ना सिमट गई, भर गये ज्योति से सब के घर ।।
शिशु निष्कलक मुझ में स्याही, कह चूमा भाल कलाधर ने।
विद्युत से मुख पर डाल लिये, माता के बाल कलाधर ने ।।

बोली शिशु की मुस्कान मधुर, सब के कलक मैं धो दूँगी।
शिशु के अन्तर की गगा से, माथो की स्याही खो दूँगी ।।
यह गगा धर्म भगीरथ की, मुस्कान जिसे तुम जान रहे।
यह साध्य साधनाओं का है, लिखनेवालो! यह ध्यान रहे ।।

पग छूकर नवधा ने गाया, सिद्धेश्वर शिशु भोला प्यारा।
धरती ने खिला खिला गया, शिशु है दुलार मेरा सारा ।।
माँ देख देख खुश होती थी, जग देख देख सुख पाता था।
जब मोह घेरता था माँ को, शिशु सम्यक चक्षु चलाता था ।।
कहती थी त्रिशला पियवदे! यह अद्भुत और अनोखा है।
यह जब गोदी में होता है, मन कहता है जग धोखा है ।।
हँसता है मेरी बातो पर, वैरागी मुझे बनाता है।
आँखो से बाते करता है, आँखो से ज्ञान बताता है ।।

ले इसको गोदी में तू ले, यह मुझे न करदे सन्यासी।
यह मुझको बहुत हँसता है, तू इसको वश मे कर दासी!
मुख चूम चूम रस पीती हूँ, पर मै हूँ प्यासी की प्यासी।
झगला न पहनता है मुझसे, तू झगला पहना दे दासी!

'त्रिशला' माता ने दृग तारा, दे दिया गोद मे दासी की।
पर प्यास बुझाता रहा वीर, आँखो से माता प्यासी की॥
झगला पहनाया दासी ने, झगला तन पर से फिसल गया।
झगला फिसला सुन्दर तन से, या शिशु झगले से निकल गया॥

दिशाये वस्त्र है दिग्वस्त्र पहने है।
धरोहर है यहाँ हम सब न रहने है॥
त्वचा के वस्त्र तन पर पहन कर आया।
न लाया वस्त्र आया धर्म धन लाया॥
न पेड़ो को किसी ने वस्त्र पहनाये।
न कपडे पहन कर पक्षी यहाँ आये॥
देह पर भावना के भव्य गहने है।
दिशाये वस्त्र है दिग्वस्त्र पहने है॥
धरा ने धूलि के ये वस्त्र पहने है।
भूमि की हर दिशा के फूल गहने है॥
दिगम्बर नभ दिगम्बर रवि दिगम्बर घन।
दिगम्बर गौर से देखो सभी के मन॥
हमारे वस्त्र स्वर सिद्धान्त गहने है।
दिशाये वस्त्र है दिग्वस्त्र पहने है॥
ढका तन नग्न मन नगी दिशाएँ है।
नशे मे नग्न जग नगी निशाएँ है॥
यहाँ पर रूप धन नीलाम होते थे।
यहाँ पर जिन्दगी के दाम होते थे॥
चिता पर रेशमी कपडे न रहने है।
दिशाये वस्त्र है दिग्वस्त्र पहने है॥

बड़े बेशर्म वे जो बेचते बेटे।
बड़े बेशर्म वे जो खा रहे लेटे॥
न उनको लाज है जो ले रहे रिश्वत।
न उनको शर्म है जो दे रहे रिश्वत॥

मुझे रोते दृगों के बोल कहने है।
दिशायें वस्त्र है दिग्वस्त्र पहने है॥

दिगम्बर चाँद तारे मौन गाते है।
दिगम्बर सिन्धु मथ ऋषि रत्न लाते है॥
दिगम्बर देह में शिव साधु रहते है।
दिगम्बर वीर को भगवान कहते है॥

गले के गीत के भगवान गहने है।
दिशायें वस्त्र है दिग्वस्त्र पहने है॥

## बालोत्पल

बालारुण की रश्मियाँ, खेल खिल रहे फूल।
एक फूल ऐसा खिला, रही न कोई भूल॥

सत्य अहिंसा से प्रकट, बालवीर भगवान!
ज्योति दान दो मित्र को, तपता दीपक जान॥

राजाओ की मुकुट मणि, ऋषि मुनियो के ध्यान।
मेरी हर पीडा हरो, महावीर भगवान!

गुरु है नवधा भक्ति के, नाम भिन्न गुण एक।
महावीर हनुमान दो, एक गीत दो टेक॥

ज्ञान धर्म शाश्वत विधा, उत्थानो का मूल।
खिला रहे मन बाग में, सदा धर्म का फूल॥

एक धर्म के अग है, सारे धर्म अनेक।
एक रूप में रूप सव, सव रूपो मे एक॥

आदर्शो का आदि है, धर्म दीप विख्यात।
मानवता के धर्म मे, सब धर्मो की बात॥

यह अथाह सागर महा, इसमे रत्न अनन्त।
पाता है यह रत्न धन, कोई विरला सन्त॥

सन्मति! सन्मति दो मुझे, दूर करो अज्ञान।
प्रभु! अपने उद्‌बोध के, दे दो मुझको गान॥

श्रम के बिना न सुख यहाँ, धर्महीन जन दीन।
सन्मति बिना न शान्ति है, मानव के गुण तीन॥

कर्म सृष्टि का सार है, धर्म धरा की टेक।
मणि विषधर के शीश पर, श्रद्धा बिना विवेक॥

पर उपकारी जीव जिन, दया धर्म के मूल।
महा प्रलय की बाढ में, धर्म कर्म दो कूल॥

प्राणी कीचड़ में सना, पकिल जग जजाल।
निर्मल जल से धुल गया, शुद्ध हो गई खाल॥

पानी पंक अथाह है, तीर्थ राह है एक।
तीर्थकर बढ़ते गये, देते गये विवेक॥

कविता पूजा बन गई, बना पुजारी मित्र।
शब्द शब्द के सुख बने, महावीर के चित्र॥

सिद्धार्थ सुवन कुछ वड़ा हुआ, गोदी से भू पर खड़ा हुआ।
माता की आँखो का तारा, आँगन का चन्दा वडा हुआ॥
वह कभी वाग के फूलो में, फूलों के राजा सा खेला।
त्रिशलानन्दन के आस पास, जुडता था वच्चो का मेला॥

वह वर्द्धमान था वच्चो की, शोभा उससे वढ जाती थी।
अवनति न वहाँ टिक पाती थी, उन्नति ऊँची चढ जाती थी॥
जो गाय पास आई उसके, वह गाय वन गई कामधेनु।
जव चाहो जितना दूध दुहो, क्षीरोदधि आठों याम धेनु॥

वढ गई पिता की कीर्ति खूव, दौलत वढ गई खजानों में।
खेतों में इतना नाज वढा, मस्ती आ गई जवानों में॥
औषधियो में वे तत्त्व वढे, वूढे जवान वन झूम उठे।
सागर पग छूने को उमड़ा, वादल चरणो को चूम उठे॥

हर वालक में उत्साह वढा, हर गुरु का गौरव चमक उठा।
घर घर का अन्धकार भागा, सन्मति का सूरज दमक उठा॥
औचित्य वढ़ा आनन्द वढा, वढ गई धर्म की उजियाली।
डायन अँधियारी के सिर पर, चढ गई धर्म की उजियाली॥

बच्चो में वीर खेलता था, बच्चो को पाठ पढाता था।
त्रिशलाकुमार बचपन में ही, गुरुओ की बात बताता था॥
सुख मे सत्यो मे खेलो मे, बच्चे अपना घर भूल गये।
वह अमर ज्ञान का झूला था, बच्चे बूढे सब भूल गये॥

बाग मे झूला पडा झूलो।
प्यार के झौटे गगन छूलो॥
धर्म का तरु ज्ञान की रस्सी।
तोड दो अभिमान की रस्सी॥
प्यार अपरिग्रह बुलाता है।
सत्य का झूला झुलाता है॥
सर्प है ससार मत भूलो।
बाग में झूला पडा झूलो॥
पटरियाँ पावन कमल दल की।
चातको' हो प्यास शुचि जल की॥
श्राविकायें सत्य की भाषा।
ये अहिसा है अमृत प्यासा॥
दे रही झौटे चरण छूलो।
बाग मे झूला पडा झूलो॥
साथ झूलो शान्ति पाओगे।
जिन्दगी की कान्ति पाओगे॥
बालको के साथ झूलेगे।
ज्ञान का आकाश छूलेगे॥
चार दिन का अडगड़ा भूलो।
बाग में झूला पड़ा झूलो॥

रस भरी वीर की बाते थी, बोली थी अमृत धार जैसी।
जैसी ज्ञानी बाते करते, वह बाते करता था ऐसी॥
माँ मीठी बाते सुनने को, बालक को खीज रिझाती थी।
सुत को गुरु मान चकित होती, जब सुत को ज्ञान सिखाती थी॥

यह बालक बडा हमारा है, माता सखियों से कहती थी।
जब बालक मन्त्र बोलता था, मन मन में हँसती रहती थी ।।
कुछ मित्र वीर के एक रोज, आये, पूछा, है वीर कहाँ ?
माँ बोली ऊपर बैठा है, जाओ ले आओ उसे यहाँ ।।

खेलो कूदो हिलमिल गाओ, एकान्त योग कर चुका बहुत।
दुनिया में उसे खीच लाओ, दुनिया से बचकर लुका बहुत ।।
तुम उसके प्यारे सखा सभी, हिलमिल खेलो हँस हँस खेलो।
लो फल खाओ, लो दूध पियो, लो किसमिस लो, बदाम ले लो ।।

बच्चे बोले, माँ खायेंगे, साथी को तले बुला लाये।
माँ वीर मित्र सच्चा अपना, वह आजाये तब सब खाये ।।
खटखट झटपट सारे बच्चे, नीचे से चट ऊपर आये।
सिद्धार्थ पिता मिल गये वहाँ, पर वीर न मित्रो ने पाये ।।

पूछा राजा से वीर कहाँ, बोले नीचे, यह जीना है।
नीचे ऊपर की एक राह, जब तक जीना है सीना है ।।
नीचे से ऊपर, ऊपर से, फिर मँझली मजिल पर आये।
बच्चे जिनको थे ढूंढ रहे, वे प्रभु पूजा करते पाये ।।

बच्चो की किलकारी सुनकर, उठ गये वीर फिर गले मिले।
आओ आओ, आये आये, कहते कहते सब कमल खिले ।।
बोले बच्चे, नीचे माँ ने, जाओ ऊपर है वीर, कहा।
हम ऊपर पहुँचे पिता मिले, जाओ नीचे है धीर, कहा ।।

वीर ! बताओ तोल कर, किसका कहना ठीक।
कहा वीर ने सुनो सब, दृष्टि भेद से लीक ।।
आस पास तुम सब यहाँ, मेरे मित्र अनेक ?
सोम सखा बैठा कहाँ, और कहाँ पर नेक ?
कहो हर्ष ! बोलो सुमन ! दिशा बताओ मित्र !
उत्तर था, पूरब दिशा, था पश्चिम का चित्र !
समझे, मैं बैठा वही, एक जगह सब मित्र।
पूरब पश्चिम दिशा में, दिशा एक दो चित्र ।।

मित्र तुम्हारा एक है, अनेकान्त हैं रूप।
सूरज नभ मे दीखता, धरती पर है धूप॥
बोध कराया वीर ने, दिया ज्ञान का दीप।
अहि मुख में है बूंद विष, मुक्ता की माँ सीप॥
अर्थ यहाँ सन्दर्भ से, समय समय का भेद।
कभी यहाँ पर हर्ष है, कभी यहाँ पर खेद॥
आम एक गुण भेद से, खट्टा मीठा रूप।
दाह भरी गर्मी भरी, ज्योति भरी है धूप॥

बच्चे बोले प्रिय वीर कहो, ये रत्न कहाँ से लाये तुम ?
गुरुओ जैसे तुम बोल रहे, क्या पुस्तक पढकर आये तुम ?
क्या ज्ञान शास्त्र रट कर आये, या तुम धर्मो के इत्र मित्र !
प्रिय प्रतिभावान मित्र हो तुम, तुम हो जल धारा से पवित्र॥

हम पढते पढते भी भूले, तुम विना पढे ही ज्ञान ग्रन्थ।
सन्मति ! तुम सरस्वती के मुख, तुम मानव के उत्थान ग्रन्थ॥
तुम खेल खिलाया करो हमे, तुम पाठ पढाया करो हमे !
दायें बायें आगे पीछे, तुम राह बताया करो हमे॥

यह दुनिया टेडी मेढी है, हम अक्षर समझ नही पाते।
पुस्तक बढती ही जाती है, हम पढते पढते थक जाते॥
हम शिष्य तुम्हारे बनते है, गुरुवर ! अब हमें पढाओ तुम।
हम करके याद सुना देंगे, प्रभु ! पहला पाठ पढाओ तुम॥

बालक गुरु महावीर बोले, सब णमोकार का जाप करो।
पूजो परमेष्ठी पच सूर्य, अपना जग का अज्ञान हरो॥
अरहतो सिद्धो को प्रणाम, आचार्यो से गुण लो पग छू।
श्रद्धा दो पूज्य साधुओ को, तुम जय पाओगे पग नग छू॥

यह मन्त्र पाप के लिये आग, मगल दाता है णमोकार।
जो शुद्धात्मा गुणवान ध्यान, वे परमेष्ठी ससार सार॥
सर्वज्ञ न जब तक सिद्ध विज्ञ, तब तक शरीर तब तक व्याधा।
अरहत सिद्ध परिपूर्ण शब्द, जिनको न यहाँ तन की बाधा॥

वालक बोले परमेष्ठी का, क्या अर्थ हमें गुरु! समझाओ?
गुरु वीर वालको से वोले, यह पाठ प्रथम समझो आओ।
परमेष्ठी मे हैं पाँच रूप, अरहत सिद्ध आचार्य साधु।
परमेष्ठी उपाध्याय ज्ञानी, ये पच रत्न है आर्य साधु॥

जो अरहंत महान है, देते ज्ञान विदेह।
वे आत्मा में पूर्ण है, वे है सब के गेह॥
वीतराग साधू सरल, जिनका शुद्ध चरित्र।
मित्रो वे आचार्य, जो, देते ज्ञान पवित्र॥
ज्ञान सिखाते साधु को, उपाध्याय वे साधु।
शुद्ध सूर्य वे सृष्टि के, शुद्ध न्याय वे साधु॥
वीत राग जो सन्त श्री, शुद्ध साधु निर्लिप्त।
लिप्त न होना स्वाद में, मत होना विक्षिप्त॥
सिद्ध शुद्ध सर्वज्ञ है, मौन पूर्ण आनन्द।
मित्र! सिद्ध के पगों मे, हम तुम सब सानन्द॥
हरे पराई पीर जो, देश भक्त वह सन्त।
मिलता जीवन ग्रन्थ से, अद्भुत ज्ञान अनन्त॥
तीन तरह के बुद्ध है, मित्रो! समझो सार।
स्वय बुद्ध बोधित अपर, इतर बुद्ध गुरु द्वार॥
मित्रो! इस ससार मे, मिट्टी सोना एक।
वे रत्नो के रूप है, जो मनुष्य है नेक॥
निडर नेक समरस सजग, शान्त सरल चित धीर।
धीर वीर गम्भीर वे, कुएँ कुएँ के नीर॥
उद्यम से उत्थान है, उद्यम करो अशेप।
उद्यम विना न जिन्दगी, उद्यम विना न देश॥
उद्यम करता है पवन, श्रम रत सूर्य महान।
ऊबड़ खाबड गर्त है, श्रम के बिना जहान॥
सत्य सर्वतोमुखी सुख, सुख दाता करतार।
चन्दन वन मगल भवन, सत्य सतत सरकार॥

सगति रखना साधु की, कल्पवृक्ष सत्संग।
अभिमत फल दातार है, सत्सगति के रग ॥

जो कुसंग मे फंस गया, उसे डस गया नाग।
मरा नही जिन्दा नही, दाग दाग पर दाग ॥

क्रोध पाप का भूत है, कभी न करना क्रोध।
सब से ऊँचा धर्म है, अपने मन का शोध ॥

शान्ति सुधा सन्तोष में, असन्तोष में आग।
निकल रहे है बिलो से, असन्तोष के नाग ॥

प्यास न बुझती आग से, आग फूस का बैर।
ब्रह्मचर्य मे अमृत है, पड़े न उलटा पैर ॥

खैर चाहते हो अगर, चाहो सब की खैर।
खैर न उनकी मित्र है, बढा रहे जो वैर ॥

बिना कर्म इच्छा दुःखी, कदम कदम पर शूल।
कर्म ज्ञान इच्छा जहाँ, वहाँ सुखो के फूल ॥

देता था बालक वीर ज्ञान, सब सखा शान्ति से सुनते थे।
आत्मा का ताना बाना था, जीवन की चादर बुनते थे ॥
सुनती थी माँ चुपके चुपके, वे गीत शान्त रस के प्यारे।
खो गये ज्ञान की गीता मे, 'त्रिशला' की आँखो के तारे ॥

रुक गई गिरा माता चौकी, मैं माँ हूँ ! माँ को बोध हुआ।
माता 'त्रिशला' की आँखो मे, सहसा फिर लाल अबोध हुआ ॥
सामने वीर के आ बोली, गुरु जी बच्चो को पढा चुके ?
जितने बालक थे उन सब के, माँ के चरणो मे शीश झुके ॥

मुस्काया वीर, पूर्णिमा की– चाँदनी खिल गई सारे में।
सत्यो की वाणी मुखर हुई, दृग तारो में ध्रुव तारे मे ॥
माँ ! आओ बैठो सुनो शास्त्र, मैं मुनि की कहूँ कहानी माँ !
या ऋषभ देव की कथा कहूँ, अथवा वीरो का पानी माँ !!

माँ बोली ज्ञानी बड़ा बना, तू तीर्थंकर के चिह्न बता ?
श्री ऋषभनाथ श्री अजितनाथ, इनके निशान क्या तुझे पता ?
श्री ऋषभनाथ का चिह्न बैल, श्री अजितनाथ का 'हाथी' माँ !
श्री पार्श्वनाथ का चिह्न, बोल? मै दूँ उत्तर, या साथी माँ ?

माँ बोली तेरे साथी भी, क्या सब के चिह्न बता देगे।
सब नही किन्तु कुछ मेधावी, इतना तो ज्ञान पढ़ा देगे ।।
बोलो 'सुमेरु'! क्या है निशान, श्री पार्श्वनाथ का ? सर्प वीर !
बोलो क्या धर्म नाथ का है ? है 'बज्रदंड' क्या ठीक धीर ?

सुनकर त्रिशलेश वहाँ आये, बोले त्रिशला ! है चमत्कार ।
ये बालक होनहार अपने, इनकी बातों में बड़ा सार ।।
प्रियतम ! मैं इनकी बातो मे, खो गई, काम सब भूल गई ।
बच्चो के मीठे गानो में, मैं भूल गई, मै फूल गई ।।

नही नहायी हूँ अभी, पड़े हुए सब काम ।
काम करेगी सेविका, रानी ! कर आराम ।।

मैं रानी वह सेविका, उसका अपना काम ।
शोभा देता है नही, रानी को आराम ।।

जब तक अपने पैर है, जब तक अपने हाथ ।
हाथ हाथ पर धर रहूँ, यह न ठीक है नाथ ।।

अपनी सेवा आप कर, जो हरते पर पीर ।
वे प्यासों के लिये है, शुद्ध कुएँ के नीर ।।

मुझको सब सुख प्राप्त है, बहुत बड़ा सुख एक ।
भोजन देती साधु को, नाथ हाथ से सेक ।।

नाथ आपके साथ है, कानन में भी राज ।
'कुडलपुर' में प्राप्त है, सुख के सारे साज ।।

त्रिशला नवधा भक्ति थी, सर्व सुखी 'सिद्धार्थ' ।
सुख देते थे सभी को, महावीर परमार्थ ।।

राजा वोले रानी वोली, आओ वच्चो ! कुछ खा पी लो।
गुरुजी! आओ करलो अहार, आओ अव चलकर खा भी लो॥
वच्चे वोले माता जी- हम, गुरु जी को यही खिला देंगे।
गुरुजी को कष्ट नही देंगे, सेवा का अमृत पिला देंगे॥

उठ चला वीर वोला मित्रो! मै माँ को दु.ख नही दूँगा।
नीचे भोजन तैयार जहाँ, आहार वही मै कर लूँगा॥
चल पडे साथ साथी सारे, हँसते गाते आनन्द भरे।
आँगन मे 'त्रिशला' माता ने, वच्चो के आगे थाल धरे॥

फुलके पापड मिष्टान खीर, हलवा पूरी नाना व्यजन।
सन्तरे सेव केले अनार, मीठे रसाल तन मन रजन॥
जल छना हुआ, घर का पीसा, आटा था मधुर पूरियाँ थी।
भोजन मे थे पटरस पदार्थ, दीपो के पास दूरियाँ थी॥

खाना खाते थे सखा सभी, त्रिशलाकुमार सुख पाते थे।
भोजन करते थे शुद्ध वुद्ध, खाने के ढग वताते थे॥
थोडा थोडा धीरे धीरे, खाते थे चवा चवा कर वे।
वत्तीस वार हर गस्से को, खाते थे दवा दवाकर वे॥

सात्विक भोजन सात्विकजीवन, भोजन पवित्र तो मन पवित्र।
मन के हारे है हार मित्र! मन के जीते है जीत मित्र!
जो वेईमानी का खाते, वे खाते खाते भी भूखे।
खोते है जो ईमान नही, वे खुश है, खा रूखे सूखे॥

नाना प्रकार के व्यजन थे, पर सव से मीठा मन फल था।
जीवन के शुभ आदर्शो का, 'त्रिशला' के हाथो का जल था॥
वच्चो से माँ सुख पाती थी, वच्चो को माँ सुख देती थी।
माता वच्चो के हाथो से, मुँह मे गस्सा ले लेती थी॥

प्यारे प्यारे हाथ थे, प्यारे प्यारे वोल।
माता देती थी अमृत, दूध दही मे घोल॥
माता अपने हाथ से, कभी खिलाती ग्रास।
ग्रास स्वयम् खाती कभी, मुँह लेजाकर पास॥

भोजन में आनन्द तब, जब हों साथी चार।
भोजन विष से भी बुरा, अगर न उसमें प्यार॥

खाने पीने को न थी, जिनके पास छदाम।
महावीर के प्रेम से, उनको मिले बदाम॥

बिना खिलाये मित्र को, करो न भोजन मित्र।
ठूस रहा जो आप ही, उसका भ्रष्ट चरित्र॥

स्वादिष्ट स्वच्छ भोजन करके, बालक उछले वालक कूदे।
आनन्द देखकर बच्चों का, स्वर्गाधिप जगपालक कूदे॥
बच्चो मे बच्चे बन खेले, उछले कूदे राजा रानी।
आओ मित्रो! खेले कूदे, यह दुनिया है आनी जानी॥

हम हँसे हँसो तुम भी साथी, हम जिये जियो तुम भी साथी।
हाथी पर बकरी बैठी है, मोटी चीटी पतला हाथी॥
हाथी आया बकरी कूदी, बच्चे हाथी पर बैठ गये।
हाथी बच्चों में बच्चा था, नाटक करता था नये नये॥

हाथी ने अपनी सूंड उठा, ऊँचे तरु से तोड़े अनार।
बारी बारी से हाथी ने, हर बच्चे को फल दिये चार॥
सन्मति ने ले मीठे अनार, भर पेट खिलाये हाथी को।
हाथी ने पहले साथी को, बच्चो ने पहले साथी को॥

आत्मैक्य खिलाता था सब को, हाथी बच्चो मे भेद न था।
कोई न किसी से डरता था, सन्मति के सम्मुख खेद न था॥
फिर कहा वीर ने मित्रो से, हम एक रूप है या अनेक?
उनमें से चतुर प्रेम बोला, सब हैं अनेक कुछ नही एक॥

यह हाथी है पर कान भिन्न, ये सुनते सुनती नाक नही।
आँखो का ज्ञान देखना है, आँखे कह सकती वाक नही॥
तुम शब्द बोलते हो मुँह से, तुम गन्ध नासिका से लेते।
हाथो से तोला करते हो, तरु को हाथो से जल देते॥

पैरो से चलते हो साथी, महसूस खोपडी से करते।
तन है अनेक मन है अनेक, प्राणी अनेक दीपक धरते॥
जीवन के रहते शिव प्राणी, जीवन न रहा तो शव वाकी।
हम देख रहे है दुनिया मे, इसकी झाँकी उसकी झाँकी॥

उसके रूप अनेक है, उसके हाथ अनेक।
रग रग मे विविधता, विविध रग मे एक॥

अलग अलग सब अग है, अलग अलग है धर्म।
हाथ पैर मुँह शीश के, अलग अलग है कर्म॥

जड चेतन जो कुछ जहाँ, सब मे तत्व अनन्त।
भिन्न भिन्न है दृष्टियाँ, जग मे स्वत्व अनन्त॥

भिन्न भिन्न गुण धर्म है, जितने यहाँ पदार्थ।
दृष्टि भेद से अर्थ है, सब में स्वार्थ परार्थ॥

समय समय की वात है, समय समय का धर्म।
भोजन वलवर्धक कभी, करता विष का कर्म॥

मित्रो प्राणी के यहाँ, देखे चित्र अनेक।
पोज एक रहता नही, नही कैमरा एक॥

खीर भगोने में भरी, पिस्ता किसमिस क्षीर।
चम्मच भर भी खीर है, उँगली भर भी खीर॥

मित्रो! पुद्गल एक है, लेकिन धर्म अनेक।
खाद आम मे मधुर रस, खट्टे में अतिरेक॥

जड चेतन मे शक्तियाँ, मित्र अनन्तानन्त।
प्रति पदार्थ मे वहुत गुण, योग भेद अत्यन्त॥

वे छोटे छोटे वालक थे, वाते करते थे वडी वडी।
सिद्धार्थ सुन रहे थे सुख से, माता सुनती थी खडी खडी॥
मुख कमल देख सुख पाती थी, वात्सल्य लुटाती थी ऐसे।
करता हो गुप्तदान धन मन, कोई साधु दानी जैसे॥

नयनो में था निर्वेद सिन्धु, जिह्वा पर सरस्वती माता।
उर मे शिव दाता का निवास, थे दानवीर विद्या दाता॥
उन दयावीर के दर्शन कर, रोना हँसने मे वदल गया।
वह परम पुरातन आदि धर्म, वच्चों में था उपदेश नया॥

माता वोली अब छुट्टी दो, पक्षी नीड़ों में चले गये।
ढल गये सूर्य हो गई शाम, कल पाठ पढाना नये नये॥
फिर कहा पिता ने छोटे गुरु, आओ गोदी में आजाओ।
हो गई रात सो जाओ अब, सोने से पहले कुछ खाओ॥

सुन कर सन्मति बोले बापू! मै नही रात को खाऊँगा।
जिस पथ से हिसा होती है, उस पथ पर कभी न जाऊँगा॥
जो खाते भक्ष्य अभक्ष्य पिता! वे नर पिशाच हत्यारे है।
जो निशि दिन खाते ही रहते, वे जन रोगो के मारे है॥

हर समय ठूसते रहने से, तन मे खत्ता सड जाता है।
वह सुखी शान्त नर निर्विकार, जो कम खाता गम खाता है॥
गन्दा जीवन बासी भोजन, देते प्राणी को नरक यही!
जीवन पवित्र जल से धुलता, मल से धुलता है मैल कही?

उपदेश पिता सुनकर वोले, अच्छा वावा! सो तो जाओ।
माँ की आँखो में नीद देख, सन्मति वोले सोये आओ॥
फिर देखा वाल सखाओ को, जो जाते जाते रुकते थे।
वे जाते जाते रुकते थे, रुक रुक पैरों मे झुकते थे॥

सब सुख आशीर्वाद से।
टलती मृत्यु भाग जाते है—
सव दुख आशीर्वाद से॥

दैहिक दुख नही रहते हैं,
भौतिक दुःख नही रहते।
दैविक शूल फूल वन जाते,
आँसू कभी नही वहते॥

सर्वं सम्पदायें मिलती है,
मुनियो के पग छूने से।
मार्ग वही जिस पर मुनि चलते,
जय मिलती डग छूने से॥

जब भी जो कुछ मिला किसी को,
पाया साधूवाद से।
सब सुख आशीर्वाद से॥

जिसको आशीर्वाद मिल गया,
बुरी घड़ी टल जाती है।
जन्म मरण के दुख न छूते,
कालरात्रि ढल जाती है॥

'मार्कण्डेय' नमन के फल से,
दीर्घ आयु को प्राप्त हुए।
ऋषि महान् विद्वान अनोखे,
इतिहासो मे व्याप्त हुए॥

डरकर रहना, बचकर रहना,
विषधर सदृश प्रमाद से।
सब सुख आशीर्वाद से॥

जो गुरुजन के पग छूते है,
श्रद्धा से विश्वास भरे।
उनको चारो फल मिलते है,
वे जीवन तरु सदा हरे॥

माता और पिता की आज्ञा—
जो सुत पालन करते है।
आशीर्वादो के फल पाते,
वे न काल से मरते है॥

मनवाछित फल मिल जाते हैं,
आशीर्वाद प्रसाद से।
सब सुख आशीर्वाद से॥

जो श्रद्धाहीन दुखी वे है, पीडित वे जिनको है प्रमाद ।
जो पुत्र पिता को सुख देते, उनको रखते इतिहास याद ।।
वे पुत्र राम वन जाते है, वे पुत्र कृष्ण वन जाते है ।
वे कल्प वृक्ष आनन्द रूप, सुख देते है सुख पाते है ।।

लेटे माता के पास वीर, बोले मै सोता, सो माता ।
माता के साथ सपूत वीर, सो गया भजन गाता गाता ।।
सूर्योदय से पहले जागा, उठ बैठा जप मे लीन हुआ ।
माँ निद्रा में सुख की श्री थी, हर आँसू दु खविहीन हुआ ।।

फिर नित्य कर्म से निवृत वीर, शिव शुद्ध बुद्ध अरुणोदय थे ।
माता के नयन खुले, देखा, धरती के धन जप मे लय थे ।।
माता की आँखो मे सुख थे, पूजा मे वीर दिगम्बर थे ।
वाणी रटती थी णमोकार, आभाओं में तीर्थकर थे ।।

'सिद्धार्थ' और 'त्रिशला' दोनो, आनन्द भरे थे निर्निमेष ।
जो सुख था आँखो आँखो मे, वह अकथनीय अद्भुत विशेष ।।
आँखो के पथ से मन मे आ, बालक ने माँ को ज्ञान दिया ।
राजा रानी ने स्नान किया, फिर परमेष्ठी का ध्यान किया ।।

जब नहा ध्यान से निवृत हुए, सन्मति के माथे को चूमा ।
धरती सुत वीर विदेह धन्य, गुण गा गा मगन गगन झूमा ।।
रत्नो मणियो से जडे हुए, कुडल पहनाये माता ने ।
रत्नों की दमक मन्द करदी, क्षण को मुस्काकर दाता नें ।।

बेटे के सिर पर मुकुट धरा, मणियो का और मोतियों का ।
मानो सिर पर था सूर्य प्रकट, मुस्काती हुई ज्योतियो का ।।
वह रूप देख सुर नर मुनिजन, चौंके, यह ज्योति कहाँ की है ।
प्रतिध्वनि गूजी हर ज्योति जहाँ, यह अद्भुत ज्योति वहाँ की है ।।

सभी इन्द्र की सभा मे, देख हजारो सूर्य ।
उछले कूदे गा उठे, बजा बजा कर तूर्य ।।
सुरबालायें मग्न थी, बोली देख प्रकाश ।
ज्योति कहाँ से प्रकट यह, रहे ज्योति का वास ।।

गन्धर्वों में हर्ष था, धन्य हमारा स्वर्ग।
प्रकट स्वर्ग मे आज है, सब स्वर्गों का सर्ग ॥
'तिलोत्तमा' 'रम्भा' 'प्रभा', रूप रागियाँ भूल।
प्रतिबिम्बित उस ज्योति पर, थी पूजा के फूल ॥
कहा इन्द्र से सभी ने, यह कैसा आनन्द।
फूट रहे हैं हृदय से, बात बात में छन्द ॥
कहा इन्द्र ने सुनो सब, क्या है ज्योति अपार।
त्रिशलानन्दन भूमि पर, प्रतिबिम्बित यह सार ॥
आज 'उर्वशी' को लगा, हुई हमारी हार।
कहाँ ज्योति उस रूप की, कहाँ हमारा सार ॥
कहा 'मेनका' ने झुलस, अरी गई तू हार।
मैंने 'विश्वामित्र' को, लूट लिया कर प्यार ॥
सब भूपों का भूप है, मेरा तेरा रूप।
महावीर के तेज पर, घेरा डाले रूप ॥
फँसे न मेरे जाल मे, ऐसा योद्धा कौन।
कहा इन्द्र ने 'मेनका'! अच्छा है रह मौन ॥
जीत सके जो वीर को, ऐसा नही समर्थ।
सब रागों का त्याग है महावीर का अर्थ ॥
जिसमे दर्शन ज्ञान सुख, जिसमे वीर्य अनन्त।
महावीर भगवान है, ऐसे अद्भुत कन्त ॥
इन्द्र सभा मे इन्द्र की, सुनकर उक्ति विचित्र।
बोला 'सगम देव' उठ, क्या है वीर पवित्र ?
मैं देखूँगा वीर को, कितना है बलवान।
उसको मेरी शक्ति का, हो जायगा ज्ञान ॥
मैं 'सगम' जीते मुझे, तब है उसकी बात।
होगा मेरी जाड़ मे, वीर पान का पात ॥
हरा सकोगे वीर को? बोले हँस कर इन्द्र!
करूँ पराजित वीर को, सर्प रूप धर इन्द्र!

जाओ संगम देव मद, हो जायेगा चूर।
तीनों लोकों में नहीं, महावीर सा शूर॥
वह सागर गम्भीर है, वह आकाश महान्।
मानव देवों को मुकुट, महावीर भगवान॥
चला गर्व में ऐठता, सगम देव दुरत।
जहाँ बाल भगवान थे, आया वहाँ तुरत॥
बालवीर के साथ सब, खेल रहे थे मित्र।
तरह तरह के फूल थे, तरह तरह के चित्र॥

उपवन में फूलो की बहार, बच्चो की अद्भुत क्रीडा थी।
वे मुकुल मनोहर सुन्दर कवि, कलियो के मुख पर व्रीडा थी॥
बेले के श्वेत फूल जैसे, तारे धरती पर गाते थे।
मेघों मे आँख मिचौनी थी, चन्दा लुक छिप शर्माते थे॥

केले के वृक्ष रसालो पर, कोयल की कूक मनोहर थी।
परुषा वैदर्भी गौरी ध्वनि, सूरज की तरह तमोहर थी॥
तरु तरु पर फल डालियाँ झुकी, वे क्षमा दया दानी निधि थी।
कुछ देवदार वट वृक्ष बड़े, विटपों मे युग युग की विधि थी॥

चम्पा के फूलों की सुगन्ध, कामनी वृक्ष इत्रो जैसे।
सौरभ के झरनो जैसे थे, बालक सच्चे मित्रो जैसे॥
कलियों की मालाओ से थे, अँगूरों के गुच्छो जैसे।
जैसे बसन्त ऋतु की बहार, वे प्यारे बालक थे ऐसे॥

वे कभी भागते इधर उधर, वे कभी दौडते यहाँ वहाँ।
जाती थी युग युग की निधियाँ, बालक जाते थे जहाँ जहाँ॥
बिजली की तरह उछलते थे, बिजली की तरह कूदते थे।
चुपके से एक दूसरे के, छिप छिपकर नयन मूँदते थे॥

पहचान लिया 'विक्रम' भैया, विक्रम ने आँखों को छोडा।
'कुन्दन' घोडे पर चढता था, 'बुद्धन' को बना बना घोडा॥
वे कभी बनाकर वर्षा में, कागज की नाव चलाते थे।
किलकारी कभी मारते थे, मन मन के दीप जलाते थे॥

धारा में कूद तैरते थे, बबलू को पकड खीचते थे।
पानी में वीर खेलते थे, धरती के खेत सींचते थे॥
फिर एक बहुत ऊँचे तरु पर, चढ गये वीर फल खाने को।
चढ गये चतुर बालक सारे, फल खाने को फल पाने को॥

जल कर सगम देव ने, बदला अपना रूप।
बन कर काला नाग वह, गया जहाँ थे भूप॥
आग उगलने लगा फणि, बार बार फुकार।
लगे खेलने आग से, बाल वीर हुकार॥
सखा वीर के पेड पर, डरे देख कर काल।
कहा वीर ने मत डरो, क्या कर लेगा व्याल॥
विषधर लिपटा पेड पर, गिरे पेड से बाल।
सब से ऊँचे तने पर, चढे वीर विकराल॥
फण फैलाये सर्प था, काप रहे थे बाल।
तरु के ऊँचे तने पर, बहुत शान्त थे लाल॥
डसने को विषधर बढा, चढा तने की ओर।
तम से काले नाग पर, उतरा स्वर्णिम भोर॥
लगे उतरने पेड से, जैसे जैसे वीर।
वैसे वैसे नाग वह, होने लगा अधीर॥
रखा सर्प के शीश पर, बाल वीर ने पैर।
लगा सर्प को मर गया, किससे ठाना वैर॥
खैर न प्राणो की यहाँ, कहाँ फँस गए प्राण।
पग है या कि पहाड है, त्राहि त्राहि हा त्राण!
पैर वीर का शीश पर, दबा भूमि तक सर्प।
पल मे सगम नाग का, चूर हो गया दर्प॥
आया असली रूप मे, सगम देव कठोर।
हाथ जोड माँगी क्षमा, झुका पगो की ओर॥
स्वामी! तुम अति वीर हो, मै हूँ पापी नीच।
नाथ कमल के फूल तुम, मैं हूँ काली कीच॥

दया करो कर दो क्षमा, गर्व हो गया चूर।
ले लो अपनी शरण में, समझ मुझे मजबूर।।

तालियाँ बजा बालक कूदे, जय बोले त्रिशला-नन्दन की।
दुनियाँ के काले विषधर ने, महिमा पहचानी चन्दन की।।
चन्दन सब को देता सुगन्ध, चन्दन को जहर न चढता है।
जो दयावान दाता महान, उनका गौरव नित बढता है।।

बालक ऐसे हँसते जैसे, रश्मियाँ खेलती पाटल पर।
सामने वीर के झुका रहा, विष तजकर सगम शर्मा कर।।
कहती थी आँखें क्षमा करो, कहती थी वाणी क्षमा करो।
गर्वीले का मद उतर गया, कहता था प्रभु जी! पीर हरो।।

निर्लिप्त विदेह निरजन तुम, मैं दोषो का भडार नाथ!
तुम शान्त सनातन धीर सिन्धु, मैं मद्यप पापागार नाथ।
मेरा मन विप से भरा हुआ, तुम अमृत कुड कुडलपुर के।
तुम नादो में हो शान्तिनाद, सारे सुर है प्रभु के सुर के।।

श्री वीर अहिंसा के प्रतीक! तुम हिसा पर वशी के स्वर।
तुम पूज्य देवताओ से हो, देखा न कही तुम जैसा नर।।
अर्चना तुम्हारी करता हूँ, फिर कभी न गर्व करूँगा मैं।
जो बडे वड़े अणु वाण पास, चरणो मे सभी धरूँगा मैं।।

मैं हिसा त्याग अहिसा के— पथ पर चल, दीप जलाऊँगा।
जो ज्योति मिली मानवता से, वह देवो तक ले जाऊँगा।।
धरती के बेटे के वल का, हो गया वोध मै हार गया।
यह पुण्य प्रताप तुम्हारा है, जो विना वार ही मार गया।।

मेरे सव अस्त्र शस्त्र हारे, प्रभु! अद्भुत शक्ति तुम्हारी है।
तुम पचशील परमेष्ठी हो, भक्तो मे भक्ति तुम्हारी है।।
सर्वज्ञ! तुम्हारे सौरभ से, दुर्गन्ध हमारी दूर हुई।
वाणी गूंजी जा अभय अभय, पक्की स्याही सिन्दूर हुई।।

अभय तुम रहो मत सताना किसी को।
सदय तुम रहो धर्म मानो इसी को।।
रुलाना किसी को बहुत दुख देगा।
तुम्हारे किये पुण्य तक छीन लेगा।।
जियो और जीने सभी जीव को दो।
बड़े देव हो तुम अमृत बीज बो दो।।
बुरा है बहुत, मत रुलाना किसी को।
अभय तुम रहो मत सताना किसी को।।

सताये तुम्हे जो उसे यह बताना।
बुरा है बुरा है बुरा है सताना।।
न माने अगर खेल फिर तुम खिलाना।
मिला जहर मे भी अमृत तुम पिलाना।।
न जलना स्वयम् मत जलाना किसी को।
अभय तुम रहो मत सताना किसी को।।

जहर से जहर को रहो मारते तुम।
सदा दुर्बलो से रहो हारते तुम।।
न फुकारना गर्व के फण उठा कर।
नही सार है प्यार के क्षण लुटा कर।।
बढाते रहो मत घटाना किसी को।
अभय तुम रहो मत सताना किसी को।।

प्रभु बालवीर की वाणी से, विष अमृत धार मे बदल गया।
सगम प्रयाग के सगम मे, गोता खा कर था पुण्य नया।।
प्रायश्चित के स्वर भजन बने, प्रभु बालवीर तुम महावीर।
तुम अवनि हिमाद्रि समुद्रवीर। तुम शान्त, कान्त गम्भीर धीर।।

हम स्वर्गाकुल मतवाले है, प्रभु के मन में सब स्वर्गिक सुख।
जिन जग्दालोक जनेश्वर प्रभु, जिन की आँखो मे सब के दुख।।
जिन जननायक वरदायक हो, मन के सागर मथने वाले।
शाश्वत सत्यो के रत्न कोष, तीनो लोको के उजियाले।।

जय जय जिनेन्द्र जय बालवीर! जय जय विषधर पर विजय ध्वजा।
जय जय बालोदय सर्वोदय! सौधर्म इन्द्र ने तुम्हे भजा ॥
मैं तो विष लेकर आया था, चन्दन से लेकर सुरभि चला।
मैं ज्वाला बनकर आया था, पग छू कर बनकर दीप जला ॥

यह सत्सगति की महिमा है, बदबू सुगन्ध में बदल गई।
गर्वान्ध बुद्धि गिरती गिरती, चरणो को छू कर सँभल गई ॥
मैं लोहा था पारस को छू, स्वामी! सोना अनमोल बना।
मैं डडीमार मनस्वी था, काँटे पर पूरी तोल बना ॥

तुम सूर्य लोक से भी ऊपर, तुम स्वर्गलोक से भी आगे।
अस्तित्व तुम्हारा पाते ही, सब टूट गये कच्चे धागे ॥
जो सार शान्तिमय जीवन में, वह सार कहाँ इन्द्रासन पर।
वह जन सब भवनो का मालिक, जिसके घर है जन जन के घर ॥

मिल गया नाथ से अभय दान, अज्ञान निशा का अन्त हुआ।
वह राजाओ का राजा है, जग मे जिसका मन सन्त हुआ ॥
जो भय फैलाता आया था, वह जय जय गाता चला गया।
जो दीप बुझाता आया था, वह दीप जलाता चला गया ॥

न वह इंसान है जो फूल पर अंगार धरता है।
न गुरु द्रोही क्षमा पाता किये का दड भरता है ॥

सताना पाप है भारी
अनय हिंसा भयकर है।
रुलाना मत किसी को भी,
रुलाना नाश का घर है ॥

यहाँ जो कर रहे हिसा,
बहुत दुष्कर्म करते है।
यहाँ पर रोज जीते हैं,
यहाँ पर रोज मरते है ॥

फँसा जो रूप जाले मे यहाँ वह रोज मरता है।
न वह इसान है जो फूल पर अगार धरता है ॥

न छूना फूल से मन को,
न खेलो भावनाओं से।
न उलझो शान्त श्वासो से,
न जूझो कामनाओ से ॥
बहुत प्यासे अधर मे भी,
भयकर आग होती है।
प्रलय तब प्यास बनती है,
कभी जब शान्ति रोती है ॥
न डरता है किसी से वह स्वयम् से जो न डरता है।
न वह इसान है जो फूल पर अगार धरता है ॥
भलाई कर भला होता,
बुराई कर बुरा होता।
रुलाता है किसी को जो,
किसी दिन वह स्वयम् रोता ॥
किसी की देखकर उन्नति,
जलोगे तो मिलेगा क्या ?
खिलेगा ताप से उत्पल,
झुलसता मन खिलेगा क्या ?
न जलता आग से सूरज निरन्तर कर्म करता है।
न वह इसान है जो फूल पर अगार धरता है ॥

'सगम' सन्मति से हार मान, नीची गर्दन कर चला गया।
बालक को छलने आया था, छलने वाला ही छला गया ॥
सगम तम था उजियाला बन, आया स्वर्गाधिप के समक्ष।
स्याही का टीका चाँद बना, सगम सन्मति से था बलक्ष ॥

कर नमन इन्द्र को हाथ जोड, बोला, सन्मति है महावीर।
वे पृथ्वी और हिमालय है, वे है सागर से अधिक धीर ॥
उनके पग का प्रकाश पाकर, मैं पकज जैसा खिला नाथ।
मैं रागी था वैरागी हूँ, सन्मति ने सिर पर धरा हाथ ॥

आश्चर्य नया मैने देखा, मैं लडा और वे नही लड़े ।
जिस जगह् वीर के चरण पडे, जलजात खिल गये वडे वड़े ।।
मैं फुंकारा वे मौन रहे, मैं हुँकारा वे मौन रहे ।
जिसका पानी ज्वाला पी ले, उस गुरु की महिमा कौन कहे ।।

वे रत्नोदधि वे शीलोदधि, वे अपराजित मै मान गया ।
स्वर्गिक सुन्दरियों से सुन्दर, 'त्रिशला' कुमार को जान गया ।।
पहचान गया वह सदा सत्य, जो वज्र देह अद्भुत निधि है ।
क्या कही वही तो नही वीर, प्रभु ! जिनकी शैया जलनिधि है ?

फणि का विष उनको अमृत बना, वे वीर शेषशायी हैं क्या ?
या सभी तपस्याएँ मिलकर, तीर्थंकर वन आयी है क्या ?
मैंने उनमें शिव को देखा, उनमें भगवान विष्णु देखे ।
उनमें ब्रह्मा की रचना थी, उनमें गतिवान जिष्णु देखे ।।

उनका पग सिर पर वज्र लगा, वे लगे फूल जैसे हलके ।
वे और मित्र वालक सारे, शाश्वत मुस्कानों से झलके ।।
मैंने कन्धो पर विठा लिया, उन प्यारे प्यारे बच्चो को ।
प्रभु ! उर की माला वना लिया, मैंने उन सारे वच्चों को ।।

# जन्म जन्म के दीप

मेरे मद का विष पिया, दिया अमृत का दान।
कहीं वीर शिव तो नहीं, करते है विष पान॥
देवासुर सग्राम मे, मैं जीता हर बार।
सगम हारा वीर से, हार गए सब वार॥
सगम आया ज्योति में, पाया अद्भुत ज्ञान।
क्षमा दया के रूप हैं, त्रिशलासुत भगवान॥
वीर सुगन्धित फूल है, वीर शान्त ललकार।
तैर रहा वह सिन्धु में, पीता है मँझदार॥
वीर अमृत का कुड है, वीर चाँद का सार।
वीर सूर्य की ज्योति है, वीर विश्व पतवार॥
हृदय अहिंसा से बना, वसी बुद्धि में शान्ति।
देह ज्ञान का गगन है, गति है सुरभित कान्ति॥

मन सौरभ का तन विजली का, माथा पूनो का चाँद नाथ!
रोमावलियाँ लहरो जैसी, किरणों कलियो से मृदुल हाथ॥
श्वासो से इत्र वरसते है, आँखो मे देखे नन्दन वन।
वक्षस्थल खिले कमल सा है, अधरो से उडता है चन्दन॥
चरणो के चिह्न सिंह से है, साकार सत्य से मधुर वोल।
दर्शन जाडे की धूप सदृश, निष्कर्ष न्याय की पूर्ण तोल॥
मिलता है साक्षात्कार जिसे, उसको सव सुख मिल जाते है।
मिट जाते पिछले पाप सभी, आगे अच्छे दिन आते हैं॥

जिस ओर वीर के पैर वढे, वढ गये करोड़ों पुण्य वहाँ।
खिल गये फूल ही फूल वहाँ, वे वालक खेले जहाँ जहाँ॥
उस एक अनोखे वालक में, झाँकियाँ आपकी सारी थी।
वापिस आने को मन न हुआ, वे वाते इतनी प्यारी थी॥

मुझको तो अपना बना लिया, उस वालक के आकर्षण ने।
पूजा का दीपक जला दिया, दे दिया अमृत सघर्षण ने॥
देवेन्द्र! दया कर कहो भेद, कैसे वालक में इतना वल ?
वह कौन पूज्य वह कौन वीर, जिस पर न चल सका मेरा छल॥

स्वामी! मैं जिससे हारा हूँ, वह कौन वीर वलशाली है ?
वह कौन कि जिसकी दुनिया मे, हमसे भी अधिक उजाली है ?
मेरे मन मे है शान्ति नही, आश्चर्य मुझे अव भी भारी।
वह अप्रमेय मानव अजेय, शक्तियाँ वीर मे है सारी॥

वह कौन जीव वह कौन देव! कव क्या था कहो कथाएँ सव ?
यह भेद वताओ देवराज! ऐसा मानव होना कव कव ?
वह देवो का भी देव कौन ? पिछले जन्मो की कथा कहो ?
कैसे तीर्थंकर हुआ वीर ? कैसे जीवन को मथा कहो ?

मानवता के मान की, कहो कथा सुरनाथ!
कहा इन्द्र ने सुनो सुर, कथा जोड़ कर हाथ॥
त्रिशलानन्दन आज जो, तीर्थंकर भगवान।
वढते वढ़ते वध से, वे है केवल ज्ञान॥
'जम्बू द्वीप विदेह' में, सीता सरिता शेष।
उसके उत्तर पुलिन पर, मधुवन 'पुष्कल' देश॥
पुरी वहाँ 'पुँडरीकिणी' वसे वहाँ थे भील।
व्याधाधिप थे 'पुरुरवा' व्याध प्रकृति थी चील॥
भीलराज की सगिनी, प्रिया 'कालिका' साथ।
स्वामी के हर काम में, रखती अपना हाथ॥
मांसाहारी 'पुरुरवा', करता था मद पान।
मद्यप को रहता नही, भले वुरे का ज्ञान॥

मार्ग भूल उस राज में, आये सागर सेन।
प्रकट दिगम्बर ज्योति थी, विधि की अद्भुत देन॥
मुनिवर को मृग समझकर, भरा जोश में भील।
झपटा ऐसे व्याध वह, जैसे भूखी चील॥
तीर चढाया धनुष पर, प्रत्यचा ली तान।
वाण चलाने को हुआ, मुनिवर को मृग जान॥
तभी कालिका ने धनुष, लिया हाथ से छीन।
वोली, प्रिय! वनसूर्य ये, इनमे 'दद्दे' तीन॥
दया दान के दीप ये, दमन दीप मुनि नाथ।
बाण छोड पकडो चरण, जोडो जाकर हाथ॥
बाण फेंक कर 'पुरुरवा', गिरा पगो मे दौड।
पूर्व बध से आ गया, नीर दृगो मे दौड॥
पैर पकड़ कर भील ने, कहा, क्षमा मुनिराज!
चल जाता प्रभु! भूल से, तीर आप पर आज॥
सब पापो से बडा है, साधू का अपमान।
प्रिया 'कालिका' ने दिया, नाथ! व्याध को दान॥
जग के गुरु मुनि आप है, मै हूँ पापी व्याध।
बँधा प्रकृति के धर्म से, क्षमा करो अपराध॥
भूले से भी साधु का, तिरस्कार है पाप।
मेरी भारी भूल को, क्षमा करे मुनि आप॥
मुनिवर 'सागरसेन' ने, कहा उठा कर हाथ।
कर्म बध रहते सदा, हर प्राणी के साथ॥
वोध वताने से हुआ, जागे शुभ सस्कार।
जग मे जान अजान जो, उनका क्या ससार?
तेरी तामस देह में, उज्ज्वल आत्मा वास।
पूर्व जन्म के पुण्य है, निश्चित तेरे पास॥
आत्मा का उत्थान कर, तज हिसा की राह।
जिसमे अपना तेज है, उसको क्या परवाह॥

व्रत से तप से ज्ञान से, करले वह पद प्राप्त।
नश्वर सुख से मोह तज, पाते जो पद आप्त ॥
व्रत से व्यसन समाप्त हो, आते है सद्भाव।
भवसागर से तारती, सद्कर्मो की नाव ॥
तीन मूढ़ता अष्ट मद, अनायतन शकादि।
व्यसन सात भय सात अति, अष्ट दोष पंचादि ॥
व्यसन छोड़ मत मास खा, मत शराब पी भील!
व्याध कर्म चोरी जुआ, त्याग रूप की चील ॥
चढ चल व्रत सोपान पर, व्रत है तप की राह।
मरने वाला क्यो करे, व्यर्थ व्यथा की चाह ॥
ले जाते जो नरक में, उनका पीछा छोड।
व्यसन सात दुश्मन बड़े, व्यसनो से मुँह मोड़ ॥
सदा यहाँ रहना नही, झूठे बधन तोड।
चोरी मास शराब तज, हिसा से मुँह मोड़ ॥
तजते पच विकार जो, करते नही शिकार।
मानवता के मार्ग है, उनके पूज्य विचार ॥

जो तीर चलाने वाला था, वह विधा ज्ञान की वाणी से।
व्याधाधिप का मिट गया मोह, आत्मैक्य हुआ हर प्राणी से ॥
धर दिया धनुष, त्यागा तुणीर, शस्त्रो को शास्त्रो मे वदला।
जिसके मुँह को था रक्त लगा, वह भक्त वना, वन दीप जला ॥
चन्दन के वन में कीकर भी, चन्दन का तरु वन जाता है।
सत्संग अगर मिल जाता है, लोहा सोना कहलाता है ॥
ज्वाला पानी मे वदल गई, पतझड वसन्त मे वदल गया।
मिल गये दिगम्बर दिव्य देव, 'पुरुरवा' फिसलकर सँभल गया ॥
'यमपाल' रोज नर हत्या कर, वोटी खा शोणित पीता था।
चण्डाल कर्म करने वाला, हत्याएँ करके जीता था ॥
उपदेश एक मुनि से पाया, व्रत लिया हो गया देव वही।
सत्संगामृत का करो पान, मानव जीवन का सार यही ॥

ऐसे ही 'खदिरसार' हिसक, मासाहारी व्यसनी पापी।
बस एक काक का मास त्याग, हो गया एक दिन सुरव्यापी॥
अच्छे कर्मो के करने से, पापी पुण्यात्मा होता है।
जागो जागो मत पल खोओ, जो सोता है वह खोता है॥

'पुरुरवा' जाग कर देव बना, वनवासी भील यहाँ आया।
सगम! उसने तप व्रत करके, सुरपुर मे ऊँचा पद पाया॥
सागर पर्यन्त भोग कर फल, फिर मृत्युलोक मे चला गया।
पुण्यो की पूँजी बीत गई, जन्मा जग मे वह जीव नया॥

उत्थान पतन की गतिविधि मे, कोई आता कोई जाता।
आता कोई रोता रोता, जाता कोई गाता गाता॥
कोई जन ऐसा आता है, जो भूत भविष्यत् वर्तमान।
था एक बार पुरुरवा वही, जो वीर आज है वर्द्धमान॥

कर्म बन्ध से जीवन की,
प्रगति अगति है मित्र!
जैसे जैसे रग है,
वैसे वैसे चित्र!!

फिर 'भरत' चक्रवर्ती का सुत, पुरुरवा मरीचि कुमार हुआ।
नाती भगवान ऋपभ जी का, वह जीव दूसरी बार हुआ॥
मुख से अनन्तमति ने सुत को, बाबा का दर्शन समझाया।
चरणो मे पूज्य पितामह के, दीक्षा लेकर पोता आया॥

कुछ कदम बढाते है आगे, पर फिर पीछे हट जाते है।
जब कष्ट सहन करने पडते, अच्छे अच्छे छट जाते है॥
इस मुक्ति यज्ञ मे बडे बडे, बलवान यहाँ रोते देखे।
जब शख बजा तो बडे बडे, मुँह ढक ढककर सोते देखे॥

अब जो टोपी को ओढे है, तब सिर पर टोपी रख न सके।
जो स्वतन्त्रता को भोग रहे, वे आँखो का जल चख न सके॥
कुछ क्षमा माँगने वाले भी, अब देशभक्त कहलाते है।
जो काम के नर करते थे, वे अब भी ठोकर खाते है॥

पर कर्म बंध के अकुश से, कोई न अधिक बच पाता है।
जो दु.खो से अपराजित है, वह आगे बढता जाता है।।
दीक्षा तो ली पर कष्टो से, बदला मरीचि कपडे पहने।
'परिव्राजक' मत के नेता ने, पहने भौतिक सुख के गहने।।

फूलो में रहने वालो को, बीजो के तप का पता नही।
यदि बीज न मिट्टी में मिलते, खिलते गुलाब के फूल कही !
साधू कहलाना सरल मित्र! साधू बनना है कठिन मित्र!
ज्वाला में तिल तिल तप तप कर, देते है सुन्दर फूल इत्र।।

तप तब मरीचि से हो न सका, पूजा बन गया कलाओ मे।
नृत्यो आनन्दो मे खोया, सुख समझा रस बलाओ मे।।
बाबा के पथ से भटक गया, भौतिक रगो मे अटक गया।
फैलाने लगा जमाने मे, अपने रस का सिद्धान्त नया।।

तरह तरह के लोग है,
तरह तरह के भाव।
छिछले पानी मे कभी,
नही तैरती नाव।।

अपने अपने देव है,
अपने अपने रंग।
तरह तरह के सघ है,
तरह तरह के ढंग।।

अपने अपने धर्म है,
अपने अपने कर्म।
धर्म धर्म सब गा रहे,
नही जानते मर्म।।

पूजा पाने के लिये,
धारण करते वेश।
साधू स्वादक हो गये,
मित्र! बड़ा यह क्लेश।।

रस मे मद मे नृत्य में,
लगा रहे जो भोग।
कलियुग मे साधू बने,
ऐसे स्वादक लोग॥

ऐसे असाधुओ ने मित्रो! उजियाली को वदनाम किया।
धारण कर वेश साधुओ का, जलते ओठो का जाम पिया॥
माया 'मरीचि' की मधुर मधुर, कुछ काल वाद अभिशाप बनी।
मरने जीने के बन्ध लगे, भगुर सुख की गति पाप बनी॥

'परिव्राजक' होकर 'भरत' पुत्र, अभिमान भरा मद में डोला।
गेरुवे वस्त्र मे सज सज कर, मै वडा पूज्य, सबसे बोला॥
प्यासा मन मरुमरीचिका मे, रेते को जल कहता भटका।
बोला यह धरती भोग्या है, बेधडक जियो कैसा खटका?

वह स्वयम् पतित हो, औरो को— उपदेश पतन का देता था।
परिव्राजक मत का मतवाला, बन्धन पर बन्धन लेता था॥
जैसी पूजा वैसे फल ले, जग से 'मरीचि' का जीव गया।
जब तक कर्मों के बन्धन है, मिलता रहता है जन्म नया॥

कुछ पूर्व तपस्या के फल से, पाँचवे स्वर्ग मे देव वना।
फिर कभी मनुज फिर कभी देव, छलनी छलनी मे जीव छना॥
सुख भोगे जव तक पुण्य रहे, जव पुण्य घटे तो दुख भरे।
उत्थान पतन की गतियो मे, वन्धन से अगनित बार मरे॥

मिथ्यात्व उदय से पतन हुआ, मिथ्या का क्या अस्तित्व भला?
वह लक्ष्यहीन भटका करता, जो बिना बिचारे हुए चला॥
उनकी दूरी बढती जाती, चलते है राह अधूरी जो।
दूरी न हाथ आती उनके, नापा करते है दूरी जो॥

भटके जन्मो की कथा व्यथा, देवो से कही देवपति ने।
धीरे धीरे उत्थान किया, पिछले जन्मो मे सन्मति ने॥
फिर पुण्योदय से वही जीव, पर्यायो मे होता होता।
हो गया 'अर्धचक्री त्रिपृष्ठ', शुभ कर्मो को वोता वोता॥

मिला उसे उस जन्म में,
तीन खड का राज।
पुण्योदय से जीव को,
मिलते है सुख साज ।।

नृप त्रिपृष्ठ अति शौर्य से,
जय पर जय कर प्राप्त ।
रूपसियो में रास मे,
नृपति हो गया व्याप्त ।।

प्रतिनारायण उस समय,
'अश्वग्रीव' था एक ।
उस पर जय पा पुष्ट ने,
जीते राज अनेक ।।

प्रतिनारायण ने किया,
घोर चक्र से वार।
चक्र छीन उसका उसे,
डाला क्षण मे मार ।।

जब त्रिपृष्ठ अधिपति हुआ,
बढ़ा मोह मद काम ।
प्यास बढी बढ़ती गई,
क्या प्रात: क्या शाम ?

भोगो में अधिपति मस्त हुआ, खो गया रूप के प्यालो मे ।
मधुबालाओ ने चषक दिये, बल उलझा स्वर्णिम बालो मे ।।
दिन बीत गये राते बीती, हाँ, हाँ, ना, ना, की बातों मे ।
हर रग पिलाता था यौवन, राजा को प्यासी रातो मे ।।

कोई खजन से नयनो से, चचल को चित कर देती थी ।
कोई हिरनी सी गतिवाली, मन का प्याला भर देती थी ।।
कोई कहती आओ आओ, कोई कहती जाओ जाओ ।
आओ जाओ की क्रीडा मे, कहता त्रिपृष्ठ गाओ गाओ ।।

वैभव में प्रभुता मे 'त्रिपृष्ट', मनचाहे स्वादो मे खोया।
जो वैभव पाकर तरु न बना, वह आज नही तो कल रोया॥
नृप संचित पुण्य लुटाता था, मीठी रगीन निशाओ मे।
रूपसियाँ बाते करती थी, राजा की सभी दिशाओं मे॥

नृप की आँखों मे आँखे थी, शासन था स्वर्णिम रातो में।
पुण्यो के घट पनघट सूखे, रस की अलबेली बातो मे॥
जो नेत्र शौर्य से रक्तिम थे, वे रूप तृषा से लाल हुए।
जो तलवारो से कटे नही, वे फूलो से बेहाल हुए॥

भौरा फूलो मे उलझ गया, फँस गया रूप के जालो मे।
भौरा ही क्या मतवाले है, दुनियावाले रस प्यालो मे॥
पीते पीते थक गये अधर, तृष्णा त्रिपृष्ट की बुझी नही।
आकर्षण है सुन्दरता मे, वन्दी है मन के धनी यही॥

पुण्योदय जब तक बने रहे, छूटे न प्रणय के राजभोग।
पुण्यो की बेला बीत गई, बीता त्रिपृष्ट का राजयोग॥
बीती न लालसा मृत्यु हुई, परिग्रह का यह परिणाम हुआ।
सातवे नरक मे जीव गया, काला तम गोरा चाम हुआ॥

गया दुख के सिन्धु मे,
हुआ सुखों का अन्त।
जरा मृत्यु की बाढ़ मे,
सजनी रही न कन्त॥

नरक 'महातमप्रभा' मे,
गिरा 'त्रिपृष्ट' अधीर।
सुख जितना भोगा न था,
पाई जितनी पीर॥

जिसके जैसे कर्म है,
उसके वैसे भोग।
दुख भोगने के लिये,
आते जाते लोग॥

नरक स्वर्ग है भूमि पर,
दुखी सुखी है लोग।
अन्धा कोढी एक है,
प्राप्त एक को भोग ॥
उस त्रिपृष्ट के जीव ने,
भोगे दुख अनेक।
बार बार मर मर हुआ,
जीव सिंह फिर एक ॥

वह जीव सिंह गिरि पर जन्मा, जीवों का वध करने वाला।
पापों को सचित करता था, वह शेर प्राण हरने वाला ॥
फल मिला मर गया शर खाकर, जैसी करनी वैसी भरनी।
सागर पर्यन्त नरक में रह, हँसते रोते भोगी करनी ॥

फिर निकल नरक से वही जीव, पर्वत पर भारी शेर हुआ।
हिमवान शैल की चोटी पर, वन का अधिकारी शेर हुआ ॥
वह सिंहराज जिसके भय से, हाथी तक काँपा करते थे।
जव शेर दहाडा करता था, वन वन में वनचर डरते थे ॥

हाथी वन छोड छोड भागे, रीछो ने जंगल छोड दिये।
तरु तक मृगेन्द्र से डरते थे, योद्धाओ के मुँह मोड़ दिये ॥
भैंसो को चीर फाड़ डाला, खा डाले अजगर विष वाले।
वलवान शेर ने जंगल की, आँखों के लाल चबा डाले ॥

वह क्रूर महाभीषण कराल, यमराज सदृश मृगराजसिंह।
वह वज्र दाढ खूँखार खोल, मृग खाता था तज नाज सिंह ॥
देवो! मृगेन्द्र की गर्जन सुन, वीरों के अस्त्र शस्त्र गिरते।
वनराज दहाड़ा इधर, उधर, हिंसक पशु यत्र तत्र गिरते ॥

आतंक सिंह का भारी था, हत्याओं से धरती डोली।
हड्डियाँ निरीह विचारों की, पृथ्वी की वाणी बन बोली ॥
पृथ्वी दो मुनियो के स्वर में, अपनी बोली को घोल गई।
हो साधु दिगम्बर 'अमितकीर्ति', हो भूमि 'अमितप्रभ' बोल गई ॥

मुनि शान्त दिगम्वर तपोमूर्ति, तेजस्वी उस वन में आये।
सौभाग्य पुराने पुण्यो का, सिद्धेश्वर के दर्शन पाये॥
वनदेव युगल श्री शुद्ध बुद्ध, निर्भय मृगेन्द्र से आ वोले।
जिसको अपना कुछ बोध न था, उसके उर के कपाट खोले॥

'अजित अमित' गुण मुखर हो,
बोले सुन मृगराज!
तू भावी भगवान है,
पाप न कर तू आज॥
जन्म जन्म के बन्ध से,
भोग भोग कर भोग।
शुद्ध सिद्ध सम्यक सफल,
होगा तेरा योग॥
सुन मृगराज! भविष्यफल,
'कमलाधर' का घोष।
भावी तीर्थंकर! तजो,
रक्तपान के दोष॥
हम से कहा जिनेन्द्र ने,
तुम भावी भगवान।
तीर्थंकर चौबीसवे,
हो मृगराज महान्॥
बैठ शिला पर 'अमित' मुनि,
देते थे उपदेश।
वाणी सुन मृगराज मे,
हिंसा रही न शेष॥
नभवाणी भगवान की,
मुनिवर का सत्संग।
सारा क्रोध मृगेन्द्र का,
हुआ निमिष मे भग॥

रंग सत्य का अमिट है,
चढा सत्य का रग।
मुनियों का मन वन गया,
मुनियो का सत्सग॥
महाभयंकर सिह था,
वदला सुन उपदेश।
भूखा व्रत करने लगा,
प्रायश्चित्त था शेष॥
सिह भला इतना वना,
लगे काटने कीट।
पत्थर पानी बन गया,
कोई मारो ईंट॥

हिंसक पशुओ ने उछल कूद, नोचा मृगेन्द्र को दाँतों से।
सज्जन शूलो पर चलते है, काँटे न मानते बातो से॥
सूधापन भी है दोष वड़ा, टेढे चन्दा को ग्रहण कहाँ ?
जो अधिक भले वन जाते है, उनको मिलते है दु:ख यहाँ॥

जो दु:ख नही सह सकते है, वे बड़े नही वन पाते है।
जो सुख देते दुख लेते है, वे प्राणी पूजे जाते है॥
भगवान 'कृष्ण' से 'कुन्ती' ने, दु:खों का था वरदान लिया।
उसका जीना क्या जीना है, जो अग्निपान कर नही जिया॥

आसन पर बैठ अहिसा के, तप व्रत मृगेन्द्र ने वहुत किये।
तन सूख गया तज दिये प्राण, पर आमिष खाकर नही जिये॥
तप के प्रसाद व्रत के फल से, मृगराज जीव सुरराज हुए।
सौधर्म स्वर्ग में 'सिहकेतु', धरती माता के ताज हुए॥

'हरिध्वज' ने स्वर्गिक भोगो में, व्रत कर जिनेन्द्र के गुण गाये।
हम सव देवों के साथ साथ, नारायण के दर्शन पाये॥
तीर्थंकर की पूजा करके, हम सभी इन्द्र सज सज आते।
हाथी घोड़े रथ यानो मे, जाते पूजा कर सुख पाते॥

सुर होकर हंसारूढ गूढ, फल फूल चढा पूजा करते।
जो जीव वीर तीर्थंकर है, गुरु के चरणों मे पग धरते ॥
पूजा करता करता प्राणी, दुनिया से पुजने लगता है।
भगवान स्वयम् बन जाता है, जब ऊपर उठने लगता है ॥

यह दुनिया है इस दुनिया मे, गड्ढे ही गड्ढे मिलते हैं।
मिलते है काँटे पग पग पर, पाटल काँटो में खिलते हैं ॥
जब जीव सुखो में होता है, पाता पाता खो जाता है।
जो खो जाता है खेलों मे, वह जीवित मृत हो जाता है ॥

उदय अस्त का क्रम यहाँ,
सुबह शाम है रोज।
मन के राजा मौज ले,
किसे रहा तू खोज?
खोज रहा हूँ मैं उसे,
जो है मेरा मित्र।
मेरा मित्र चरित्र है,
जीवन रहे पवित्र ॥

कभी मित्र! उत्थान है,
पतन कभी है मित्र!
तरह तरह के रूप है,
एक व्यक्ति का चित्र ॥
'सिंहकेतु' का जीव भी,
मित्र! स्वर्ग सुख भोग।
देव देह तज नर हुआ,
बदला जीवन योग ॥
'सिंहकेतु' ने शान्ति से,
छोडा देव शरीर।
मृत्यु नीद सी आ गई,
हुई न बिल्कुल पीर ॥

गिर पड़ता है डाल से,
जैसे सूखा फूल।
फूल जन्म का रूप है,
मृत्यु फूल की धूल॥

मोह नही ममता नही,
नही राग या द्वेष।
उसको होता है नही,
जन्म मरण का क्लेश॥

जन्म मरण निश्चित यहाँ,
जन्म मरण दिन रात।
लिखते गाते हैं सभी,
जन्म मरण की बात॥

हो गई मृत्यु व्याकुल न हुआ, 'हरिध्वज' ने जीर्ण वस्त्र त्यागे।
कुछ रोते रोते मर जाते, कुछ मरते मरते भी जागे॥
वे हँसते और हँसाते है, जो ज्ञान ध्यान से जीते है।
वे शंकर पूजे जाते है, जो परहित में विष पीते है॥

फिर 'सिहकेतु' तज देव देह, 'कनकोज्ज्वल' राजकुमार हुआ।
विजयार्ध शैल पर कनकनगर, दीपक से जहाँ दुलार हुआ॥
विद्याधर राजा 'कनक पुख्य', रानी थी सुमति 'कनक माला'।
'कनकाभ' 'कनक माला' के घर, जन्मा वह जीव दयावाला॥

धार्मिक भावों से भरा हुआ, सब जीवों को सुख देता था।
माता की सेवा करता था, आसीस सभी से लेता था॥
सम्यक्त्व भाव से जनता में, उसको दुलार के दीप मिले।
उसके श्वासो से पग पग पर, समता के सुन्दर फूल खिले॥

वह होनहार बढता बढता, सब का प्यारा गुणवान हुआ।
मुनि दीक्षा लेकर पिता गये, 'कनकोज्ज्वल' नृपति महान हुए॥
शासन था सत्य अहिसा का, कनकोज्ज्वल सेवा करते थे।
जब प्यारी प्रजा जीम चुकती, तब कही पेट वे भरते थे॥

धर्मात्मा राजा एक रोज, बैठे अशोक के पेड़ तले ॥
तरु तले एक मुनिवर आये, मानो हों लाखों दीप जले ॥
राजा मुनीन्द्र को कर प्रणाम, बोला, दर्शन कर धन्य हुआ ।
मुनि बोले कर्मों का क्षय हो, 'कनकोज्ज्वल' भक्त अनन्य हुआ ॥

मुनि ने नृप को उपदेश दिया, जीवन पाया है धर्म करो ।
क्षय करो कर्म, बढ़ते जाओ, तम में प्रकाश के दीप धरो ॥
कुछ साथ नहीं जाता जग से, बस साथ धर्म ही जाता है ।
जो अटल धर्म का सूरज है, वह मोक्ष एक दिन पाता है ॥

कनकोज्ज्वल मुनि वचन से,
बदल गये तत्काल ।
दीक्षा ले वन में गये,
छोड़ जगत जंजाल ॥

राज त्याग तप को गये,
राजा तज कर भोग ।
भोग उसे भाते नहीं,
जिसे भागये योग ॥

कुम्भकार के चक्र सा,
डोल रहा संसार ।
वह क्यों नाचे चक्र पर,
जिसे मोक्ष से प्यार ॥

जहाँ मित्र भी मित्र से,
करते रहते घात ।
मित्र वहाँ से मोह तज,
चलो मार कर लात ॥

यह जग टूला रेत का,
काल खा रहा खेत ।
बाल श्वेत सिर के हुए,
चेत भ्रमर तू चेत !

मित्र रेत पर चिन रहा,
जीवन की दीवार।
वह जाती हैं बाढ़ में,
बड़ी बड़ी मीनार॥

पता नहीं किस क्षण विदा,
कब ले जाये काल।
क्षणभंगुर जीवन यहाँ,
बड़े बड़े जंजाल॥

सारी दुनिया स्वार्थ की,
मतलब विना न मित्र।
ऊपर उज्ज्वल देह है,
अन्दर स्याह चरित्र॥

परमात्मा के रूप वे,
जिनका शुद्ध चरित्र।
मैला होता है नहीं,
बहता नीर पवित्र॥

जन्म जन्म के पुण्य हैं,
महावीर भगवान।
कनकोज्ज्वल के देह में,
हुआ जीव को ज्ञान॥

शान्त अहिंसा के सुमन,
दिव्य रूप श्रद्धेय।
कनक देह तज जो चले,
वे अब वीर अजेय॥

पुनः देव पद प्राप्त कर,
प्राप्त किया आनन्द।
'कनकोज्ज्वल' का जीव ही,
सुर था देवानन्द॥

पुण्यों का मधुर प्रसाद मिला, 'कापिष्ट स्वर्ग' में जन्म लिया।
जैसा बोया था वैसा फल, कर्मों की गति ने उसे दिया॥
सुन्दर सुर देवानन्द सौम्य, सब देवों को सुख देते थे।
वे सब की पूजा करते थे, वे सबकी पूजा लेते थे॥

मानस मन्दिर में वीतराग, आँखो में वे जिनेन्द्र स्वामी।
मिथ्यात्व मलिनता से बचकर, रस लेते थे वे निष्कामी॥
जैसे कीचड़ मे कमल मित्र, वैसे वे रागी वैरागी।
वे हैं विदेह जो रंगों में, रहते हैं रंगो के त्यागी॥

जब तक रहता है राग भाव, कर्मों का भोग नही मिटता।
गर्भो के दु:ख भोगता है, प्राणी निज प्राणों से पिटता॥
जड़ में जंगम में स्थावर मे, आता जाता है जीव मित्र।
प्रत्यक्ष देखते जीवों के, हम नरक स्वर्ग में यहाँ चित्र॥

निष्काम कर्म तप का पथ है, जग के बन्धन कट जाते हैं।
जो जग में जग से दूर दूर, वे हँसते हँसते गाते हैं॥
जब तक है पुण्यों का प्रसाद, रहता है बना प्रताप मित्र!
जब पुण्य क्षीण हो जाते हैं, जीवन का रहता नही इत्र॥

वे ऊँचे उठते जाते हैं, वे पुण्य: बढ़ाते हैं अपने।
स्वप्नों के भंगुर भोग छोड, वे पाप घटाते हैं अपने॥
चोला तज देवानन्द देव, मानव के चोले में आये।
वैक्रियिक देह को त्याग दिया, नर तन पाया नव निधि लाये॥

वह है मनुष्य जो नर तन पा, जीता है जीने देता है।
ऋषियों की मुद्रा धारण कर, निर्वाण प्राप्त कर लेता है॥
जीवन के सागर को मथ मथ, रत्नों को बाहर लाता है।
जो जीवन मे तप करता है, वह कल्पवृक्ष बन जाता है॥

मित्र! 'अवंती' देश मे,
जन्मा देवानन्द।
जय जय जय शिप्रा नदी,
शाश्वत जिसके छन्द॥

'वज्रसेन' नृप के यहाँ,
पुत्र हुआ 'हरिषेण'।
सुखी 'सुशीला' माँ हुई,
मन मे स्वर्णिम फेण ॥

पिता सुखी सत्पुत्र से,
जननी सुखी महान।
याचक दाता वन गये,
वरसा इतना दान ॥

किसी किसी के जन्म से,
मिलते है वे भोग।
भोग न पाते भोग जो,
वड़े वड़े कर योग ॥

कहो मित्र! सत्पुत्र से,
सुखी न होता कौन?
जन्मा जहाँ कपूत हो,
वहाँ न रोता कौन?

मित्रो! जिसके पुत्र का,
यश गाये संसार।
राजसुखो की है नही,
उसको कुछ दरकार ॥

धन्य धन्य वह पुत्र जो,
सुखी करे परिवार।
मित्रों 'श्रवण कुमार' से,
होते नही हजार ॥

देवो! 'त्रिशला' धन्य है,
जन्मा वीर सपूत।
शुद्ध जीव 'हरिषेण' का,
दिव्य ज्योति सम्भूत ॥

निर्विकार 'हरिषेण' को,
मिला प्रजा का प्यार।
युवा हुए राजा हुए,
बनी श्रेष्ठ सरकार॥

शान्त धीर 'गम्भीर' ने,
किया त्याग से राज।
तब ऐसा शासक न था,
जैसा शासक आज॥

राजा भोगी था नहीं,
योगी था हर श्वास।
पी पी कर बुझती नहीं,
अब राजा की प्यास॥

राज अहिंसा से किया,
पचशील व्रत धार।
देवो! नृप 'हरिषेण' ने,
लिया दिया सत्कार॥

धूप दीप नैवेद्य फल,
गन्ध पुष्प जय गीत।
पूजा में 'हरिषेण' थे,
अपने मन को जीत॥

जीत नृपति 'हरिषेण' की,
जन मन गण की जीत।
गीत मित्र के बन गये,
नीति निपुण के गीत॥

बहुत काल तक राज कर,
पा जन जन का प्यार।
मुनि से दीक्षा ग्रहणकर,
छोड़ दिया घरवार॥

वहुत दिनों तक तप किया,
लगा धर्म में ध्यान।
कर्म क्षीण होते गये,
'श्रीप्रतिष्ट' थे ज्ञान॥

'सुप्रतिष्ट' गुरु ने दिया,
पुद्गल को उपदेश।
पाप पंक में धस गये,
पुण्य कमल थे शेष॥

आई वेला मृत्यु की,
चिन्ता रहित यतीश।
चिर निद्रा में सो गये,
दीप बनाकर शीश॥

क्या चिन्ता है चिता की,
मरना निश्चित मित्र!
किन्तु न बीतेगा कभी,
इन गीतों का इत्र॥

वना रहा हूँ भक्ति से,
तप के जप के चित्र।
लगता है उस जन्म में,
मै था उनका मित्र॥

तप से उज्ज्वल 'हरिषेण' हुए, पार्थिव शरीर को त्याग दिया।
फिर शोभा हुए हमारी वे, इस शुक्र स्वर्ग में जन्म लिया॥
वे थे 'प्रीतिकर' देव यहाँ, वे थे स्वर्गो के अलंकार।
'सगम'! तब तुम से कही अधिक, प्रीतिकर मे था वल अपार॥

तप से देवत्व प्राप्त होता, तुमको भी तप से स्वर्ग मिला।
वह नरक भोगता है जग मे, जिसके न हृदय का कमल खिला॥
तुमको दु.खो की याद न है, तुम पीर पराई क्या जानो?
देते है जिनको दु ख सुखी, उनकी पीड़ा को पहचानो॥

यह स्वर्ग यहाँ सारे सुख है, दुनिया मे दुःखो का रेला।
देवो को चिन्ता नही तनिक, दुनिया मे गुड्डो का मेला॥
भोजन की चिन्ता यहाँ नही, दुनिया में हर घर मे अभाव।
हमको फल देते कल्प वृक्ष, राशन न वहाँ मिल रहा पाव॥

घी दूध नही चावल न रहे, पी गये तेल रेती के घट।
प्यासे पनघट प्यासी नदियाँ, मरघट मे नाच रहे है नट॥
कोई धर्मात्मा पुण्य वढा, धरती को स्वर्ग वनाता है।
वह स्वर्ग भूमि पर लाया था, जो 'त्रिशला' सुत कहलाता है॥

'प्रीतिकर' देव स्वर्ग मे भी, सम्यग्ज्ञानी से रहते थे।
देवो की महासभाओ मे, सम्यक्त्व ऋचाएँ कहते थे॥
सम्यग्दर्शन के स्वामी थे, सम भाव सिखाते थे सुख से।
देवासुर युद्ध रोकते थे, वे दीप दिखाते थे सुख से॥

रत्नात्मा परमात्मा स्वरूप, थे जीव 'पद्मलेश्या' वाले।
'प्रीतिकर' देव दयानिधि थे, थे मर्त्यलोक के उजियाले॥
सोलह सागर तक यहाँ रहे, फिर आया उनका मरणकाल।
चल दिये समाधि लगाकर वे, तज दिये स्वर्ग के मोह जाल॥

जब तक सुख से राग है,
तब तक मोक्ष न मित्र!
कर्म शत्रु वाँधे खडे,
बन्दी जीव अमित्र॥

सयम से सतोष से,
कर विषयो का त्याग।
बच नागो के नगर से,
भाग यहाँ से भाग!

पड़ी रूप की वेडियाँ,
कैसे भागे यार!
जीतो जीतो काम को,
चचल मन को मार॥

सदा न यौवन रूप पर,
रौनक है दिन चार।
जिसे कामिनी कह रहे,
वह नंगी तलवार॥

मत अटको उलझो नही,
जग गुलाब की डाल।
डाली में काँटे भरे,
फूल फूल में व्याल॥

प्रीतिकर की तरह तुम,
छोड़ो सब जंजाल।
वे मेरी बाधा हरे,
जो 'त्रिशला' के लाल॥

जो जिनेन्द्र की भक्ति कर,
मित्र बने सुख भोग।
मेरे मन के गीत जो,
वे काटे सब रोग॥

प्रीतिकर 'प्रियमित्र' फिर,
हुए 'धनजय' पूत।
'प्रभावती' की कोख से,
जन्मा सजग सपूत॥

मित्र 'क्षेमद्युति' नगर के,
महाराज 'रणधीर'।
तब उनके घर लाल था,
अब जो बालक वीर॥

मित्रो! पूर्व विदेह मे,
'कच्छ' समुन्नत देश।
शोभा धर्म समान सुख,
सम्यक तन मन वेश॥

ललित कलाओं की जहाँ,
कृतियाँ थी हर ओर।
पूर्व जीव से वीर के,
वहाँ हुआ था भोर॥

श्रम के हाथो कल्पतरु,
पग पग पर थे मित्र।
श्रम की महिमा स्वर्ग से,
ऊँची और पवित्र॥

कवियो को माँगे बिना,
मिलता था धन मान।
सेव्य विज्ञ विद्वान थे,
सेवक थे विद्वान॥

सेवा से सम्मान से,
राजभक्त थे लोग।
शुभ सामाजिक कर्म थे,
राजधर्म था योग॥

अरुणोदय का फैला प्रकाश, 'प्रियमित्र' कुशल युवराज हुए।
जन जन के राजदुलारे वे, भारत माता के ताज हुए॥
सम्राट 'धनजय' के सपूत, सब ओर बडाई पाते थे।
'प्रियमित्र' सभी के प्यारे वे, तरु पल्लव तक गुण गाते थे॥

'प्रियमित्र' समर्थ सुयोग्य हुए, घर त्याग 'धनजय' चले गये।
बेटे को सिंहासन देकर, स्वाधीन पेड़ के तले गये॥
क्या महल और क्या सिहासन, ये सदा किसी के नही मित्र।
कुछ साथ नही जाता अपने, जाता है बस जीवन पवित्र॥

मित्रो! मरने से पहले ही, वह तज दो जो अपना न यहाँ।
उस पथ पर आगे बढे चलो, खिल रहे मोक्ष के फूल जहाँ॥
प्रिय मित्र राजसिंहासन पर, सम्राटो के सम्राट बने।
मिल गया चक्रवर्ती का पद, खिल गये विश्व मे फूल घने॥

जनता की, भारत की, जग की, सेवा की तप से राज किया।
फिर मोह छोड़ गद्दी त्यागी, दीक्षा लेकर सन्यास लिया ॥
'प्रियमित्र' हो गये वीतराग, सलग्न तपस्या में त्यागी।
आनन्द वनो मे लेते थे, सिहासन तजकर वैरागी ॥

आ पहुँची निकट मरण वेला, मरने की थी परवाह नही।
वह जन्म मरण में एकरूप, जिसको कुछ भी है चाह नही ॥
जो ज्ञानवान विद्वान साधु, उनको न कभी भी भय होता।
जिसको है आत्मवोध मित्रो! वह प्राणी कभी नही रोता ॥

रह गया देह उड़ गया हस, दीपक बुझते दीपक जलते।
पानी के वुदवुद से प्राणी, घुल जाते है चलते चलते ॥
लेकिन कुछ ऐसे जाते है, जो याद सभी को आते है।
कुछ रोते रोते जाते है, कुछ हँसते हँसते जाते है ॥

साधुराज सुरराज हो,
गये स्वर्ग प्रिय मित्र!
सहस्रार स्वर्गेश थे,
गत प्रियमित्र पवित्र ॥

प्रियमित्र स्वर्ग में पुण्यो से, सुरराज सूर्यप्रभ ज्योति वने।
उनकी उन्नति का अन्त नही, जिनके होते है पुण्य घने ॥
वन्दना देवताओ ने की, सुरवालाओ ने गुण गाये।
फल फूल दीप अक्षत चन्दन, सोलह स्वर्गो के सुर लाये ॥

तपवान सूर्यप्रभ थे सुरेन्द्र, स्वर्णिम विमान शुक्लाभ रंग।
छवि अद्भुत अनुपम आकर्षक, मुखमंडल पर अगणित अनग ॥
प्रीतिकर देव पूर्व ये थे, अव अधिक ज्ञानसम्पन्न सूर्य।
पहले सुर थे अव थे सुरेन्द्र, वास्तव में वे थे ज्ञान तूर्य ॥

वाह्य वैभव अन्तर सम्यक, देवों को विस्मय होता था।
भावी तीर्थंकर की गति से, गत कर्मो का क्षय होता था ॥
जीवो की गत आगत गतियाँ, कर्मो से घटती वढती है।
कुछ पग पग पर मरते जीते, कुछ सतियां ऊपर चढ़ती है ॥

यह मत समझो तुम जो करते, उसका फल 'नही भोगना है।
जैसा करते है वैसा फल, जीवो को यही भोगना है॥
कोई राजा कोई भिक्षुक, कोई कुत्ता कोई कीड़ा।
वैसे वैसे है दुख सौख्य, जैसी जैसी जिसकी क्रीड़ा॥

यह जीव कभी माँ कभी बाप, पति कभी, कभी पत्नी प्राणी।
फिरती है बहुत योनियो में, पुद्गल युत आत्मा कल्याणी॥
सब जीव भटकते रहते है, चक्कर कर्मो का घूम रहा।
उसको दुखो का पता नही, जो आज नशे मे झूम रहा॥

जो भक्त जिनेश्वर के प्राणी, वे आगे बढते जाते है।
खाई चट्टानो पर चल चल, चोटी पर चढते जाते है॥
तपपुज 'सूर्यप्रभ' ध्यानमग्न, कर्मो का क्षय कर और बढे।
तत्वज्ञ 'सूर्यप्रभ' देह त्याग, चोटी से चोटी और चढे॥

देह त्याग कर 'सूर्यप्रभ',
जन्मे भूपक मित्र!
'वीरवती' की गोद मे,
खेला पुत्र पवित्र॥

मित्र! 'नन्दिवर्धन' पिता,
जम्बूद्वीप महान।
भव्य छत्रपुर नगर में,
नन्दन 'नन्द' महान॥

राजा रानी प्रजा जन,
धन्य धन्य सब लोग।
जीव सभी अर्चक बने,
मानो जन्मा योग॥

जन्म जन्म के पुण्य से,
ऊँचे थे सस्कार।
युवा हुए करने लगे,
शासन राजकुमार॥

जन जन की उन्नति हुई,
बहुत सुखी सब लोग।
घर घर में दीपक बना,
राजा का उद्योग ॥

मित्र! 'नन्द' के राज में,
कही न था अन्याय।
वर्षा थी घी दूध की,
कही नही थी हाय ॥

चिन्तारहित मनुष्य था,
बाधारहित समाज।
तब ऐसा पापी न था,
जैसा आज अराज ॥

याचक कोई था नही,
कोई दुखी न दीन।
कलियुग की क्या बात है,
जल में प्यासी मीन ॥

संन्यासी राजा जहाँ,
बड़ी वहाँ की बात।
मित्रोदय है जिस जगह,
वहाँ न रहती रात ॥

तब सब न्यायाधीश थे,
अब राजा ले लोट।
गड़बड़ अब हर बात में,
खोट खोट में खोट ॥

बडे बड़े लेलोट अब,
बड़ो बड़ों में खोट।
तब चोरी डाके न थे,
अब है लूट खसोट ॥

विश्वास 'नन्द' में सव का था, गुणमयी कीर्ति सव गाते थे।
आध्यात्मिक धार्मिक शासन था, सुखदाता से सुख पाते थे॥
वैभव मे राजा 'नन्द' कभी, चैतन्य ज्योति से हटे नही।
वढ़ते ही गये धर्म पथ पर, जन जन के मन मे घटे नही॥

जिनको स्वर्गो के आसन भी, वन्धन में बाँध न रख पाये।
क्या राजसुखों मे वँध जाते, वे 'वीरवती' माँ के जाये॥
वे चिन्तन, करते थे प्रतिपल, कव मोक्ष मिलेगा जय होगी।
जग मे फँसते रहते भोगी, जग से हटते रहते योगी॥

योगी थे राजा 'नन्द' निपुण, वैराग्य भाव से राजा थे।
वे वड़े चाव से साधू थे, वे अल्प चाव से राजा थे॥
वे वर्द्धमान थे गति पथ पर, जग युद्धक्षेत्र में थे रथ पर।
वे सोचा करते थे प्रतिपल, कव दीप वनूँगा तप तप कर॥

कव कामधेनु होगा यह मन, कव कल्पवृक्ष वन जाऊँगा।
कव होगा पूर्ण समाधि मरण, जो मरकर पुन. न आऊँगा॥
वाणी में शान्ति मुखर कर दो, हे नाथ दया मन में भर दो।
मैं राजा हूँ पर मेरा मन, दुखियो के आँसू का कर दो॥

मैं वना चक्रवर्ती राजा, पा लिया इन्द्रपद भी मैंने।
मैं निर्विकार मैं निर्विकल्प, भोगे है सव मद भी मैंने॥
दो मुझे भक्ति अव ऐसी दो, सारे द्वन्दो का त्याग करूँ।
फिर जन्म न लूँ मैं वार वार, मैं मरूँ नाथ! इस तरह मरूँ॥

मैं त्यागूँ रूप सुगन्ध सभी, वन्दी न कमल मे हो भौरा।
ये फल रसीले भगुर है, जिन पर दुनिया का मन वौरा॥
मतवाला भ्रमर अपरिचित है, रसपान विपैला करता है।
पीता पीता वन्दी होता, दम घुट जाता है मरता है॥

दु.ख विपुल मुख न्यून हैं,
मत फूलो पर भूल।
पल दो पल की गन्ध है,
पल दो पल के फूल॥

जलता मरघट देख कर,
मिला बहुत सन्तोष।
मन वैरागी बन गया,
त्याग दिये सब दोष॥

उड़ा यान में मटक कर,
अर्थी देखी एक।
मित्र! मिलेगी एक दिन,
दो बाँसो की टेक॥

देख बुढ़ापा रो पड़ा,
हँसा जवानी देख।
कविताएँ लिखने लगा,
भग कहानी देख॥

एक लाश कहने लगी,
यह है तेरा अन्त।
मौत सभी का अन्त है,
राजा रहे न सन्त॥

जीवन तारा भोर का,
जीवन जलता रेत।
जीवन उठती पैंठ है,
जीवन खाली खेत॥

ज्ञान बिना सब शून्य है,
भक्ति विना क्या अर्थ।
पूजा विना न कुछ मिला,
मर मर गये समर्थ॥

'कंस' मिटे 'रावण' मिटे,
'कौरव' रहे न शेष।
शेष सर्व रक्षक सदा,
'ब्रह्मा' 'विष्णु' 'महेश'॥

जिसका मन वैराग्य में,
उसे न भाता राज।
मुनी के चरणो में गये,
'नन्द' त्यागकर ताज ।।

'पौष्ठिल' मुनि के पगो में,
बैठे 'नन्द' महान।
ली मुनीन्द्र से देशना,
लगा ज्ञान मे ध्यान ।।

अवधि ज्ञान सम्पन्न थे,
'पौष्ठिल' मुनिवर विज्ञ।
'नन्द' कमल से खिल गये,
साधु बने नितिज्ञ ।।

रत्न-रश्मियों से प्रखर,
साधु-सरोवर मित्र!
मुनि मानस की दमक थी,
या रत्नो का इत्र ।।

कहा 'नन्द' ने धन्य हूँ,
मुझको मिले मुनीन्द्र।
दीक्षा दो गुरुवर मुझे,
कर दो दया यतीन्द्र ।।

दस हजार नृप साथ में,
दीक्षा हित नत शीश।
दाता दे दो देशना,
आप हमारे ईश ।।

दीक्षा दी ऋषिराज ने,
दिया ज्ञान का कोष।
मिली धर्म निधियाँ विपुल,
बाकी रहा न दोष ।।

'पौष्ठिल' मुनि ने उपदेश दिया, भावी तीर्थंकर व्रती बनें।
एकान्त साधना कर साधू, व्रत पर व्रत करते गये घनें।।
संयम के बाधक राग द्वेष, अनशन से स्वाहा होते है।
व्रत 'कनकावली' किये मुनि नें, तपवान मुक्ति मणि बोते है।।

फिर 'रत्नमालिका' व्रत करके, 'निष्क्रीड़ित' तप कर ज्ञान लिया।
तदनन्तर मुक्ति प्राप्ति के हित, 'मौक्तिकावली' तप पूर्ण किया।।
तन पर न तनिक भी मोह रहा, मन में न' लोभ का नाम रहा।
सन्ताप न कोई शेष रहा, तप की धारा में काम बहा।।

उपवासों पर उपवास किये, केवल बकरी का अमृत पिया।
फिर दुग्ध पान भी छोड़ दिया, बस पत्ती खाना शुरू किया।।
व्रत किया कि जल ही पीऊँगा, वर्षो तक केवल नीर पिया।
व्रत लिया अखंड तपस्या का, तब पानी को भी छोड़ दिया।।

जानें कब तक वायवी देह, केवल समीर पर टिका रहा।
या तप ने मुनि का तन पाया, कवि ऋषि के तप पर बिका रहा।।
चाहों की परियाँ गा गाकर, थक थक कर हार हार भागी।
सुन्दरता की रमणियाँ निपुण, तज तज श्रृंगार प्यार भागी।।

भय हुआ मुझे यह व्रती तपी, इन्द्रासन छीन न ले मेरा।
मेरी सब सुन्दरताओं ने, उन मुनि पर डाल दिया घेरा।।
नर्तकियाँ कला प्रदर्शन कर, जय जय गाती वापिस आई।
तप भस्म न कर डाले हमको, कहती थी परियाँ घबराई।।

करता है पवन प्रहार मित्र! तट से न सिन्धु आगे बढता।
जब अति होती है धरती पर, मर्यादा छोड जलधि चढता।।
संगम! मत समझो शान्त सन्त, बलहीन, हरा दोगे उसको।
अपना विकराल रूप धर कर, फुकार डरा दोगे उसको।।

देख लिया बल वीर का,
' जन्म जन्म का दीप।
मोती वीर सपूत है,
'त्रिशला' माता सीप।।

मित्र ! महामुनि 'नन्द' ही,
वर्द्धमान है आज ।
'तीर्थकर' के बध हित,
त्याग दिया था राज ॥

जीवन का कूड़ा हटा,
मिला ज्ञान का सूप ।
जन्म जन्म का पुण्य है,
वर्द्धमान का रूप ॥

शुद्ध सिद्ध निर्ग्रन्थ ने,
धारण कर सन्यास ।
जीवन को तप कर दिया,
इत्र बन गये श्वास ॥

'तीर्थंकर' का बध कर,
ले समाधि थे पार ।
पहुँचे अच्युत स्वर्ग मे,
हुए 'सुरेन्द्र' अभार ॥

'अच्युतेन्द्र' आनन्द निधि,
विद्या के आगार ।
तब 'सुरेन्द्र' थे अब हुए,
धरती के शृङ्गार ॥

वे देवों के देव हैं,
जो त्रिशला के लाल ।
उनके बडे जलाल हैं,
उनके बडे कमाल ॥

तप के प्रसाद से 'नन्द' वढे, मुनि 'अच्युतेन्दु' सुरराज हुए ।
पुरुरवा भील बढते वढते, धरती के नभ के ताज हुए ॥
सब सत्सगति की महिमा है, श्रद्धा श्रद्धेय वनाती है ।
जिसमे विश्वासो की गति है, वह गति सन्मति बन जाती है ॥

जो भाव भक्ति से बढता हैं, उनकी पूजा चोटी करती।
जो चलते चलते थके नही, उनकी पग धूलि अचल धरती ॥
जो राजा होकर भी साधू, उनको अवतार नमन करते।
जो शुद्ध अहिंसावादी है, वे पूज्य न बाणों से मरते ॥

सगम! जिनको है आत्मबोध, वे शुद्ध प्रबुद्ध न रुकते है।
दुर्बलताएँ मर जाती है, बढते राही कब झुकते है ॥
यह स्वर्ग यहाँ वे आते है, जो धरती पर तप करते हैं।
जो तप न स्वर्ग में भी तजते, वे दुःख हरण दुख हरते है ॥

तुम भोग रहे हो स्वर्ग सखे! रत्नो का यहाँ उजाला है।
संगत को सुर बालाएँ है, आनन्दो की मणि माला है ॥
ऐसा कोई भी सुख न सखे, जो इन स्वर्गो में प्राप्त नही।
जो निधियाँ वैभव कला यहाँ, ससारो में है नही कही ॥

सब भोग सुलभ सिद्धियाँ प्राप्त, यह स्वर्ग यहाँ पर दु ख नही।
सब कार्य प्रकृति करती रहती, ऐसी सुन्दरता नही कही ॥
तरुओ पर व्यंजन लदे पडे, शीतल समीर सुख देते है।
पर 'अच्युतेन्द्र' वैरागी है, सुख देते है तप लेते है ॥

इन जन्म जन्म के दीपो पर, मेरा मन परवाना खोया।
जिनको न स्वर्ग की इच्छा है, उनका आना जाना खोया ॥
ये 'अच्युतेन्द्र' सुरराज सखे, ये जन्म जन्म के उजियाले।
जिन बालवीर की पूजा की, वे 'अच्युतेन्द्र' है कल वाले ॥

जन्म जन्म के दीप का,
संगम! वीर प्रकाश।
वे धरती वे सूर्य है,
वे है मुक्ताकाश ॥

सुख में जो भूले नही,
रहा मुक्ति का ध्यान।
वे जन जन के भक्त है,
सीखो उनसे ज्ञान ॥

चाहों के संसार में,
त्याग चुके जो चाह।
चलते चलते वन गये,
वे जन जन की राह॥

स्वर्ग मिला भूले नही,
मानवता की राह।
वे मेरे आराध्य है,
वे जन जन की चाह॥

क्षमा वड़ी हर पुण्य से,
क्षमा कवच है मित्र!
क्षमा सुरभि उन सभी की,
जितने भी हैं इत्र॥

क्रोध शत्रु सव से वड़ा,
कर्ज कृशानु प्रचंड।
उनका निश्चित पतन है,
जिनको वड़ा घमंड॥

अगर मित्र है अमृत क्या,
यदि विद्या क्या माल?
दुर्जन विषधर से वडा,
सत्य न डसता काल॥

चलो चलो वढते चलो,
क्या सागर क्या शैल?
सावुन चमडी पर मला,
धुल, न मन का मैल॥

मन मे गगा ज्ञान की,
वहे न काले पाप।
जन्म जन्म की धार में,
नही नहाये आप॥

जैसे गहरे नीर में,
तैरे वीर महान।
कब आयेंगे तैरने,
फिर ऐसे भगवान ॥

जन्म जन्म के दीप है,
जन्म जन्म के फूल।
जन्म जन्म के कूल है,
जन्म जन्म के मूल ॥

जन्म जन्म के दीप,
चाँद सूरज तारे प्यारे।
जन्म जन्म के सूर्य धरा पर,
तीर्थंकर सारे ॥

जन्म जन्म के धर्म कर्म से धरती ठहरी है।
स्वतन्त्रता की ध्वजा मुक्त आत्मा से फहरी है ॥
ग्रीष्म शीत आँधी पानी सह तरु फलवान हुए।
जन्म जन्म के तप के फल से जन भगवान हुए ॥

दीपक ऐसे जले,
बुझ गये पथ के अंगारे।
जन्म जन्म के दीप,
चाँद सूरज तारे प्यारे ॥

यह मत समझो मित्र! डाल पर फूल सदा रहते।
आँसू लेने वालो! आँसू सदा नही बहते ॥
पाप प्रलय का पानी बनता, पुण्य सृष्टि सुन्दर।
युग युग के तप से होती है स्वर्ण वृष्टि सुन्दर ॥

मजिल उनके पैर पूजती,
जो न कभी हारे।
जन्म जन्म के दीप,
चाँद सूरज तारे प्यारे ॥

कर्मों का क्षय जन्म जन्म के पुण्यो से होता।
वह हर ऋतु का राजा है जो हर ऋतु मे बोता ॥
खोता है जो समय जगत मे वह रोता रहता।
सोता रहता जो जीवन मे वह खोता रहता ॥

जो आगे बढते जाते वे,
बालक ध्रुव तारे।
जन्म जन्म के दीप,
चाँद सूरज तारे प्यारे ॥

मुझे जागता देखकर,
बोली प्यासी सीप।
मोती तेरे भाव है,
स्वर है स्वर्णिम दीप ॥

आँसू मोती सीप का,
दीप यशस्वी वीर।
मित्र दीप घर घर धरो,
बदलेगी तकदीर ॥

जो सूरज के रूप है,
जो धरती के गीत।
वे तारो के बोल है,
वे जन जन की जीत ॥

फूल अर्चना मे खिले,
झूम रही है डाल।
पूजा उनके पगो की,
झुके न जिनके भाल ॥

जन्म जन्म के दीप है,
जन्म जन्म की जीत।
मेरी माला मे गुथे,
जन्म जन्म के गीत ॥

# प्यास और अँधेरा

हर फूल गा रहा है,
हर दीप गा रहा है।
आकाश गा रहा है,
जो भूमि ने कहा है॥

पर्वत तपस्वियो के,
तन मूर्त हो खड़े है।
जो उत्स फूटते हैं,
वे अर्घ्य के घडे है॥

कल कल करो न नदियो।
तप जल न सूख जाये।
उनको नमन सभी का,
जो वीर सूर्य लाये॥

जो दूर है गगन मे,
वह मित्र आ रहा है।
हर फूल गा रहा है,
हर दीप गा रहा है॥

ये स्वाति बूँद तन की,
श्रमकण समझ रहे हो।
वे उत्स से भरे है,
तुम अश्रु से बहे हो॥

पाषाण बोलते है,
जो बोल सुन रहे हो।
तुम हार गूथ पहनो,
हम फूल चुन रहे है।।

सुन्दर सुगन्ध उनकी,
हर गीत ला रहा है।
हर फूल गा रहा है,
हर दीप गा रहा है।।

भगवान भूमि के वे,
हर पुष्प मे खिले है।
त्रिशला कुमार हमको,
हर भोर में मिले है।।

वे इत्र मेदनी के,
वे चित्र कान्तियो के।
भागे अरुण उदय से,
तमदूत भ्रान्तियो के।।

यह ज्ञान वीर का है,
जो मित्र ने कहा है।
हर फूल गा रहा है,
हर दीप गा रहा है।।

तारे उनकी महिमा गाते, जो है आँखो के तारो मे
पर्वत उनकी पूजा करते, जो खेले है अगारो मे।
किरणे उनकी मुस्काने है, जो कमल ज्ञान के खिला गये
यह कथा वीर त्रिशलासुत की, जो सुधा सभी को पिला गये।

यह 'वासुकुड' भगवान यहाँ, अवतीर्ण हुए हिल मिल खेले
यह जन्म भूमि उनकी जिनको, जग के न कभी भाये मेले।।
यह धरती वीर तपस्वी की, यह मिट्टी चन्दन तिलक करो।
यह मन्दिर सत्य अहिसा का, यात्री! आओ लो दीप धरो।।

यह पावन भूमि यहाँ पर हम, हल नही चलाया करते हैं।
हम बोते नही यहाँ कुछ भी, हम दीप यहाँ पर धरते है ॥
हिसा न यहाँ पर होती है, मछली न पकड़ता है कोई।
आमिष न यहाँ पर खाते है, इस जगह तपस्या श्री बोई ॥

इस वासुकुड की धरती पर, डाकू भी साधू बन जाता।
मिलती है उसको शान्ति बहुत, जो प्राणी श्रद्धा से आता ॥
हमने न कभी इस धरती पर, कोई अन्धा बहरा देखा।
इस धरती पर है खिची हुई, 'त्रिशला' नन्दन की जय रेखा ॥

इस मिट्टी को छूने वाले, रोगी अच्छे हो जाते है।
इस पानी को पीने वाले, वाणी में जीवन पाते है ॥
इन झरनों में सगीत सुधा, ये स्रोत अमृत देते रहते।
ये सालवृक्ष ये कदली तरु, वाणी का रस लेते रहते ॥

भिक्षुक न यहाँ भूखे न यहाँ, रोगी न यहाँ भोगी न यहाँ।
देखो यह तीर्थ भूमि वह है, अवतीर्ण हुए थे वीर जहाँ ॥
यह जन जन के गुरु का प्रसाद, यह अन्धकार में उजियाला।
यह कभी नही घटने वाला, यह कभी नही मिटने वाला ॥

धरा धन्य है यह गगन धन्य है यह।
सुरभि में बसा जो यहाँ पर हुआ वह ॥

यहाँ जन्म उसका दिया ज्ञान जिसने।
यहाँ ज्ञान उसका किया ध्यान जिसने ॥
यहाँ अर्चना के दिये हम जलाते।
महावीर के गीत हम रोज गाते ॥

डिगा जो न पथ से यहाँ पर हुआ वह।
धरा धन्य है यह गगन धन्य है यह ॥

यहाँ बकरियाँ घूमती है न चरती।
यहाँ सिह साधू हिरनियाँ न डरती ॥
यहाँ पर ततैये नही काटते हैं।
न खटमल यहाँ खून को चाटते है ॥

न यह फूल है खिल रहा रूप है वह।
धरा धन्य है यह गगन धन्य है यह ।।

यहाँ फूल है शूल होते नही है।
तपे जो यशस्वी यही है यही है।।
कुलक्षण न कोई विलक्षण धरा है।
हरा पेड़ है यह अमृत से भरा है।।

न सोया न रोया यहाँ पर हुआ वह।
धरा धन्य है यह गगन धन्य है यह ।।

यह जन्म भूमि उज्ज्वल पवित्र, श्रद्धा से पूजी जाती है।
इस 'वासुकुड' के कण कण मे, सारी धरती की थाती है।।
मै हवा व्यजन करने वाली, तव से हूँ जब से वे आये।
मै सुन्दरता हूँ तव से हूँ, जब से है त्रिशला के जाये।।

मैं हूँ सुगन्ध उन श्वासो की, जो सुरभि लुटाते चले गये।
मैं शीतलता उन बोलो की, जो बोल भूमि पर सदा नये।।
मैं हरा पेड वह जीवन हूँ, जो विश्वासो के फल देता।
मैं बादल हूँ उन आँखो का, जो हर प्यासे को जल देता।।

यह है प्रताप इस धरती का, इस धरती में विश्वास मौन।
जो विना शस्त्र के जग जीते, वोलो है ऐसा वीर कौन?
'त्रिशला' नन्दन सिद्धार्थ सुवन, जय पाने वाले वीर हुए।
जो किसी प्रलय से मिटी नही, वे ऐसी अमिट लकीर हुए।।

यह महावीर की जन्म भूमि, मान्यता प्राप्त जन जन की निधि।
यह है मानवता की प्रतीक, यह अचला सद्ग्रन्थो की विधि।।
यह घोर निशा में उजियाली, यह स्वतन्त्रता की वाणी है।
यह 'प्रथम राष्ट्रपति की पूजा', यह सर्वशक्ति कल्याणी है।।

ये देश रत्न के हाथो से, अर्चित अक्षर जो लिखे यहाँ।
आये 'राजेन्द्र प्रसाद' यहाँ, तुम पूजा करते मित्र जहाँ।।
जो महावीर की राह चले, जो गाँधी जी की वाणी थे।
वे प्रथम राष्ट्रपति भारत के, छन्दो से अर्चित प्राणी थे।।

वे वोली महावीर की थे, जो स्वतन्त्रता के भाल बने।
वे खाल दिगम्वर तन की थे, जो भारत माँ की ढाल वने।।
वे व्रती अहिंसा के स्वर थे, जो चले वीर के चरणो पर।
सव शब्द इसी धरती के है, जो दीप वने जलते घर घर।।

'वासुकुड' की भूमि यह,
महावीर की याद।
मिट्टी माथे पर मलो,
सुनो वीर का नाद।।

'वासुकुड' के पास हम,
पास हमारे वीर।
पग चिह्नो पर चढ़ गया,
इन ऑखो का नीर।।

साल वृक्ष कहने लगे,
अव न रहे वे गीत।
जिन गीतो मे मुखर थी,
प्रजातन्त्र की जीत।।

जिनमे खिलते थे कमल,
अव न रहे वे ताल।
जाने क्या क्या खा गये,
हृदयो के भूचाल।।

तन ऊँचा नीचा हृदय,
जैसे ऊँचा ताड़।
सव वाढ़ो से विकट है,
पापी मन की वाढ।।

मित्रो! मन की वाढ से,
वडी न कोई वाढ।
मॉझी! मन की नाव का,
पानी जल्दी काढ़।।

कुछ कथा सुनाई तरुओ ने, कुछ वातें कही पक्षियो ने।
कुछ गउएँ गाथा गाती थी, घटनाएँ कही यक्षियो ने॥
हाथी वोले घोडे वोले, टमटम वोली इक्के वोले।
हम दिखा रहे उनको जिनके, वोलो से राख हुए शोले॥

कुछ गॉव वहाँ के गाइड थे, कुछ गड्ढे घावो से देखे।
झौपड़ियो मे वरसाते थी, निर्धन निज भावो से देखे॥
खेतो मे आग वोलती थी, उस वीते हुए जमाने की।
मैं घूम रहा था इच्छा थी, सोने के अक्षर पाने की॥

मैंने नदियो से प्रश्न किये, लहरे कलकल करती आई।
वुलवुले दीख कर डूव गये, सीपियाँ गीतिकाये लाई॥
शखो मे शंखनाद वोले, वे मगर मर गये वड़े वड़े।
वे राजा नही रहे यात्री!, जो देश खा गये खड़े खड़े॥

ये शिलालेख ये चित्र मित्र! इनमें भारत की तस्वीरे।
'नालन्दा' मे वैशाली मे, खंडित उन्नति की तकदीरे॥
मुखरित हैं अद्‌भुत मिट्टी मे, कुछ शिल्पकार कुछ पूर्तिकार।
टूटी फूटी प्रतिमाओ मे, अकित युग युग के मूर्तिकार॥

यह पेड़ करोडो वर्षो का, पानी मे जम पाषाण वना।
हमने 'विहार' मे देखा है, पाषाण पेड़ का एक तना॥
यह तना तरेपन फुट लम्वा, टुकडा है किसी जमाने का।
यह चीड़ वृक्ष पाषाण वना, या तन है तप जम जाने का॥

यह महावीर की प्रतिमा है, इसमे उजियाली के अक्षर।
प्रतिमा प्रतिमा मे यह प्रतिमा, इसमे हर माली के अक्षर॥
'नालन्दा' के पाषाणों मे, हमने प्राचीन मूर्ति देखी।
आक्रान्ताओ से नष्ट हुई, गरिमा से पूर्ण पूर्ति देखी॥

'नालन्दा' को देखकर,
रोये मेरे नेत्र।
विश्व ज्ञान का केन्द्र था,
मेरा खंडित क्षेत्र॥

शोर वढ़ा हिंसक बढ़े,
तिमिर डस गया भोर।
नालन्दा खँडहर हुआ,
घुसे देश में चोर॥

ताड़ तपस्वी तप रहे,
आये वही अतीत।
गूजे फिर से विश्व में,
नालन्दा के गीत॥

मूक पेड़ तप कर रहे,
लेते नही अहार।
आओ फल दो आ मिलो,
बीती हुई बहार!

जैन बौद्ध का केन्द्र था,
धर्म कर्म का मेल।
'खिलजी' खेले थे यही,
तलवारों का खेल॥

आक्रमण अधर्मी करते थे, तलवारे लहू चाटती थी।
परदेशी हत्या करते थे, छुरियाँ उँगलियाँ काटती थी॥
हम शान्ति शान्ति मे मौन रहे, सज्जनता भी अभिशाप वनी।
अत्याचारी पर दया मित्र! जीवन को भारी पाप वनी॥

यह अर्थ अहिंसा का कव है, वे मारे हम मरते जाये।
यह शास्त्र शान्ति का मित्र नही, अन्यायी के कोड़े खाये॥
जो अनुचित सहन किया करता, वह प्यार आग वन जाता है।
जो अधिक भला होता जग मे, वह वोली गोली खाता है॥

सीधे को सभी सताते है, टेढे से दुनिया डरती है।
जव वक्र चन्द्रमा होता है, राहू की नानी मरती है॥
हम शान्त रहे या भ्रान्त रहे, यह हमें सोचना ही होगा।
खडित प्रतिमाएँ वोल रही, नालन्दा ने क्या क्या भोगा?

भारत माता वन्दिनी वनी, मस्जिदें वनीं मन्दिर तोड़े।
सुरभित कलियों को रौंद गये, 'खैबर' के थोड़े से घोड़े॥
जो शोणित के प्यासे उनको, गंगाजल देना व्यर्थ मित्र!
जो हत्यारे वे समझेंगे, पैने तीरों का अर्थ मित्र!

भावुकता वड़ी खरावी है, जो भावुक है वह रोता है।
विश्वास किसी का करके ही, भोला अपने को खोता है॥
यह दुनिया है व्यवहारों की, आदर्श सताये जाते हैं।
जो भावुकता में रहते हैं, पग पग पर ठोकर खाते हैं॥

वरदान 'वृकासुर' को देना, विषधर को दूध पिलाना है।
जो मिल मिल कर करते प्रहार, उनसे क्या हृदय मिलाना है॥
घर मे वाहर दाये वायें, पहचान किसी की सरल नही।
हम घाट घाट पर गये मित्र! जल पिया जहाँ था गरल वहीं॥

यहाँ रोज होते तमाशे वहुत हैं।
हमारे कलेजे तराशे वहुत हैं॥

जुवा खेलने के तरीके वहुत हैं।
यहाँ के नये रंग फीके वहुत हैं॥
जहाँ पर कभी स्वर्ग के सुख सभी थे।
वहाँ पर मिले मित्रवर! दुख सभी थे॥

धरा में वहाँ की धरा से वहुत हैं।
यहाँ रोज होते तमाशे वहुत हैं॥

यहाँ रूप के रोज होते तमाशे।
नये भूप के रोज होते तमाशे॥
तमाशे यहाँ हर दिशा मे नये हैं।
यहाँ छोड़ टीले तमाशे गये हैं॥

यहाँ फूट ने घट तराशे वहुत हैं।
यहाँ रोज होते तमाशे वहुत हैं॥

हजारों वहाने यहाँ चल रहे हैं।
हिमालय यहाँ धूप में गल रहे हैं।।
यहाँ राज को खा रहे रोज राजा।
विना ही लिये ऋण यहाँ है तकाजा।।

यहाँ जहर भीगे वताशे वहुत है।
यहाँ रोज होते तमाशे वहुत है।।

निर्माण यहाँ होते रहते, निर्माण यहाँ पर जलते है।
वे गिरते है वे मिटते है, जो नही सँभल कर चलते है।।
जव मन न होश में रहता है, उत्थान पतन वन जाते है।
वे राजा देश डुवा देते, जो पीते है जो खाते है।।

रण में तलवार सजा करती, शृंगार कथा निस्सार वहाँ।
जिस जगह आग के गोले हो, रस की वाते है हार वहाँ।।
सोचो यह प्यारा देश मित्र! कैसे कैसे वर्वाद हुआ?
किस किसने इसका लहू पिया, किस किसने है आवाद किया।।

तुम भूले हो वैशाली को, सव स्वर्ग जहाँ शर्माते थे।
दर्शन करने पूजा करने, देवता जहाँ पर आते थे।।
उस समय वुद्ध की आँखो में, वैशाली के विभु छाये थे।
वैशाली के गण पुत्रों मे, देवों के दर्शन पाये थे।।

अपने शिष्यो से वोले थे, देखे है क्या देवता कभी?
तुम देखो लिच्छवियो को जा, देवता मिलेगे सभी अभी।।
वह वैशाली जिसका गौरव, आकाश वना था धरती है।
यह धरती है इस धरती पर, हर इच्छा 'सीता' हरती है।।

उन हाथो को क्या कहूँ मित्र! जो वाग उजाडा करते है।
तुम स्वयम् समझलो वे क्या है, जो कपड़े फाड़ा करते है।।
ये हाथ पैर इसलिये मित्र! अपना जग का शृंगार करे।
हम जिये सभी को जीने दे, क्यो फूलो से तकरार करे।।

अधिकार मिला अधिकारों का, जीवों के हित उपयोग करें।
जितना जितना है भाग यहाँ, उतना उतना ही भोग करे ।।
पर एक दूसरे का हिस्सा, मन के पिशाच खा जाते है।
उन जीवों से पत्थर अच्छे, जो जग के काम न आते है ।।

क्या क्या हुआ और क्या होगा?
भारत माँ ने क्या क्या भोगा?

अपनों ने अपमान किया है।
घूट घूट में लहू पिया है ।।
राख हुए है सोने के घर।
जश्न मनाये है लाशों पर ।।

हमने पापो का फल भोगा।
क्या क्या हुआ और क्या होगा?

दीपों ने घर राख कर दिया।
मन ने मन में जहर भर दिया ।।
मित्र हमारे शत्रु बन गये।
सुरभि रहित थे सुमन तब नये ।।

कारा-कष्ट देश ने भोगा।
क्या क्या हुआ और क्या होगा?

जलता रहा पडौसी का घर।
देखा खूब तमाशा हँस कर ।।
उसी आग ने हमे जलाया।
हमने करनी का फल पाया ।।

आपस मे लड़ लड़ दुख भोगा।
क्या क्या हुआ और क्या होगा?

नालन्दा के ग्रन्थ जल गये।
उगते उगते सूर्य ढल गये॥
वैशाली के महल कहाँ है?
अब तो उनकी याद वहाँ है॥

'वैशाली' ने क्या क्या भोगा?
क्या क्या हुआ और क्या होगा?

यह धूलि-धूसरित 'वैशाली', इसमें इतिहास हमारा है।
भू-लुठित भवन हमारे है, लाशों पर लास हमारा है॥
गणतन्त्र विधात्री वैशाली, भारत की गौरव गाथा है।
इस लोकतन्त्र का सूर्योदय, उस 'वैशाली' का माथा है॥

मैंने 'वैशाली' से पूछा, तेरा वह गौरव कहाँ गया?
सोने चाँदी के महलों का, मिट गया कहाँ वह रूप नया?
परियों सी नर्तकियाँ न रही, मदभरी जवानी कहाँ गई?
बलखाते नखरे कहाँ गये? रसभरी कहानी कहाँ गई?

आँखों की लाली कहाँ गई? गालों की लाली कहाँ गई?
अधरो की तृष्णा कहाँ गई, तबलों की ताली कहाँ गई?
वे छैल छबीले कहाँ गये, जो निर्वाचित मद पीते थे।
वह वैभव अपना कहाँ गया, जिसमें कुछ आँसू जीते थे॥

गंगा की धारा बोलो तो, बलखाती अलके कहाँ गई?
रेती की लहरें बोलो तो, कजरारी पलके कहाँ गई?
वे सत्य कहाँ जिनसे निर्मित, 'वैशाली' की थी धूम कभी?
कुछ कहो 'आम्रपाली' के कण, कितनी बाकी वह क्रान्ति अभी?

'गढ' की गीली आँखे बोलो, वह वेश कहाँ वह देश कहाँ?
बीते इतिहासो के दिन की, फिर बढ़ती जाती प्यास यहाँ॥
फिर चुने हुए मेरे प्रतिनिधि, आक्रमण कर रहे है मुझ पर।
फिर वर्ग जातियो के झडे, फहराये जाते है तुझ पर॥

जिसकी ज्योति जगत की जय थी,
टूट गई वह प्याली।
प्यास प्यास की बाढे आई,
डूब गई उजियाली ।।

योगी जब भोगी बन जाते जीत हार बनती है।
जब भारत माता रोती है भूमि वीर जनती है ।।
रक्षक जब भक्षक बन जाते पतन हँसा करता है।
जिसका जन्म मृत्यु उसकी पर सत्य नही मरता है ।।

उस उपवन को कौन बचाये,
जिसको डस ले माली।
प्यास प्यास की बाढ़े आई,
डूब गई उजियाली ।।

भारत के स्वप्नों की रानी, 'वैशाली' एक कहानी है।
यह नयी कहानी है उसकी, जिसकी आँखों में पानी है ।।
लो सुनो कहानी कहता हूँ, उस गरिमा की जो राख हुई।
स्वाधीन देश भारत में वह, देशी गुलाब की शाख हुई ।।

सोने के लाखो घर जिन पर, गणतन्त्र लिखा है हीरो में।
गगा धारा का पानी था, 'वैशाली' के वर वीरों में ।।
जलजात खिले थे नयनों के, जलजात खिले थे तालो मे।
कुदरत ने मोती गूँथे थे, उस सुन्दरता के बालो मे ।।

'वैशाली' को पहनाई थी, सागर ने रत्नों की माला।
चन्दा ने शीतलता दी थी, माथा सूरज का उजियाला ।।
पख झलता था पवन वहाँ, सौरभ की वर्षा होती थी।
आँखो की भाषा कविता थी, पूर्णिमा बिखर मुँह धोती थी ।।

जन-मत की मतवाली आभा, अधरों की मीठी भाषा थी।
सारे भारत की आशा थी, युग युग की शुभ अभिलाषा थी ।।
जाने किसने उन अलको मे, सिन्दूर लहू का लगा दिया।
जाने किस किसने प्याली को, झूठे अधरों से लगा लिया ।।

'वैशाली' वयशाली न रही, वैशाली की लाली न रही।
हम अपने घर मे गैर हुए, इन हाथो में ताली न रही ॥
जन जन की निधि वैशाली से, मतवालो ने खिलवाड किया।
जो सुधा पिलाने वाली थी, उसके हाथों से जहर पिया ॥

बिजली के तारों सी टूटी, सुन्दरता की रस भरी कली।
मधु मास 'आम्रपाली' अद्भुत मन की ज्वाला से धधक जली ॥
तन वेच दिया मन बिका नही, तन क्रय कर लिया जवानो ने।
दीपक पर अपने प्राण दिये, 'वैशाली' के परवानो ने ॥

'आम्रपाली' 'आम्रपाली'।
रात की पहली खुशी थी, भोर की स्वर्णिम उजाली ॥

चाँद सूरज से प्रकट थी।
साज सज धज से प्रकट थी ॥
फूल फूलो का खिला था।
प्यास को पनघट मिला था ॥

लाल बिजली की दमक थी, आरती की भव्य थाली।
रात की पहली खुशी थी, भोर की स्वर्णिम उजाली ॥
आम्रपाली आम्रपाली।

बोल कोयल ने दिये थे।
नेत्र खजन के लिये थे ॥
भाल था चन्दा खिलौना।
ओज था मृगराज छौना ॥

बाल घुँघराले भँवर थे, चाल हसो सी निराली।
रात की पहली खुशी थी, भोर की स्वर्णिम उजाली ॥
आम्रपाली आम्रपाली।

लाल गालो पर उषा थी।
ओठ प्यालो पर उषा थी ॥
नील भृगो पर अदा थी।
श्याम अगो पर अदा थी ॥

झुक रही थी उठ रही थी, एक प्याली एक डाली।
रात की पहली खुशी थी, भोर की स्वर्णिम उजाली ।।
आम्रपाली आम्रपाली।

प्यास बालो पर रुकी थी।
तृप्ति गालों पर रुकी थी ।।
चाह आँखे चूमती थी।
आह मुँह पर झूमती थी ।।

लाल परियो की परी थी, कुदरती अनमोल लाली।
रात की पहली खुशी थी, भोर की स्वर्णिम उजाली ।।
आम्रपाली आम्रपाली।

चेतना की दिव्य निधि थी।
भूमि पर विधुरूप विधि थी ।।
रूप का वरदान थी वह।
चेतना की शान थी वह ।।

भक्ति पूजा से प्रकट थी, ज्योति नयनो की निराली।
रात की पहली खुशी थी, भोर की स्वर्णिम उजाली ।।
आम्रपाली आम्रपाली।

जलजले मुस्कान लाते।
रूप से तूफान आते ।।
चाह में ज्वाला बडी है।
प्रीति अद्भुत हथकड़ी है ।।

बाग में बेला खिला था, सर्पिणी थी रात काली।
रात की पहली खुशी थी, भोर की स्वर्णिम उजाली ।।
'आम्रपाली आम्रपाली।'

'वैशाली' का विध्वस हुआ, पीडित नारी तलवार बनी।
जो दीपशिखा थी भारत की, वह धधक धधक अंगार बनी ।।
जो प्यार जलाया जाता है, वह दावानल बन जाता है।
नारी की आँखों का आँसू, जल-प्लावन बनकर आता है ।।

जो खेल खेलते आँसू से, उनको नागिन डस जाती है।
जब प्रीत सताई जाती है, आँधी अम्बर से आती है॥
मतवालो की मनमानी को, यह मित्र बताये देते है।
कोई आँसू का गुणग्राहक, आँसू का बदला लेता है॥

जो दुनियावाले धरते है, प्यासे अधरो पर अगारे।
जो अलग कर दिया करते है, आँखों से आँखो के तारे॥
जो तोड दिया करते हैं दिल, जो साथी छुडा दिया करते।
प्यासे तो मर ही जाते है, जो दुख देते वे भी मरते॥

यह दुनिया है इस दुनिया में, राजाओ को कुछ दोष नही।
धन के मद मे मतवालो को, परिणामो का कुछ होश नही॥
जो है समर्थ दुनिया उनकी, असमर्थ बिचारा रोता है।
जो है समर्थ हर समय यहाँ, उसका मनचाहा होता है॥

यह दुनिया साहस वाले की, जो रुका नही वह पार गया।
वह अपना दुश्मन आप मित्र, जो अपने मन से हार गया॥
सुन्दरता तब तब आग बनी, जब जब भी मनचाहा न मिला।
जब अपने ही अपने न यहाँ, क्या करे किसी से मित्र गिला॥

सब स्वार्थ भरे अपने अपने, हमने अपनो को देख लिया।
जो अमृत पिलाने आये थे, उनके हाथो से जहर पिया॥
प्रतिशोध प्यार के आँसू का, फूलो से शीश काटता है।
यह मत भूलो दुनियावालो!, आँसू भी लहू चाटता है॥

आँखो का मोती है आँसू,
अन्तर की भाषा है।
टूक टूक अभिलाषा आँसू,
चूर चूर आशा है॥

टूटे हुए हृदय के जल से,
सागर बन जाता है।
सागर गगन एक होते हैं,
जब आँसू आता है॥

मन की ज्वाला दावानल है,
हृदय तोड़ने वालो!
आँसू पीछे पड़ जायेगा,
साथ छोड़ने वालो!

अन्तर का अंगारा आँसू,
पनघट पर प्यासा है।
आँखो का मोती है आँसू,
अन्तर की भाषा है॥

तब तब प्रलय हुई धरती पर,
जब जब धरती रोई।
बिजली तब कड़का करती है,
जब रोता है कोई॥

ज्वार भाट मन में उठते है,
सागर फण फैलाता।
तब तब आँधी शोर मचाती,
जब जब पीड़ित गाता॥

आँसू पूर्ण गीत आँखो का,
आँसू 'दुर्वासा' है।
आँखो का मोती है आँसू,
अन्तर की भाषा है॥

पीड़ा से पृथ्वी फूटी थी,
जब 'सीता' रोई थी।
धरती माता की गोदी में,
धरा-सुता सोई थी॥

बडे बड़े राजा मिट जाते,
जब रोती है नारी।
नारी के आँसू से हारे,
बड़े बड़े अधिकारी॥

आँसू में विरहन की गीता,
आँसू मे प्यासा है।
आँखो का मोती है आँसू,
अन्तर की भाषा है॥

आँसू गिरा 'आम्रपाली' का,
धधक उठे अगारे।
'वैशाली' के फूल वन गये,
माँ के आँसू खारे॥

प्यार बना विद्रोह महल में,
चोर घुसे दिन डूबा।
आँसू बनकर चाँद रूप का,
तारे गिन गिन डूबा॥

ध्वसो का विष एक हृदय का,
घाव जरासा सा है।
आँखो का मोती है आँसू,
अन्तर की भाषा है॥

नारी के उर का एक घाव, विप बनकर कण कण में फैला।
गढ के टीले मे मिले पडे, 'वैशाली' के वाँके छैला॥
'वैशाली' की सुकुमार कली, लपटो की तेज कटार वनी।
मन की उजियाली नगर वधू, तन दे ले कर तलवार वनी॥

कारण है मित्र! 'आम्रपाली', नर से नर को कटवाने में।
मन का प्रतिशोध 'विभीपण' है, हिसा का चरण वढाने मे॥
हिसा के भीपण कदम वढे, भिड गया 'मगध' वैशाली से।
अगारो का सग्राम छिडा, भारत माँ की उजियाली से॥

वट गये राज्य छोटे छोटे, कट गये वीर माँ के वाँके।
फट गया कलेजा धरती का, जल गया अन्न घर घर फाके॥
अपनो पर अपने टूट पडे, खो गया होश मतवालो का।
भर गया रक्त से चचल मन, मन की मदिरा के प्यालो का॥

वह जोश स्वयम् को डसता है, जिसको रहता है होश नहीं।
भाई भाई का रहा नही, था एक कही तो एक कही ॥
सब समय समय की बात मित्र! कुछ दोष किसी का क्या कहदे ।
कर्मो के फल के भोग मित्र! आक्रोश किसी का क्या कहदे ॥

कुछ पता नही कब अपने ही, अंगारे बन कर टूट पड़े ।
कुछ पता नही कब पेड़ गिरे, कुछ पता नही कब पात झड़े ॥
कुछ पता नही कब नयन लड़े, कुछ पता नही कब नयन गड़े ।
यह पता नही कब आँख लड़े, यह पता नही कब मित्र लड़े ॥

हमने उनको लड़ते देखा, जो रोते रोते गले मिले ।
डाली विधवा हो कर बोली, प्रिय फूल गिर गया बिना खिले ॥
मैंने यह दुनिया देखी है, हँसता हँसता रो पड़ता हूँ ।
लड़ने वालो! यह ध्यान रहे, मैं नही किसी से लड़ता हूँ ॥

अपनी अपनी 'रामायण' है,
अपनी अपनी 'गीता' ।
अपने अपने 'राम' यहाँ है,
अपनी अपनी 'सीता' ॥

'राम' न 'सीता' के रह पाये,
'कृष्ण' नही 'राधा' के ।
कही कही वे जनता के है,
कही कही 'राधा' के ॥

समय समय का प्यार यहाँ है,
समय समय की भाषा ।
मतलब की दुनिया है मित्रो!
पूर्ण न होती आशा ॥

जीत जीत कर हारा है कवि,
हार हार कर जीता ।
अपनी अपनी 'रामायण' है,
अपनी अपनी 'गीता' ॥

यह मेला है इस मेले में,
सरकस नाटक स्वप्ने।
अपने कभी पराये होते,
कभी पराये अपने ॥

सजी हुई दूकानो में है,
भगुर खेल खिलौने।
काल व्याध के शर सर पर है,
भाग रहे मृग छौने ॥

कोई रक्तपान करता है,
कोई आँसू पीता।
अपनी अपनी 'रामायण' है,
अपनी अपनी 'गीता' ॥

आदर्शों के खेल हो रहे,
सत्यो के घेरे मे।
प्यार स्वार्थ का सरस गीत है,
जग मेरे तेरे मे ॥

जुड़ते और टूटते जीवन,
जन्मो के फेरे मे।
नाच रहे मन नचा रहे मन,
मेले के डेरे मे ॥

लिपट कफन मे खो जाता है,
दर्जी सीता सीता।
अपनी अपनी 'रामायण' है,
अपनी अपनी 'गीता' ॥

यह अगारो की दुनिया है, यह तलवारो की दुनिया है।
यह माया नगरी है मित्रो, यह अधिकारो की दुनिया है ॥
यह राजाओ का मेला है, दुखियो का कोई मूल्य नही।
जो जीना नही जानता है, उसको सुख मिलता नही कही ॥

जी सका वही जो निडर यहाँ, मुर्दा है वह जो डरता है।
डरपोक ज़िन्दगी का दुश्मन, प्रति श्वास श्वास में मरता है॥
जो डरे करे वह प्यार नही, जो डरे बढाये कदम नही।
धरती को वीर भोगता है, कायर न कहीं है, अमर यही॥

कोई न किसी को कुछ देता, साहस से सब कुछ मिलता है।
जो बीज खाक में मिलता है, वह बीज डाल पर खिलता है॥
यह दुनिया उसे रुलाती है, जो हँसना नही जानता है।
जो है लातो का देव भूत! बातो से नही मानता है॥

हमने आँखों के आँसू को, अँगारा बनते देखा है।
हमने कलियो की छाती पर, भालो को तनते देखा है॥
ऐसी सुन्दरता देखी है, जो युद्धो की हुकार बनी।
वह दबी हुई पीडा देखी, जो नागिन बन फुँकार बनी॥

पैसे वाले प्यासे राजा, आँसू से खेला करते है।
जाने कितने 'रावण' जग मे, भोली 'सीताएँ' हरते है॥
'सीता' का आँसू गिरता है, सोने की लका जलती है।
नारी जीवन देने वाली, नारी जीवन को छलती है॥

नारी विभीपिका की बत्ती, नारी कलिका नारी काली।
नारी सागर में दावानल, नारी जीवन की उजियाली॥
नारी नौका तलवार मित्र! नारी तलवार दुधारी है।
नारी दीपिका चेतना की, विधि की वेदना उभारी है॥

जग रूप का जग अर्थ का,
जग स्वार्थ का जग प्यास का।
जग काम से शासित सुमन,
जग है पतंगा हास का॥

अपना यहाँ मतलब प्रमुख,
अपने पराये का जगत।
कविता खिलौनो की खुशी,
तन है अनत मन है अनत॥

प्यारे सभी न्यारे सभी,
कुछ है अभी कुछ है अभी।
वे अब नही अपने रहे,
जो श्वास थे अपने कभी ॥

मन दास अपनी प्यास का,
मन घर हवा में ताश का।
जग रूप का, जग अर्थ का,
जग स्वार्थ का जग प्यास का ॥

इतिहास के हर पृष्ठ पर,
कुछ श्वेत है कुछ श्याम है।
कुछ मित्र! 'दुर्योधन' यहाँ,
कुछ धनुर्धारी 'राम' है ॥

कुछ शक्ति 'सीता' सी यहाँ,
कुछ भक्ति 'मीरा' सी यहाँ।
जग विविधताओ का सुमन,
कुछ गुण यहाँ कुछ गुण वहाँ ॥

नाता यहाँ है प्यास का,
नाता यहाँ है श्वास का।
जग रूप का, जग अर्थ का,
जग स्वार्थ का जग प्यास का ॥

तृष्णा यहाँ है तख्त की,
रगीनियाँ है रक्त की।
कोई दुखी कोई सुखी,
सब खूबियाँ है वक्त की ॥

राजा कभी बन्दी बने,
बन्दी कभी राजा बने।
तन पर कभी बरसे सुमन,
सिर पर कभी भाले तने ॥

हर श्वास में संघर्ष हैं,
पैसा सगा है पास का।
जग रूप का, जग अर्थ का,
जग स्वार्थ का जग प्यास का ॥

हमने वे दाता देखे है, जो विना दिए भी दाता हैं।
जो भक्त 'विभीपण' कहलाते, जग मे ऐसे भी भ्राता हैं॥
ऐसे राजा भी देशभक्त, जो देश भोगते रहते हैं।
ऐसे मोती भी होते हैं, जो आँसू वन कर वहते है॥

मुझसे मेरी कविता कहती, क्या मूल्य मित्र[1] वलिदानों का ?
जव पतन कही वढ जाते है, क्या मोल वहाँ उत्थानो का॥
क्या राजा जनता और प्रजा, क्या नेता क्या दानी रानी।
सव अपनो अपनो के स्वार्थी, सव अपनो अपनो को दानी॥

अन्यायो पर अधिकार टिके, अत्याचारो ने राज्य छले।
लूटे है देश हिसको ने, ये शीश कटे वे दीप जले॥
आँखो से वहते पानी पर, खुशियो के जलसे होते है।
ऐसा भी शासन देखा है, जिसमे उत्सव भी रोते है,।

रोती देखी है मुस्काने, रोते देखे है खिले फूल।
रोते देखे है रूप रग, रोती है यादो भरी भूल॥
जो रुला रुला कर हँसते थे, उनको भी रोते देखा है।
हमने आँखो के आँसू से, घावो को धोते देखा है॥

उलटी गंगा वहती देखी, अपमान प्यार का देखा है।
जो जीत कत्ल कर देती है, वह वार हार का देखा है॥
यह मत समझो रोते रोते, दुर्वल प्राणी मर जाते है।
आँखो के आँसू किसी रोज, अगारे वन कर आते हैं॥

माता 'सीता' के आँसू ने, सोने की लका फूँकी थी।
जव वहुत वहुत रोयी धरती, 'दुर्गा' न निमिप को चूकी थी॥
सहते सहते वहते वहते, आँसू ओले वन जाते है।
ठंडी पीड़ा से जम जम कर, आँसू ओले वन जाते हैं॥

हमें मत रुलाओ हमें मत सताओ!

बहुत रो चुके हैं न आँसू रहे है।
सभी के बहुत बार ताने सहे है॥
हँसे जब कभी भी तभी रो पडे हम।
नया गीत देता रहा है हमे गम॥

हमारी कहानी हमे मत बताओ।
हमें मत रुलाओ हमे मत सताओ॥

किसी के लिये दीप हमने जलाये।
किसी के लिये गीत हमने बनाये॥
किसी को मनाते रहे रात दिन हम।
कथाएँ बनाते रहे रात दिन हम॥

कलम छीन लो तुम न पीडा जगाओ।
हमे मत रुलाओ हमें मत सताओ॥

मिलेगा तुम्हे क्या किसी को रुलाकर।
रहो पास ही दुःख बीते भुलाकर॥
नयी जिन्दगी दो पलायन हटालो।
बचालो हमे हर बला से बचालो॥

न आँचल हटाओ न छाया हटाओ।
हमें मत रुलाओ हमे मत सताओ॥

दुनिया यथार्थ पर चलती है, आदर्श पढाये जाते है।
मन की पुस्तके नही खुलती, वाणी से कुछ कुछ गाते है॥
विश्वास और आशाओ में, संघर्ष रात दिन होते है।
हमको भी तो यह पता नही, हम हँसते है या रोते है॥

हर युग प्यासा हर मन प्यासा, पी पी कर प्यास बढा करती।
मर जाते है लडते लडते, पर इच्छा कभी नही मरती॥
अपनी इच्छा सब से ऊपर, अपनी आशा सब से आगे।
जिस तन का नही भरोसा कुछ, उस तन से दूर नही भागे॥

माना संघर्षों में जीवन, तम में प्रकाश की तरह रहें।
ऊपर अज्ञान-पंक से हों, भंगुर लहरों में नहीं वहें॥
ऐसे बहते जायें जैसे, गंगा की धारा वहती है।
हम दुनिया में इस तरह रहे, जिस तरह कहानी रहती है॥

हम आग बने तो सूरज हों, हम प्यास बनें तो पानी हों।
यदि 'इन्द्र' कभी भिक्षा माँगे, तो हम 'दधीचि' से दानी हों॥
बरसे तो बंजर भूमि फले, सूखे बागो मे फूल खिले।
तन मन सुरभित हो जन जन का, हम खिले फूल की तरह मिलें॥

छाया फल फूल युक्त तरु हों, हर हारा थका पथिक सुख ले।
भगवान उसी को कहते हैं, जो हर पीड़ित जन के दुख ले॥
भगवान वीर को नमस्कार, जो केवल ज्ञान स्वरूप तीर्थ।
उनके गुण गाता बार बार, जो सब के ध्यान स्वरूप तीर्थ॥

जब प्यास कमल की बहुत बढ़ी, सूरज दर्शन देने आये।
जब अन्धकार ने अति करदी, तीर्थंकर के दर्शन पाये॥
जब दुनिया मद में सोती थी, वे योगी जग को जगा गये।
जो जलता गलता नही कभी, वह पौदा जग में लगा गये॥

नही सत्य जलता नही सत्य गलता।
नही चाँद गलता नहीं सूर्य ढलता॥

टिकी है धरा सत्य की आरती से।
मुखर भूमि है सत्य की भारती से॥
मिला शक्ति में सत्य दुर्गास्वरूपा।
मिली भक्ति मे शक्ति अद्‌भुत अनूपा॥

उधर है सवेरा जिधर मित्र चलता।
नही सत्य जलता नही सत्य गलता॥

मुखर सत्य के शब्द है सागरो में।
भरा है अमृत सत्य की गागरों में॥
दिया प्यार के दीप ने गीत जग को।
लिया प्यार के दीप ने जीत जग को॥

शलभ प्रीति के दीप पर मित्र[1] जलता।
नही सत्य जलता नही सत्य गलता॥

जलज के कथन रश्मियाँ चूमती है।
भ्रमर झूमते तितलियाँ घूमती हैं॥
धरा तप रही है गगन तप रहा है।
जलज वीर के नाम को जप रहा है॥

अथक आग में तप रहा नभ न जलता।
नही सत्य जलता नही सत्य गलता॥

## संताप

उजाली तमिस्रा बनी ताप फैले।
मधुर वोल थे किन्तु थे भाव मैले ॥

न कोई किसी का कहा मानता था।
न जन देश के धर्म को जानता था ॥
न यह जानता था कहाँ जा रहा हूँ।
न यह था पता उसको क्या खा रहा हूँ ॥

वढ़ा काम का पैर अभिशाप फैले।
उजाली तमिस्रा वनी ताप फैले ॥

गिरे आँसुओं से लगी आग ऐसी।
वताना कठिन है लगी आग जैसी ॥
वने श्वास ज्वाला वनी पीर बिजली।
दृगों से वहकती हुई आग निकली ॥

वढा आपसी वैर अभिशाप फैले।
उजाली तमिस्रा वनी ताप फैले ॥

न भय था किसी को न थी लाज वाकी।
अराजक प्रजा थी न था राज वाकी ॥
महा नाश की आग मे जल रहे थे।
न कर्तव्य के फूल-फल फल रहे थे ॥

वढे पाप के पग हुए पुण्य मैले।
उजाली तमिस्रा वनी ताप फैले ॥

न बेटी कहा बाप का मानती थी।
न माता पतन की व्यथा जानती थी॥
न शासक प्रजा के लिये जी रहा था।
नशे में शराबी बहुत पी रहा था॥

घमडी नृपों के तृषित दाप फैले।
उजाली तमिस्रा बनी ताप फैले॥

प्रजातन्त्र के ताजधारी बढे थे।
गगन में ध्वजा थी गढे में गडे थे॥
फलों को स्वयम् पेड़ ही खा रहे थे।
सुपथ तज कुपथ पर बढे जा रहे थे॥

बरसने लगी आग सताप फैले।
उजाली तमिस्रा बनी ताप फैले॥

गणतन्त्र दुखी हो रोता था, शासन था बेईमानी का।
मत मूल्य घटाओ तप्त मित्र! आँखो से बहते पानी का॥
जो आँसू दिखा दया माँगे, धिक्कार उसे सौ बार मित्र!
अंकित न तूलिका कर पाई, आँसू से अधिक पवित्र चित्र॥

मैं तो आँसू का गायक हूँ, कहता हूँ कथा आँसुओ की।
धरती अम्बर की तख्ती पर, लिखता हूँ व्यथा आँसुओ की॥
कविता आँसू की भाषा है, आँसू दुःखो का मोती है।
आँखो से निकले आँसू में, पीडा की थाती होती है॥

मैने आँसू को समझाया, मत निकल बावले आँखो से।
गालों पर अंकित भाव हुए, मैं चला घाव ले आँखो से॥
आँखो ने मुझको अलग किया, गालो ने मुझको अलग किया।
दुनिया की ठोकर खा खाकर, अपनी ठोकर को चूम लिया॥

मैं आँसू गिरा नयन से जब, तब रुका न रोके गालो के।
मैं चित्र दिखाता चला गया, कवियो के मन के छालो के॥
मुझको चुम्बन की चाह नही, इच्छा न मुझे तुम अपनाओ।
इच्छा है आँसू के आगे, तुम आँसू की गाथा गाओ॥

कवि ने आँसू की कथा सुनी, कवि आँसू की वन गया कथा।
कवि आँसू का वन गया गीत, कवि आँसू की वन गया व्यथा॥
कविता नारी का आँसू है, कविता आरती भारती की।
कविता जो बुझती नही कभी, पूजा है दग्ध आरती की॥

अर्चना रो पड़ी थी जिस दिन, उस दिन से कवि की बोली है।
कविता आँखो की धारा है, कविता माथे की रोली है॥
कविता में अद्भुत क्रान्ति मित्र! कविता में वढते हुए चरण।
कविता में सूरज और शान्ति, कविता मे जय सन्तरण वरण॥

पुरानी कथा में नयी यह व्यथा है।
हँसा कर रुलाना पुरानी प्रथा है॥

किसी ने हँसाया किसी ने रुलाया।
किसी ने वुलाया किसी ने भुलाया॥
कहानी किसी की लिखे जा रहा हूँ।
रुँधे कंठ से रात दिन गा रहा हूँ॥

न कविता लिखी मित्र! सागर मथा है।
पुरानी कथा में नयी यह व्यथा है॥

सुखों के लिये दुःख सबने उठाये।
उठाये वहुत दुःख मोती लुटाये॥
अभी भी वही राग है जो कभी था।
गया वह कभी का यहाँ जो अभी था॥

किसी की व्यथा है किसी की कथा है।
पुरानी कथा में नयी यह व्यथा है॥

व्यथा है वहाँ की जहाँ सर्व सुख थे।
जहाँ स्वर्ण मन्दिर जहाँ स्वर्ण मुख थे॥
वहाँ आज खँडहर वहाँ भूत वासा।
वहुत दुःख देता सताना जरा सा॥

कथा की व्यथा है व्यथा की कथा है।
पुरानी कथा में नयी यह व्यथा है॥

सुन्दरता मुर्ख हुई क्षण में, गंगाजल में ज्वाला धधकी।
लग गई आग फुलवाडी मे, रोती रोती वाला भभकी॥
अंगार प्यार के मचल उठे, फुँकार उठी अलके काली।
आँखो की विजली कौंध उठी, दहकी गालो की उजियाली॥

विन्दी वहकी सुर्खी दहकी, प्यासी अँगड़ाई मचल उठी।
प्यासे चावो की आग लिए, यौवन की पहली फसल उठी॥
वह हँसी उठी जो रोती थी, वह चाह उठी जो आग वनी।
वह आह राह से अलग चली, जो चन्द्रोदय को दाग वनी॥

दीपक की लौ कँपकपा उठी, चूड़ियाँ दुखी झनझना उठी।
भिनभिना उठी कोमल नागिन, नर्तन ध्वनियाँ दनदना उठी॥
लो देखो मधुर चाँदनी मे, काली वरसाते घिर आई।
तवलों की वहकी थापो में, तलवारे जहाँ तहाँ छाई॥

आक्रमण हुआ वैगाली पर, हत्याओ से धरती दहली।
सोने के घर होगये राख, पल मे जलती कविता फैली॥
शृंगार रौद्र रस मे वदला, हो गया हास वीभत्स महा।
निर्वेद शान्त रस से कवि ने, भारत माता का दर्द कहा॥

जव भीपण आग वरसती है, तव व्यर्थ 'विदुर' का शोर मित्र।
जव पाप पाप वस पाप पाप, रोती है तव गगा पवित्र॥
भर गया पाप से प्यासा घट, अपने विनाश की सुध न रही।
जो सुरभि अमृत की सरिता थी, वन गई जहर की नदी वही॥

सामाजिकता हो गई नष्ट, मच गई घोर मारा काटी।
चौराहो पर श्मशान वने, लागो ने घर की छत पाटी॥
जो सुन्दर सुन्दर कलियाँ थी, उनको भौंरो ने लूट लिया।
कुछ आत्मघात कर शान्त हुई, कुछ का कुत्तो ने खून पिया॥

हर दिशा रक्तिम दशा कैसी भयकर।
युद्ध आपस मे हमारा आग मे घर॥

हम नशे में दीप घर के बुझ रहे है।
टूटती दीवार पर आँसू बहे है॥
अहम् की तलवार ने घर को तरासा।
ध्वस करता घाव सीने का जरासा॥

सृजन रोता था प्रलय की वीचियो पर।
हर दिशा रक्तिम दशा कैसी भयंकर॥

आक्रमण का जोश विष बरसा रहा है।
प्रजा को शासक सुखी तरसा रहा है॥
भूल कर भगवान को भोगी बने थे।
छोड़कर व्रत प्यार सब रोगी बने थे॥

खा रहा था भाग्य अपने आप ठोकर।
हर दिशा रक्तिम दशा कैसी भयकर॥

नृत्य गानो तक न रण के घोप पहुँचे।
रूप के तल मे हमारे कोप पहुँचे॥
राजपुत्रो ने लुटाया देश प्यारा।
यह जुआ कैसा कि हमने देश हारा॥

द्वार पर दुश्मन वहकती फूट घर घर।
हर दिशा रक्तिम दशा कैसी भयंकर॥

राजा 'चेटक' के द्वार घिरे, 'चम्पा' पर घन घिर घिर आये।
'दधिवाहन' 'चेटक' के सिर पर, 'कौशाम्बी' के वादल छाये॥
'कौशाम्बी' नृप चढकर आया, दल बल ले आया 'शतानीक'।
उन पर सहसा आकाश गिरा, नभ तक जिनकी थी खडी सीक॥

वे चपक हाथ से छूट पडे, जो छलक रहे थे अधरो पर।
उन बाँको पर बिजली टूटी, जो बहक रहे थे नखरो पर॥
मर्यादा हत थरथरा उठे, आक्रान्ता की तलवारो से।
दीपों से घर को आग लगी, नौका डूबी पतवारो से॥

जो शासन पाकर सो जाते, उनकी फिर खैर नही रहती।
भीषण ज्वाला वन जाती है, धरती पीडा सहती सहती।।
बढ़ता जाता था युद्धानल, धूँ धूँ 'वैशाली' जलती थी।
भारत माता वह दृश्य देख, रह रह आँखों से ढलती थी।।

अपहरण हुए वालाओ के, 'वैशाली' मे मच गई लूट।
डस गई देश के गौरव को, गतिहीन अधर्मी घोर फूट।।
धर्मों के खूनी झगड़ो मे, धर्मान्ध होश मे नही रहे।
दिन में न दीखता हो जिनको, सूरज उनसे क्या वात कहे?

जातियाँ अनेक हिन्दुओ में, हिन्दू को खाये जाती थी।
पूजाये झगड़ा करती थीं, अपने को श्रेष्ठ वताती थी।।
कुछ चन्दन-चर्चित माथों पर, वल थे गर्वीली भाषा के।
परदेशी पृष्ठ जलाते थे, भारत माँ की अभिलाषा के।।

वे लपटे फैली भारत में, सद्ग्रन्थ जले सद्कर्म जले।
क्या करे कहो विश्वास मित्र, जव घर मे घुस कर मित्र छले।।
हमने जिस पर विश्वास किया, उसके ही फूल वने भाले।
फूलों के वदले शूल मिले, फूलो ने फोड़ दिये छाले।।

धर्म धर्म के युद्ध मे,
लगी हुई है होड़।
धर्म धर्म वे चीखते,
धर्म चुके जो छोड़।।

मरघट वोला चीखकर,
वोला कब्रिस्तान।
मर कर मिट्टी वन गये,
मिटा नहीं अज्ञान।।

हम तुम सव इसान हैं,
गाते 'मीर' 'कवीर'।
जीते समय वजीर हो,
मरते समय फकीर।।

हँसी उड़ाकर कह गई,
फूट कलेजा चीर।
वेश्या नाची चौक में,
फूट गई तकदीर॥

राजनीति वेश्या नयी,
गई साधु को मार।
हरा गई हर चाल से,
दिखा दिखा कर प्यार॥

राजनीति ज्वाला प्रखर,
राजनीति तलवार।
बड़े बड़े नेता मरे,
राजनीति से हार॥

नभ से तारा टूट कर,
बना शून्य का गीत।
गीत न बीतेगा कभी,
हम जायेंगे बीत॥

टूटी चूड़ी ने कहा,
दूल्हा गया विदेश।
शेप जिन्दगी तप बनी,
प्रियतम ज्योति विशेप॥

जीने मे आनन्द है,
मरने में आनन्द।
फूल जिन्दगी के चरण,
जलज मरण के छन्द॥

अपने अपने दिन यहाँ,
अपनी अपनी रात।
अपनी अपनी कथा है,
अपनी अपनी बात॥

धरती सब की धूलि है,
क्या राजा क्या रंक।
शीतल सुधा मयक मे,
धुलता नही कलक ॥

इतिहास! बोल इन महलो को, किसने स्याही से पोत दिया।
'वैशाली' सुधा सरोवर थी, हमने क्यो विष का स्रोत लिया ॥
कैसे मदान्ध थे वे राजा, जो अमृत बूंद से डसे गये।
ध्वसो से प्रश्न धरा करती, क्यो अपने हाथो ग्रसे गये ॥

इसलिये कि अपने ही मन ने, वन साँप हमे ही काट लिया।
इसलिये कि अपने खड्गो ने, अपनो ही का सर काट लिया ॥
दीपो ने घर को जला दिया, कूपों ने पानी सोख लिया।
जो अपने थे उन मित्रो ने, सीने मे चाकू भोख दिया ॥

मच गई लूट वैशाली में, पत्नियाँ लुटी बेटियाँ लुटी।
रानियाँ लुटी बाँदियाँ लुटी, सिन्दूर पुछे महँदियाँ छुटी ॥
कितनी ही स्वच्छ नीरजाएँ, जीवित जल गई चिताओ में।
कुछ फूलो मे दर्शन देती, कुछ दीपित दीपशिखाओ में ॥

'चन्दना' सुपुत्री 'चेटक' की, पहले सूरज की उजियाली।
वेले की सौरभ भरी कली, विजली के फूलो की लाली ॥
आशाओ की साधना मधुर, स्वर लहरी अमर बाँसुरी की।
सुरवाला सी शुचि कन्या पर, असि टूटी घोर आसुरी की ॥

'कौशाम्वी' का कोई पिशाच, 'चन्दना' चाँदनी पर झपटा।
मानो 'रावण' फिर 'सीता' पर, मद में अन्धा होकर झपटा ॥
वल से कन्या का हरण किया, मानव मे मानवता न रही।
जिससे लाचारी डरती थी, लाचार पिता हो गया वही ॥

सैनिक ने चेटक कन्या को, चौराहे पर नीलाम किया।
कुछ मुद्राओ के वदले मे, उस रूपराशि को वेच दिया ॥
वह श्रेष्ठि हृदय से कोमल था, वन गया कली का धर्म-पिता।
'चन्दना' जल रही थी तिल तिल, वात्सल्य सिन्धु से वुझी चिता ॥

प्यार! तेरे रूप कितने है!
गगन में नक्षत्र जितने है ॥

प्यार में माँ के करोड़ों तार होते हैं।
एक डाली से हजारो हार होते हैं ॥
प्यार ही में सार है संसार है झूठा।
लहर तट से कह रही है प्यार है झूठा ॥

रूप! तेरे भूप कितने है!
प्यार! तेरे रूप कितने हैं!!

प्यार गणिका बेचती बाजार में गा गा।
प्यार गायक बेचता दरबार में गा गा ॥
प्यार यम से प्राण पति के छीन कर लाया।
प्यार 'तुलसी' ने किया था 'राम' को पाया ॥

प्यास! तेरे कूप कितने है!
प्यार! तेरे रूप कितने है!!

नौ रसो में प्यार की भाषा भ्रमण करती।
भावना जग में बहुत से रूप है धरती ॥
प्यार जलते दीप का जल जल जलाता है।
प्यार का सूरज हिमालय को गलाता है ॥

प्यार के आदर्श चिकने हैं।
प्यार! तेरे रूप कितने है ॥

'चन्दना' सूर्य की प्रथम किरण, सुरभित चपला जैसी आई।
वह सुन्दरता की ज्योतित लो, दो चमकीले आँसू लाई ॥
वह रूप सुधा की सरल लहर, सेठानी को विप-बुझी लगी।
कड़वी कडवी रस भरी लगी, तलवार लगी निधि प्रेम पगी ॥

उजियाली लगी निशा जैसी, गगा जल पकिल जल समझा।
जो छल-छिद्रो से छुई न थी, ईर्ष्या ने उसको छल समझा ॥
यह जग काजल का कमरा है, स्याही से बचना सरल नही।
ऐसा कोई भी अमृत नही, जिसमे होता है गरल नही ॥

यह सच है रूप रूप ही है, सौतिया डाह में वही गरल।
यह माना जहर जहर ही है, पर मित्र! चाह मे वही सरल॥
लगता है कभी अमृत में विप, विष मे भी अमृत-धार होती।
यह दुनिया है इस दुनिया में, कोई हँसती कोई रोती॥

'चन्दना' एक दिन पिता-तुल्य, श्रेष्ठी के हाथ धुलाती थी।
लम्बे कच भू पर बिखर गये, तनुजा श्यामला झुलाती थी॥
बिखरे बालो को उठा सेठ, बोले बालो को बाँध बाल!
यह दृश्य आग सा भभक उठा, सेठानी को डस गया काल॥

नागिन सी फुकारी, बोली, ये प्यार-भरी रस की बाते।
तुम भ्रमर कली पर गूँज रहे, चुपके चुपके चलती घाते॥
'चन्दना' रहेगी कारा में, तुम इसको देख न पाओगे।
ये प्रीति भरे रस भरे गीत, देखूं तुम कैसे गाओगे?

जजीरो मे 'चन्दना' बँधी, बन्दिनी कुमुदनी कारा में।
काली नागिनी फुँकार उठी, गगा की निर्मल धारा में॥
बन्दीगृह मे वे कष्ट दिये, जो कहते कहते कह न सका।
पीडा निर्दोष 'चन्दना' की, मै बिना कहे भी रह न सका॥

बन्धन कसक रहे है।

हर प्यास छटपटाती।
हर आँख डबडबाती॥
किसको पता किसी का।
जग नाम है इसी का॥

हम सब भटक रहे है।
बन्धन कसक रहे है॥

पीड़ा चसक रही है।
क्रीड़ा कसक रही है॥
मिलता नही किनारा।
बेकार हर इशारा॥

आँसू भटक रहे हैं।
बन्धन कसक रहे है।।

सब मे कथा व्यथा है।
रोना यहाँ वृथा है।।
दुख सुख कहानियाँ है।
बन्दी जवानियाँ है।।

कुछ वृण चसक रहे हैं।
बन्धन कसक रहे हैं।।

बन्धन बनी जवानी।
बन्धन बनी कहानी।।
जल मे लहर दुखी है।
बल में लहर दुखी है।।

बन्धन खटक रहे है।
बन्धन कसक रहे हैं।।

कारागृह में 'चन्दना' सुखी, दुखो को सुख कह व्रत करती।
पीडा भी कितनी प्यारी है, आँखो में कविताएँ भरती।।
दु:खो की ज्योति चन्दना से, कारा की दीवारे बोली।
तुम मे चन्दन से अधिक सुरभि, दीवारे मीनारे बोली।।

यदि दुख न होते धरती पर, कविता का जन्म नही होता।
धरती पर अगर न तम होता, सविता का जन्म नही होता।।
पहले काले घन घिरते है, पीछे होती बरसात मित्र!
विकराल व्याल बन जाता है, हर आँसू का जीवन पवित्र।।

हमने आँसू बनता देखा, मुस्कानो का सौरभ पवित्र।
वर्णाङ्का में भर कर लाया, आँखो से बहता हुआ इत्र।।
कारा के कूले पर कोई, सुकुमारी भजन बनाती थी।
चावो के कमल चढाती थी, भावो के दीप जलाती थी।।

देखो 'चन्दना' बन्दिनी की, आँखें आरती उतार रही।
जो केवल ज्ञान चला आये, पूजा से उसे पुकार रही॥
रोमावलियो के अक्षत धर, कहती आओ अद्भुत अनन्त।
मानस के मधुर बदाम चढा, कहती आओ सुरभित बसन्त॥

तप के फल-फूल चढाती हूँ, तीर्थंकर! आओ आ जाओ।
मुझ प्यासी पीड़ित की पूजा, उद्धार चाहती प्रभु! आओ॥
भगवान कभी तो आओगे, विश्वास बनाये बैठी हूँ।
तुम आओगे इस आशा में, दो दीप जलाये बैठी हूँ॥

दो आँखे अर्घ्य चढाने को, आकुल है रह रह बरस रही।
जो केवल ज्ञान निधान दया, उसके दर्शन को तरस रही॥
जो मुक्त सभी इच्छाओ से, वे मुक्तात्मा दर्शन देगे।
'चन्दना' चाँद को दाग लगा, धो देगे पीड़ा हर लेगे॥

प्यासी तरस रही हूँ रह रह बरस रही हूँ।
क्यो स्वाति घन न आते कब से तरस रही हूँ॥

मैं ही नही धरा का हर फूल रो रहा है।
हर बाग लुट रहा है क्या क्या न हो रहा है॥
तूफान आ रहे है घर द्वार गिर रहे है।
चारो तरफ भयकर कुछ सर्प फिर रहे है॥

जो घोर तम हटा दे उसको तरस रही हूँ।
प्यासी तरस रही हूँ रह रह बरस रही हूँ॥

पूजा तडप रही है दीपक बरस रहे है।
हर गीत है पुजारी मन्दिर तरस रहे है॥
मिट्टी पुकारती है आकाश गा रहा है।
आराध्य! अर्चना लो हर फूल ने कहा है॥

जो बाट देखती है मै वन्दना वही हूँ।
प्यासी तरस रही हूँ रह रह बरस रही हूँ॥

जो है अनन्त आभा उसको पुकारती हूँ।
मैं याद कर रही हूँ भूले सुधारती हूँ॥
मैं चाह वन्दिनी हूँ मैं राह वन्दिनी हूँ।
दो ज्ञान ध्यान आओ मैं आह वन्दिनी हूँ॥

जो नीर बन चुकी है मैं अर्चना वही हूँ।
प्यासी तरस रही हूँ रह रह बरस रही हूँ॥

प्यासी अर्चना पुकार रही, आओ तीर्थंकर आ जाओ।
दुखियो की आँखे टेर रही, हर आँसू के नायक आओ॥
आओ दुखियो के सुख आओ, आओ आलोकानन्द कन्द।
वन्दीगृह के आँसू बोले, आओ आँसू के मधुर छन्द॥

आओ दीपो का दाह देख, आओ आँसू की चाह देख।
आओ बिगडी हर राह देख, आओ कवियों की आह देख॥
शैतान सताते धरती को, प्रभु धरण धरुण कब आओगे?
मन्दिर में चोर पुजारी हैं, क्या मन्दिर नही बचाओगे?

प्रहरी मिल रहे डाकुओ से, उपवन उजाड़ते है माली।
जो बडे परिश्रम से बोये, वे तरु उखाडते हैं माली॥
उजियाली पर तम का शासन, आओ तो काली रात हटे।
हर ओर फूट हर ओर लूट, घर द्वार लुटे सर बटे कटे॥

नीलाम नारियाँ होती हैं, सुन्दरता के बाजार लगे।
अपने रक्षक अपने न रहे, वे शत्रु हुए जो रहे सगे॥
पापो से प्यास नही बुझती, शकर को काम सताता है।
जो दनुज चोर मक्कार धूर्त, वह कवि का दोप बताता है॥

रोटी न रही बोटी बिकती, चोटी न रही माला छूटी।
रक्षक भक्षक बन बैठे है, भारत माँ की किस्मत फूटी॥
उत्कोच न्यायकर्ता लेते, योगी भोगी बन खाते है।
लक्षण न रहे खाते अभक्ष्य, प्रिय देश बेचते जाते हैं॥

ओंठों पर मदिरा की बोतल, आँखो में वेश्या की स्याही।
पैनी कटार सी घुसी हुई, सीने के अन्दर मनचाही॥
जेबो में रिश्वत के बण्डल, वाणी पर भाषण के नाटक।
चाँदनी पोतते स्याही से, ये काले मन वाले शासक॥

शासक डाकू हो गये,
क्या जनता क्या प्यार।
जन जन को सुख तब मिले,
जब बदले सरकार॥

आओ तो उत्थान हो,
फैले जग में ज्ञान।
जन जन की पीडा हरो,
तीर्थंकर भगवान॥

आओ वचनामृत मिले,
मिले गया विश्वास।
ज्ञान सूर्य का उदय हो,
फैले पूर्ण प्रकाश॥

व्यक्ति नियत्रणहीन है,
कही नही है न्याय।
हाय हाय है हाय बस,
हाय हाय है हाय!!

राजनीति वेश्या बनी,
घर घर रूप अनेक।
तरह तरह के रग है,
सुख न कही है एक॥

दुनिया क्या से क्या हुई,
सगे हो गये गैर।
दीपक से घर फुक गया,
प्रीति बन गई वैर॥

बीच भंवर में नाव है,
आओ माँझी तैर।
ढोल ढोंग के बज रहे,
नही ढोल की खैर॥

देशभक्ति की आड़ में,
स्वार्थ भक्ति है मित्र!
मुकुटों की महिमा गिरी,
गिरा रेत में इत्र॥

फूलों में छिपी कटारे है, विश्वास किसी का रहा नही।
आशाओं के पर कटे पड़े, शुचि हास किसी का रहा नही॥
ऊँची ऊँची मीनारे है, पर ऊँचे ऊँचे मन न रहे।
फल फूल पेड़ भक्षण करते, भारत में नन्दन वन न रहे॥

कउए करते हैं काँय काँय, कोयल की बोली नही रही।
माथो पर स्याही के टीके, दमकीली रोली नही रही॥
ऋतुएँ आती ऋतुएँ जाती, पर ऋतुओ के फल-फूल नही।
ऐसी सरिता उमड़ी आती, जिसका कोई भी कूल नही॥

प्रतिकूल मित्र से मित्र हुए, अनुकूल एक भी वात नही।
चन्दा रो रो कर गाता है, हँसने की कोई रात नही॥
वीरता कामिनी तक ठहरी, निद्रा तक धैर्य मनस्वी है।
मदिरा की वोतल पाने तक, उपदेशक आज तपस्वी है॥

श्रद्धा का घोर अभाव हुआ, आँखो मे रही लिहाज नही।
क्या वात वडे छोटे की अव, वाकी है कही लिहाज नही॥
ये दुनिया ऐसी भ्रष्ट हुई, धर्मात्मा सन्त नही भाते।
गाते गाते थक रहे अधर, तीर्थंकर हाय नही आते॥

शैतानो से है धरा तग, दिन में भी चलना कठिन हुआ।
तम का आना आसान हुआ, दीपो का जलना कठिन हुआ॥
उत्थान रो रहा है रह रह, हँस रहा पतन परवानो पर।
जो भारत भक्त शहीद हुए, दाने न दीखते उनके घर॥

'चन्दना' तपस्या टेर रही, ऋषि मुनियों के स्वामी आओ।
इस काल कोठरी से मुझको, पद रज दे मुक्त करा जाओ॥
श्राविका तुम्हारी वन जाऊँ, आरती तुम्हारी बनी रहूँ।
तीर्थंकर पद रज सिर पर धर, भारती तुम्हारी बनी रहूँ॥

दुःखों की आवाज थी,
श्रद्धा की थी तान।
परम ज्योति को जगत में,
बुला रहा था ज्ञान॥

अंधकार जितना अधिक,
उतना अधिक प्रकाश।
बार बार बादल घिरे,
ढका नही आकाश॥

कहा शून्य ने भूमि से,
मत हो भूमि उदास।
पूर्ण ज्ञान के तेज से,
फैलेगा उल्लास॥

सागर मथन हो चुका,
भरा अमृत का पात्र।
युग युग की जय आ गई,
क्षति न रहेगी मात्र॥

पूजा के जलते दीपो से, तम मे उजियाला चमक उठा।
बन्दिनी 'चन्दना' के मन मे, विश्वास सूर्य सा दमक उठा॥
बन्दीगृह मे आशा कौधी, आशाओ के अकुर फूटे।
आँसू फुलझडियो से छूटे, कुछ फूल डालियो से टूटे॥

पूरब मे स्वर्णिम उषा खिली, प्राची मे शशि की कान्ति खिली॥
हर ओर खेलते बालक को, चित कौडी पथ पर पडी मिली।
कुछ ऐसा लगा निराशा मे, जैसे कुछ आशा आई हो।
आभास हुआ मानो गम मे, करुणा कुछ धीरज लाई हो॥

कुछ ऐसा वातावरण हुआ, मानो मनचाहा आया हो।
हर ओर लगा ऐसे जैसे, तप का उजियाला छाया हो ॥
अत्याचारो की अति होती, आँसू दीपक बन जाता है।
जब कष्ट अधिक बढ जाते है, कोई सुख देने आता है ॥

जब दु.ख सत्य को होता है, स्वाभाविक शक्ति जागती है।
बोली कविता बन जाती है, आँखों में भक्ति जागती है ॥
विश्वास कौधने लगता है, आशा उजियाला देती है।
अम्बर आँसू पी जाता है, धरती पीड़ा ले लेती है ॥

पीडित अनाथ के लिए मित्र, कोई भगवान उतर आता।
ज्वाला वर्षा बन जाती है, जब आँसू लगातार गाता ॥
जो मुक्त डाल का पक्षी है, उसको पिजरे में मत पकड़ो।
जो जकड़ा पडा भावना से, उसको रस्सी से मत जकड़ो ॥

सुकुमार भावना की सुगन्ध, चन्दन की ज्वाला होती है।
पुण्यो की कोमल कलिका मे, प्रलयंकर आशा सोती है ॥
अज्ञान अधर्मो की अति से, ज्ञानोज्ज्वल ज्योति बिखरती है।
जितनी होती है रात अधिक, उतनी ही अग्नि निखरती है ॥

प्यास में विश्वास है तो,
मत कहो वर्षा न होगी।
राग में आराध्य है तो,
है स्वयम् भगवान जोगी ॥

रूप पूजा के बहुत है, राग गाने के बहुत है।
प्यास की शक्लें बहुत है, पथ बुलाने के बहुत है ॥
रंग जीवन के बहुत है, ढंग जीवन के बहुत है।
जिन्दगी की हर अदा मे, घाव सीवन के बहुत है ॥

प्यार का सत्कार है तो,
गीत बन जाता वियोगी।
प्यास मे विश्वास है तो,
मत कहो वर्षा न होगी ॥

प्यास ने सागर बनाये, प्यास ने बादल बुलाये।
प्यास ने मन्दिर बनाये, प्यास ने गाने सुनाये।।
प्यास ने पौधे लगाये, प्यास ने आँसू वहाये।
प्यास ने गति दी पगो को, प्यास ने ये गीत गाये।।

प्यास ने दीपक जलाये,
प्यास का विश्वास योगी।
प्यास मे विश्वास है तो,
मत कहो वर्षा न होगी।।

चाह पथ की चाँदनी है, चाह पग आगे बढाती।
चाह गति की साधना है, चाह है अनमोल थाती।।
चाह है तो राह मिलती, चाह जीवन चाह जय है।
चाह कविता की किरण है, चाह वय है चाह लय है।।

चाह मे जो तप करेगा,
योग होगा वह वियोगी।
प्यास में विश्वास है तो,
मत कहो वर्षा न होगी।।

जो तप व्रत में है लीन मित्र! उसकी गति पथ बन जाती है।
आँसू वर्षा बन जाता है, प्यासी पूजा बन गाती है।।
ज्वाला से ज्योति फूटती है, पीडा से वर्षा होती है।
धरती मुखरित हो जाती है, जब दीपक की लौ रोती है।।

उपवन की हर क्यारी रोई, पृथ्वी की हर भाषा रोई।
अम्बर का हर तारा कौधा, भोगो में मानवता खोई।।
जब भोग भोग पैसा पैसा, लाखो लाखो की भाषा थी।
जब कंचन और कामिनी की, हर मद्यप को अभिलाषा थी।।

जब भूखे अस्थि-पजरों का, आमिष खाते थे मतवाले।
जब हिंसा के हाथो मे थे, तन के उजले मन के काले।।
जब शासक झूठ बोलते थे, जब शासित आहे भरते थे।
जब आपाधापी के युग मे, सब श्वास श्वास मे मरते थे।।

जब राग छिड़े थे यौवन के, जब नाच घरों में क्रीड़ा थी।
जब बाजारों की महिमा थी, जब नही किसी को व्रीड़ा थी॥
आचरण भ्रष्ट मनचाही कर, कलियों को धोखा देते थे।
अपनी अपनी अँगड़ाई थी, दुख देते थे सुख लेते थे॥

भारत माता का होश न था, कर्त्तव्यभ्रष्ट बल खाते थे।
शृगार राग में फँसे हुए, प्रातः पंकज ढल जाते थे॥
तब एक अनोखा वीर युवक, धुन में गाता था वीत राग।
दुनिया अज्ञान तिमिर में थी, वह जगा रहा था जाग जाग॥

'त्रिशला' माँ ने पथ रोक कहा, रुक जा मैं तेरा करूँ ब्याह।
कह दिया वीर ने माता से, मुझको न ब्याह की तनिक चाह॥
बंधन मुझको स्वीकार नही, मैं केवल ज्ञान चाहता हूँ।
माँ मुझे तपस्या करने दे, हर माँ का मान चाहता हूँ॥

मैं ज्ञान चाहता हूँ उत्थान चाहता हूँ।
माँ देश का तुम्हारा सम्मान चाहता हूँ॥

मानव भटक रहा है धरती तड़प रही है।
जो आज आदमी है क्या आदमी यही है?
इंसान आज माता! शैतान हो गया है।
इस शोर में बिचारा भगवान खो गया है॥

मैं वीत राग गा गा इंसान चाहता हूँ।
मैं ज्ञान चाहता हूँ उत्थान चाहता हूँ॥

रोको न मार्ग मेरा, मैं सत्य चाहता हूँ।
माँ! मोह जाल तोड़ो, कुछ अन्य चाहता हूँ॥
मैं जाल तोड़ जागा, माँ! बेड़ियाँ न डालो।
जंजाल जाल सारे, इस ओर से हटा लो॥

जिसका न अन्त होता वह ज्ञान चाहता हूँ।
मैं ज्ञान चाहता हूँ उत्थान चाहता हूँ॥

जो साथ चल रहा है, वह देह तक न मरा।
मैं ज्योति बन गया हूँ, माँ! त्याग कर अँधेरा॥
माँ! तुम अमर अहिंसा, मैं पुत्र ज्ञान तेरा।
माँ! वीर सुत तुम्हारा, हर देश का सवेरा॥

मैं गोद में तुम्हारी भगवान चाहता हूँ।
मैं ज्ञान चाहता हूँ उत्थान चाहता हूँ॥

# विरक्ति

क्या कचन क्या कामनी,
क्या सत्ता क्या तख्त।
दुनिया से बँधता नही,
ज्ञानी वीर विरक्त॥

मित्र चीखता जोर से,
खड़ा चिता के पास।
प्यारे से प्यारा जला,
अन्त चिता में वास॥

दु:ख न जिसके अन्त में,
वह सुख है निर्वेद।
मित्र विना निर्वेद के,
कदम कदम पर खेद॥

जो धरती के दीप हैं,
जो अम्बर में मित्र।
मेरे मन के कमल हैं,
उनके चरण पवित्र॥

चरण चिह्न जलजात हैं,
वरद हस्त पतवार।
मेरे माँझी सन्तरण,
नाव करेंगे पार॥

बात बात में झूठ है,
बात बात में राड़।
फिर भी अपने सगे वे,
जो प्यारे तरु ताड़॥

मित्रों के बाजार में,
सस्ती अपनी जान।
बिना दाम के बिक गये,
फिर भी हुआ न ज्ञान॥

नित दुष्टा के साथ जो,
उनके मुर्दा हाल।
दुष्टा का काटा हुआ,
मर जाता तत्काल॥

साँपन यदि काटे कभी,
बच सकते है प्राण।
नारी यदि नागिन बने,
कही नही हैं त्राण॥

हाय हाय ससार है,
काँय काँय ससार।
यहाँ स्वार्थ के मित्र सब,
यहाँ कहाँ है प्यार?

दोस्त न अपना एक भी,
प्यार प्यार मे वैर।
समय पडा तो हो गये,
सगे सहोदर गैर॥

पानी प्यासा आँखे प्यासी, सरिताएँ दुखी किनारो में।
होते है शूल विचारो मे, होते है फूल विचारो मे॥
उत्थान कर्म से होते है, उत्थान विचारो से होते।
खिलते है कमल पक मे भी, दुखो मे वीर नही रोते॥

तम पर प्रकाश का राज अमर, सूरज न आग से जलता है।
चाहे जितना भी बर्फ गिरे, सन्तों का सत्य न गलता है॥
जब अन्धकार की अति होती, तब शान्त प्रकाश चमकता है।
बिजली जब कही कड़कती है, ऊँचा आकाश दमकता है॥

बिजली कौंधी आँधियाँ उठी, तन के मन के तूफान उठे।
भूचाल उठे धरती काँपी, प्यासी पीड़ा के गान उठे॥
सूरज में ज्वाला जल जैसी, चन्दा में ज्वाला होती है।
फूलों में साँपों को देखा, साँपों मे बाला रोती है॥

हँसने वालो को पता नही, रोने में कितना पानी है।
यदि आज दुःख कल सुख भी है, यह दुनिया आनी जानी है॥
मनमानी करने वालो को, कल की होनी का पता नही।
बढ़ता है जितना जहर जहाँ, होता है उतना अमृत वही॥

हर जगह दिवस हर जगह रात, हर जगह जीत हर जगह हार।
हर जगह वैर की ज्वाला है, हर जगह प्यार की सुधा धार॥
हर मन साधू हर मन पापी, फूलो से काँटे पृथक् नही।
सुख अभी यहाँ सुख अभी वहाँ, दुख अभी यहाँ दुख अभी कही॥

यह नहीं जानता है कोई, कल किस पर पर्वत टूट गिरे।
कब किसका भाग्योदय फल दे, कब हाथो से मणि छूट गिरे॥
इस दुनिया का कुछ पता नही, कब राजा बन्दी बन जाये।
मर गये प्रतीक्षा मे जिनकी, वे मित्र मृत्यु पर क्या आये?

प्रतीक्षा किसी की चली मौत आई।
जिसे चाहते थे, न लाई न लाई॥

न लाई उसे जो हमारी उजाली।
मिलेगा यहाँ क्या खड़े हाथ खाली॥
गले लग गई वह गई जिन्दगी सी।
मिली मौत हम को नई जिन्दगी सी॥

नही अन्त जिसका न वह चीज लाई।
प्रतीक्षा किसी की चली मौत आई॥

नही अन्त है सत्य का साधना का।
नही अन्त है मित्र आराधना का॥
नही प्यास का अन्त होता कभी भी।
न अभ्यास का अन्त होता कभी भी॥

अँधेरा बहुत है उजाला न लाई।
प्रतीक्षा किसी की चली मौत आई॥

शुभे! रूप से रोशनी चाहता हूँ।
अमर कूप से रोशनी चाहता हूँ॥
उसे चाहता जो सभी का सहारा।
उसे चाहता जो न हारा न हारा॥

न क्यो वीर की जीत के गीत लाई।
प्रतीक्षा किसी की चली मौत आई॥

जिसकी प्रतीक्षा है उसको, गा गा कर मित्र बुलाता है।
जो मेरे गीतो का राजा, वह मुझको नही भुलाता है॥
मैं छोड़ चुका जग के वैभव, 'त्रिशला' सुत के पग पूज रहा।
मै वह लिख लिखकर गाता हूँ, जो महावीर ने कभी कहा॥

मैं रूप तृषा से दूर हटा, प्यासा पुकारता वीर वीर!
मै हर भूखे के लिये अन्न, मैं हर प्यासे के लिये नीर॥
यह ज्ञान लिया उस योगी से, जो केवल ज्ञान ध्यान ईश्वर।
जो सर्वोदय जो पूर्णोदय, जो अद्‌भुत देह दान ईश्वर॥

जो पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर है, जो साध्य साधना का सागर।
जो हर पथ का उजियाला है, जो सुन्दर सुधा भरी गागर॥
गागर मे सागर महावीर, आँखो मे अद्‌भुत उजियाला।
वह तुग हिमालय तप पूत, वह परहित तप करने वाला॥

वह नई सुवह, वह सरस शाम, वह निर्मल गगा की धारा।
वह धरती पर है धरा रूप, वह अम्बर मे है ध्रुव तारा॥
वह हर प्यासे के लिये नीर, वह काल भुजगो को चन्दन।
उनका फूलो से आराधन, उनका गीतो से अभिनन्दन॥

उनकी पूजा के लिये फूल, उनके पद चिह्नों के लाया।
मैं त्याग मोह माया ममता, उनकी पूजा करने आया ॥
उनका जीवन उनकी बोली, उनकी गतिविधि का उजियाला।
उनके मन्दिर का दीप बना, मेरा यह पापी मन काला ॥

मैं कृषक और वे हरे खेत, मै श्रमिक और वे महल बड़े।
मैं तृषित कलम वे सिद्ध काव्य, मै दूर और वे पास खड़े ॥
मैं पंकज वे आलोक किरण, मै हूँ अपूर्ण वे पूर्णोदय।
वे शान्त धीर गंभीर ज्ञान, मै अस्त निलय वे सर्वोदय ॥

मित्रो! इस संसार में,
सबको भाते भोग।
भोग न भाते है उसे,
जिसको प्यारा योग ॥

सदा यहाँ रहना नही,
सदा न यह संसार।
दो दिन के मेले यहाँ,
दो दिन के सब प्यार ॥

ज्ञानी कहे पुकार कर,
क्या गद्दी क्या छत्र।
ज्ञान बड़ा सबसे यहाँ,
यत्र-तत्र सर्वत्र ॥

किसको हम अपना कहे,
किसको माने गैर।
कभी गैर अपने यहाँ,
कभी सगो से वैर ॥

भवसागर से पार को,
नौका केवल ज्ञान।
ज्ञान कभी मरता नही,
भगुर है अज्ञान ॥

अज्ञान तिमिर की छाती पर, लो ज्ञान सूर्य का उदय हुआ।
पीड़ा की काली काई पर, उत्थान सूर्य का उदय हुआ॥
ज्वाला से ज्योति फूट फैली, करुणा से सम्बल प्रकट हुआ।
आदित्यो से खिल गये कमल, अन्तर का उज्ज्वल प्रकट हुआ॥

पदरज चन्दन पगध्वनि वीणा, पग चूम दिशाओ ने गाया।
धरती की प्यास बुझाने को, गगा यमुना का जल आया॥
जीवन की निर्मल धारा में, यौवन के नये तराने थे।
अधरो पर अरुण खेलता था, आँखों मे गति के गाने थे॥

शैशव गोदी में खेल खिला, मुस्काता बचपन खिला चला।
'त्रिशला' का वेटा वडा हुआ, यौवन का अद्भुत दीप जला॥
माता की आशाएँ उमड़ी, वेटे का व्याह रचाऊँगी।
मैं अपने राजदुलारे को, वैरागी नही वनाऊँगी॥

जो राज सुखो में रहता है, वन मे न उसे जाने दूँगी।
अपनी आँखों के तारे मे, वैराग्य नही आने दूँगी॥
वह राजपुत्र राजा होगा, मुकुटो से पूजा जाएगा।
दुनिया मे जितने भी सुख है, सव मेरा वेटा पाएगा॥

'त्रिशला' आशाओ की वीणा, पति के समक्ष आकर वोली।
स्वामी! वेटे का व्याह करो, लाओ सिन्दूर और रोली॥
समझाओ वीर हठीले को, वह कहा आपका मानेगा।
समझा धमका कर व्याह करो, वह कहा वाप का मानेगा॥

हँसकर वोले 'सिद्धार्थ', प्रिये! तुम नही वीर को जान सकी।
उस राजाओ के राजा को, 'त्रिशला' न अभी पहचान सकी॥
उस जन्म जन्म के योगी को, हम साधारण क्या समझाये।
जो हमको राह वताता है, हम उसके आगे क्या गाये?

जिसका मन साधू हुआ,
उसे न भाता व्याह।
जिसकी सबको चाह है,
उसे न अपनी चाह॥

त्रिशला! इस संसार में,
क्या बन्धन क्या व्याह।
अपनी अपनी चाह है,
अपनी अपनी राह॥

श्वास कर्म के तार हैं,
कच्चे पक्के तार।
तार तार में गुँथे है,
नाते, बन्धन, प्यार॥

अपनी अपनी शक्ति है,
अपना अपना राग।
कहीं ज्योति दीपक प्रिये!
कही ज्योति है आग॥

जन्म जन्म का सूर्य है,
मेरा तेरा वीर।
वीर ज्ञान निर्ग्रन्थ है,
मत हो अधिक अधीर॥

'त्रिशला' उदास होकर वोली, ये कैसी वाते करते हो।
प्रिय! मेरे फूल सदृश मन पर, क्यो भारी पत्थर धरते हो॥
उस दिन वैराग्य नही भाया, जव मुझसे व्याह रचाया था।
उस दिन उपदेश कहाँ थे ये, जव राजा दूल्हा आया था॥

शृंगार शतक के रस लेकर, वैराग्य शतक अव पढते हो।
चाँदनी रात के रगो में, वैराग्य शिखर पर चढ़ते हो॥
या यह समझूँ राजा होकर, कर्त्तव्य योग से भाग रहे।
कर रहे पलायन जीवन से, यह निद्रा है या जाग रहे?

यह दुनिया है इस दुनिया में, हम आये है आनन्द करें।
मरना होगा मर जायेंगे, मरने से पहले हम न मरें॥
प्रिय राजधर्म क्या योग नही, क्या व्याह साधना नही कहो?
जो दूर हटा दे दुनिया से, ऐसी वातो में नही वहो॥

मेरी इच्छा जग की इच्छा, सब की इच्छा है सुख पाये।
हम हँसते हँसते जिये यहाँ, हम हँसते हुए चले जाये ॥
यह दुनिया व्याह धर्म से है, क्या व्याह धर्म मे योग नही।
क्या योग भोग में नही नाथ, क्या योग 'जनक' के भोग नही ॥

पत्नी पगडडी होती है, पति उस पगडडी का राही।
इच्छा दुल्हन है मधुर प्रिया, पग पग की गति है मनचाही ॥
सबन्ध, साध, साधना कर्म, सबन्ध चाह सबन्ध राह।
सबधहीन साधू हिमगिरि, क्या पाता सहता सदा दाह ॥

बचपन है खिलने खाने को, यौवन आनन्द मनाने को।
मै मन ही मन में नाच रही, बेटे का व्याह रचाने को ॥
इच्छा की कली न तोडो प्रिय! कल राजा, राजकुमार बने।
तब कैसे राजा वीर बने, 'त्रिशला' जब साधू वीर जने ॥

मन में ममता मोह है,
वाणी पर उपदेश।
व्याह किये भी सिद्ध हैं,
ब्रह्मा, विष्णु, महेश ॥

व्याह न बाधा राह मे,
व्याह ज्योति का साथ।
दो साथी बढते रहे,
लिए हाथ मे हाथ ॥

व्याह करे राजा बने,
सबको सुख दे वीर।
मेरे मन को हर्ष हो,
हरे सभी की पीर ॥

ताल ताल मे कमल सा,
खिले तुम्हारा लाल।
ऐसा अद्भुत लाल हो,
याद करे हर काल ॥

राज सौप दें वीर को,
हम ले ल वनवास।
प्यास बुझे हर कुए की,
बुझे हमारी प्यास ॥

क्या वृद्धावस्था आने पर, रस-भीगी बाते भूल गये।
यौवन के झरने त्याग रहे, उपदेश सुनाते नये नये ॥
क्यों राज सुखों से ऊब नाथ, इस तरह पलायन करते हो ?
या युद्धों के अंगारों से, डर कर लड़ने से डरते हो ?

क्यों है असोच के लिए सोच, क्यों हो अधीर बोलो बोलो ?
वैराग्य कर्म में कौन श्रेष्ठ, यह दोनों हाथों से तोलो ॥
'सिद्धार्थ' मौन से खडे रहे, जीवन की दो धाराओं में।
वात्सल्य और वैराग्य खड़े, दो उलझन की काराओं में ॥

आँखों में मोह पुत्र का था, बोली मैं बेटा वैरागी।
जल भीगे प्यासे अधरों पर, अन्तर की नीरवता जागी ॥
मन ही मन में यह कहते थे, उस ज्ञानी को क्या समझाऊँ ?
जो शिक्षक है सारे जग का, उसका गुरु कैसे बन जाऊँ ?

इतने में आया वीर वहाँ, सब तिथियों के चन्दा जैसा।
ऐसा अरुणोदय हुआ मित्र, फिर कभी न रवि देखा वैसा ॥
वह आया जैसे ज्वाला में, सावन बरसे भादो बरसे।
वह प्रकट हुआ जैसे कोई, वरदान प्रकट हो शंकर से ॥

आया बसन्त में शान्त सौम्य, दृग तालों में जलजात खिले।
माता 'त्रिशला' की आँखो को, आँखे होने के लाभ मिले ॥
वह आया उसके आने से, सूखी खेती हो गई हरी।
सूखी सरिता में जल आया, जल में मछली जी गई मरी ॥

सन्मति आया सब सुख आये, जल भीगे चारो कमल खिले।
दृग मिले पिता माता से जब, इच्छा इच्छा से ज्ञान मिले ॥
आँखो के सागर उमड पड़े, तन मन में बिजली दमक उठी।
हर ओर अमृत वर्षा करती, चाँदनी प्यार की चमक उठी ॥

माँ 'त्रिशला' पूजा बनी,
पिता पुजारी मौन।
तीर्थंकर आगे खड़े,
इनसा अद्भुत कौन ॥

भाग्यवान माता वही,
जिसका पुत्र महान।
त्रिशला! कितने जन्म के,
फले तुम्हारे दान?

वीर पुत्र सिद्धार्थ के,
धरती के उत्थान।
पुत्र पिता के सामने,
या हैं केवल ज्ञान ॥

राजपाठ सुख सम्पदा,
सब है जिससे दूर।
वह त्रिशलानन्दन युवा,
सब रवियों का नूर ॥

वीर धीर गम्भीर थे,
विद्या विनय विचार।
मौन मुखर था इस तरह,
जैसे मधुर सितार ॥

करुणा मे वैराग्य था,
जल मे थी मुस्कान।
आँखों के आगे खड़े,
युग युग के भगवान ॥

कुछ क्षण को मौन रही करुणा, फिर निर्निमेष आँखे छलकी।
आँखों के निर्मल पानी मे, अन्तर की भाषाएँ झलकी ॥
प्रिय पुत्र! व्याह करना होगा, वैराग्य न मैं लेने दूंगी।
युवराज! राज करना होगा, सुख के सब साधन दे दूंगी ॥

सुर वालाओं से भी सुन्दर, तेरे हित वाला देख चुकी।
तेरे उर में उन वाँहों की, आँखो में माला देख चुकी ॥
वह वाला विद्युत की आभा, वह वाला फूलों की माला।
मैंने उस मुख में देखा है, हर सुन्दरता का उजियाला ॥

उसके खंजन से चंचल दृग, हर समय सामने रहते है।
उसके श्वाँसों के सुरभित स्वर, मुझ से कवितायें कहते है ॥
वह सरिताओं की कल कल ध्वनि, शैलों पर स्वर्णिम घनमाला।
तेरे हित तप रत क्वारी है, वह मन्दिर मन्दिर की माला ॥

वह रूप राशियों की क्रीड़ा, धरती की उजियाली होगी।
वह सुन्दरता की स्वर्ण किरण, भारत माँ की लाली होगी ॥
तुम विश्व ध्वजा बन फहरोगे, वह वीर विजय कहलायेगी।
तुम जिस भी स्वर में बोलोगे, वह उस ही स्वर में गायेगी ॥

मेरा आज्ञाकारी बेटा, क्या बात न मेरी मानेगा ?
क्या माँ को सुख देनें वाला, माता का दुख न जानेगा ?
जो तेरे हित तप करती है, क्या उसकी आशा तोड़ेगा ?
क्या वैरागी बन जायेगा, क्या माँ को रोती छोड़ेगा ?

ओ मेरी आँखो के तारे! मेरे मन में है चाव वड़े।
तुम भी तो कुछ बोलो स्वामी! क्या सोच रहे हो खड़े खड़े ?
'सिद्धार्थ' ठगे से खड़े रहे, जैसे भारी लाचारी हो।
लाचार पिता क्या कहे कहो, जव सुत की दुनिया न्यारी हो ॥

कैसी दुनिया किसकी दुनिया,
आता जाता राही!
यहाँ कहाँ है कोई अपना,
यहाँ कहाँ मनचाही ॥

किसका भैया किसकी माता,
किसका किससे नाता।
साथ किसी के कौन गया है,
हस अकेला जाता ॥

जब तक रूप जवानी जीवन,
जब तक जेब न खाली।
तब तक सभी सगे हैं अपने,
तब तक है घरवाली॥

बिना ज्ञान के कदम कदम पर,
भोगी बहुत तबाही।
कैसी दुनिया किसकी दुनिया,
आता जाता राही॥

हमने देख लिया मित्रों को,
देख लिया प्यारो को।
समय पड़े पर नयन झुका कर,
देख लिया सारो को॥

देख लिये वे जिन पर अपनी,
आशाएँ ठहरी थी।
हम जब दुःख सुनाने आये,
सब की सब बहरी थी॥

यह बहरों की दुनिया प्यारे!
क्यो गाता है राही।
कैसी दुनिया किसकी दुनिया,
आता जाता राही॥

वृद्ध गा रहा कमर झुका कर,
मरघट तक जाना है।
मरघट धधक धधक गाता है,
बस मुझ तक आना है॥

हम न खा रहे हैं रोटी को,
रोटी हमको खाती।
पल पल काल हमे डसता है,
क्या नाता क्या नाती?

खोता ही रहता है प्रतिपल,
क्या पाता है राही !
कैसी दुनिया किसकी दुनिया,
आता जाता राही ॥

कोई माँस नोचता खाता,
कोई मदिरा पीता ।
पीता कोई आँसू भैया!
कोई मन को सीता ॥

दुःख सभी को सुखी न कोई,
क्या याचक क्या दाता ।
अपने लिये सभी रोते है,
क्या बेटा क्या माता ॥

उजली चादर काली दुनिया,
लगे न कोई स्याही ।
कैसी दुनिया किसकी दुनिया,
आता जाता राही ॥

अस्तित्व सत्य का अमर मित्र! ज्वाला में सत्य नही जलता ।
आँधी में सत्य नही उडता, संध्या में सत्य नही ढलता ॥
जो शूली पर भी सत्य कहे, फिर उसकी मृत्यु नही होती ।
जिस कविता में है सत्य मुखर, वह कविता कभी नही खोती ॥

जो मन में हो वह बाहर हो, सच कहने में डरना कैसा ।
जो शुद्ध न हो पाये सच से, अपराध नही कोई ऐसा ॥
इसलिए सत्य के सूरज से, हर जीवन को उजियाला दो ।
जो खिले सत्य शिव सुन्दर से, ऐसे फूलो की माला दो ॥

अन्याय असत् से होते है, अपराध असत् करवाते हैं ।
जो राजा 'हरिश्चन्द्र' से है, युग युग में गौरव पाते है ॥
सच कहने में मजबूरी क्या, अपने को धोखा देना क्या ?
जो दुनिया टिकी झूठ पर है, उस दुनिया से कुछ लेना क्या ?

माना सच कहना है कठोर, लेकिन 'दधीचि' सा है कठोर।
जैसी हड्डी का वज्र बना, यह तपव्रत ऐसा है कठोर॥
यह सच है जीवन भगुर है, यह सच है यौवन जाता है।
यह सच है तृप्ति नही जग में, यह सच है रोग सताता है॥

यह सच है स्वार्थ भरी दुनिया, यह सच है मृत्यु नही टलती।
यह सच है अपनी ही आत्मा, अपने को रोज यहाँ छलती॥
फिर क्यो असत्य के लिए जिये, जब सत्य न जलता गलता है।
करता रहता है परिक्रमा, सूरज न कभी भी ढलता है॥

सूरज में सच का उजियाला, धरती मे सच की सहनशक्ति।
सच की गति सभी हवाओ मे, कवियो मे सच के लिये भक्ति॥
टलते न कभी गलते न कभी, चलते रहते जो धीर वीर।
जो नेत्र सभी के नेत्र मित्र। गंगा में उनका भरा नीर॥

चन्दा कवि से कह रहा,
धो दो प्यासा दाग।
दाग न धो पाये अगर,
व्यर्थ तुम्हारे राग॥

मुझको काटा अमृत ने,
दिल मे काली पीर।
पीर अभी तक नयी है,
कभी लगा था तीर॥

दाग न जिसको छू गया,
ऐसा मिला न एक।
मन मे पीड़ा मैल की,
ऊपर से सब नेक॥

पकड़ो पकडो चोर को,
चोर मचाता शोर।
चोर हमे ले उड़ गया,
हमे बताता चोर॥

चोरों के संसार में,
रोकर नाचे मोर।
तब ये रोयेंगे नहीं,
जब न रहेंगे चोर॥

स्वार्थी दुनिया में क्या गायें, स्वार्थी दुनिया में क्या बोलें।
किससे अपनी पीड़ा कह दे, किसके आगे हम मन खोले॥
जिससे भी मन की बात कही, वह अपना था अपना न रहा।
हमने इस नश्वर दुनिया में, क्या कहे कि क्या क्या रोज सहा॥

कोई फूलो से चीर गया, कोई शूलों से सता गया।
हमने दर्पण में मानव का, चोला देखा है नया नया॥
इस जग के चित्रों में हमने, सब रंग बदलते देखे है।
हमने इस जग में अपने भी, कुछ ढंग बदलते देखे है॥

तुम बदले हो तुम वे न रहे, इसलिए बदलना हमें पड़ा।
कितने ही रूप बदलता है, तरु एक जगह पर खड़ा खडा॥
वह कभी बीज था और कभी, छोटा सा था पौधा प्यारा।
उपवन में उसका रूप बदल, होता देखा न्यारा न्यारा॥

फूलो से कभी भरा रहता, फल कभी लदे रहते उस पर।
दर्शन के पृष्ठ सुनाते है, उसके सारे पत्ते झड़ कर॥
पृथ्वी को पकड़े रहता है, आँधी पानी तूफानो में।
भ्रमरों ने क्या क्या देखा है, इस दुनिया के उद्यानो मे॥

कोई दर्शक खो जाता है, कोई दर्शन बन जाता है।
कोई भोगी भटका करता, कोई सन्यासी गाता है॥
कोई केवल सुख का साथी, कोई दुःखो मे साथ चला।
दीपक भी जलता रहता है, केवल परवाना नही जला॥

कोई जल कर मर जाता है, कोई जल जल देता प्रकाश।
ज्वाला पी ज्योति लुटाने को, तपते सूरज ने चुगी प्यास॥
जो व्यष्टि समष्टि बना जग मे, उसकी कुछ अपनी चाह नही।
प्रिय मित्र! नरक की राह यही, प्रिय मित्र! स्वर्ग की राह यही॥

नरक स्वर्ग से परे है,
कोई सत्य महान।
साधू करते साधना,
सभी सत्य पहचान ।।

'त्रिशला' नन्दन सजग थे,
देख रहे थे सत्य।
जलते हुऐ मसान में,
नृत्य लोक थे मर्त्य ।।

राज सुखों से वीर को,
तनिक नही था मोह।
आध्यात्मिकता से छिड़ा,
भौतिकता का द्रोह ।।

आध्यात्मिकता मे सुन्दरता, साकार दिखाई देती थी।
तप से दीपित बिजली जैसी, पतवार दिखाई देती थी ।।
तलवार प्यार की बोली थी, मानो गगा कविता कहती।
ज्वाला से जल की धार उठी, पर्वत पर्वत बहती बहती ।।

जब भीषण आग धधकती है, दावानल जल बन जाता है।
जब क्रोधी इन्द्र बरसता है, सिर पर पर्वत तन जाता है ।।
उँगली पर 'गोवर्धन पर्वत', कोई बालक धर लेता है।
उगता है कोई दिव्य सूर्य, धरती का तम हर लेता है ।।

आलोक पुज युवराज वीर, सिर पर रत्नो से जडा मुकुट।
कानो में हीरों के कुण्डल, माँ के चरणो में गढा मुकुट ।।
सतलडा पुत्र से लिपट गया, आभरण लाल पर दमक उठे।
वात्सल्य सिधु के ज्वारो में, पूनो के चन्दा चमक उठे ।।

'त्रिशला' माता ने कहा, पुत्र! कर व्याह, राज्य सत्ता संभाल।
मेरी आशाएँ पूरी कर, आँखो के तारे वीर लाल!
तू ऐसा शासक हो जैसा, अब तक न हुआ हो धरती पर!
काली रजनी को दिन कर दे, कुटिया कुटिया में दीपक धर ।।

'त्रिशला' नन्दन ने मुँह खोला, मानो तपती पृथ्वी बोली।
मानो शाश्वत नीरवता ने, धीरे धीरे वाणी खोली॥
मानो कोमल मुस्कानों ने, अधरो से रचना पाठ किया।
वाणी ने अपने हाथों से, हर मन्दिर में धर दिया दिया॥

वृद्धियाँ मुखर थी धरती पर, किरणो से ज्योतित स्वर फूटे।
सरिताओ से सगीत उठे, फुलझड़ियो से झरने छूटे॥
तपते तारो ने छन्द कहे, जलजातो ने गीता गाई।
सुरभित समीर से गीत उड़े, रुन झुन करती कविता आई॥

धरती माँ का लाल है,
माता! तेरा लाल।
पृथ्वी की पीड़ा हरूँ,
छोड़ूं सब जंजाल॥

व्याह बड़ा जजाल माँ!
व्याह बडा उत्पात।
बड़ो बड़ो को डस गई,
सुन्दरता की घात॥

नारी के व्यवहार मे,
तरह तरह के रूप।
रूप रूप मे लुट गये,
योगी योद्धा भूप॥

नागिन यदि काटे कभी,
वच सकते हैं प्राण।
नारी के विप का डसा,
कही न पाता त्राण॥

प्यार वढे तो गीत है,
वैर वढ़े तो काल।
नारी कलह कटार है,
नारी सुरभित चाल॥

चाह दो ज्ञान की राह दो ज्ञान की ।
भक्ति का पुत्र हूँ चाह उत्थान की ।।
मूल में आग हूँ दाह मुझ मे नही ।
व्याह की राज की चाह मुझमें नही ।।

भोग की ओर चल क्यो स्वयम् को छलूँ ।
राह बन कर चलूँ चाह बन कर चलूँ ।।

प्यास हूँ खेतियो पर बरसता रहूँ ।
ज्ञान का रूप हूँ आग पर सच कहूँ ।।
सत्य कहता रहूँ मृत्यु के सामने ।
पैर रोके हमेशा यहाँ काम ने ।।

किस लिये काम की आग मे माँ ! जलूँ ।
राह बन कर चलूँ चाह बन कर चलूँ ।।

काम को जीत लूँ ज्ञान की आग से ।
माँ ! अलग मै रहूँ रूप के बाग से ।।
ज्ञान की आग हूँ ब्रह्मचारी रहूँ ।
तप करूँ बिन्दु से सिन्धु बन कर बहूँ ।।

धर्म का देह हूँ पुण्य जैसा फलूँ ।
राह बन कर चलूँ चाह बन कर चलूँ ।।

माँ ! मृत्यु सभी के निकट यहाँ, दो दिन के रिश्ते और व्याह ।
मतलब की झूठी दुनिया मे, कितने दिन किसकी यहाँ चाह ।।
अपना कोई भी दोस्त नही, अपना तन भी अपना न यहाँ ।
माँ ! उस पर्वत पर जाने दो, चोटी का है उत्थान जहाँ ।।

जिससे आगे कुछ और नही, जिससे आगे कुछ सिद्धि नहीं ।
जिस जगह अग्नि केवल प्रकाश, माता ! जाने दो मुझे वही ।।
मैं सुष्मा सुष्मा काल बनूँ, सब आदित्यो का रूप बनूँ ।
युग युग तक माँ का नाम रहे, मै अद्भुत और अनूप बनूँ ।।

क्या राज भोग क्या मुकुट छत्र, क्या रूप रंग क्या रस के घट।
सब भंगुरता के नाटक है, नाचा करते है लोभी नट॥
मैं क्यो नाचूँ क्यो लोभ करूँ, क्यो मोक्ष मार्ग से दूर हटूँ।
जो राग दु:ख का कारण है, क्यो मैं भी वह रस राग रहूँ॥

सत्ता के भूखे बहुत यहाँ, जनता के सेवक यहाँ कहाँ?
डाकू हत्यारे बहुत यहाँ, मेरा मन लगता नही यहाँ॥
यज्ञो में बलियाँ दी जाती, युद्धो मे प्राण लिये जाते।
दुर्भिक्ष अनोखा देखा है, भूखे देखे खाते खाते॥

तृष्णा का अन्त नही जग मे, चाहो का अन्त नही माता!
इतनी भीषण है भूख यहाँ, नर खो जाता खाता खाता॥
माता! तुम ज्ञानोज्ज्वला तीर्थ, तुम हो अथाह अद्भुत अनन्त।
माँ! तेरी तप की कोख अमर, राजा के घर मे प्रकट सन्त॥

वह क्या जानेगा दुनिया को, जो खुद को जान नही पाया।
मरने वाले को पता नही, कितने दिन को जग मे आया॥
दो दिन की भरी जवानी को, वृद्धावस्था का बोध नही।
माँ! तुम साधू की माता हो, बालक पर करना क्रोध नही॥

जवानी सदा साथ देती नही है,
सदा साथ माता! भलाई रहेगी।

जहाँ स्वार्थ होगा बुराई बढेगी।
बुरी बात बढ शीश पर आ चढेगी॥
मुझे चाह की राह भाती नही है।
जहाँ ज्ञान है वीर तेरा वही है॥

सदा साथ कोई निभाता नही है,
सदा साथ तप की कमाई रहेगी।
जवानी सदा साथ देती नही है,
सदा साथ माता! भलाई रहेगी॥

सुनो भेद की बात माता हमारी।
फली है जगत में तपस्या तुम्हारी ।।
तुम्हारा तनय तप तुम्हारा प्रकट है।
धरा पर हुआ पुण्य सारा प्रकट है ।।

धरा के सभी पुत्र माँ है तुम्हारे,
धरा वीर की माँ तपस्या कहेगी।
जवानी सदा साथ देती नही है,
सदा साथ माता! भलाई रहेगी ।।

धरा के सभी दुःख तप से हरूँगा।
अमर दीप सारे धरा पर धरूँगा ।।
भरूँगा धरा सत्य से साधना से।
न बाँधो मुझे प्यार की भावना से ।।

धधकती दिशाएँ गले कट रहे है,
अनाचार कब तक धरित्री सहेगी?
जवानी सदा साथ देती नही है,
सदा साथ माता! भलाई रहेगी ।।

पृथ्वी पर अत्याचार वढे, अत्याचारो को हरने दो।
मत कहो व्याह की बात पिता! माता! मुझको तप करने दो ।।
हरने दो धरती की पीड़ा, मृतको को सुधा पिलाने दो।
जो मार्ग भूलकर भटक रहे, माँ! उनको मार्ग दिखाने दो ।।

मै जन्म जन्म का राही हूँ, अब मुझको पथ बन जाने दो।
जो साधू गाते रहे सदा, वह गीत मुझे भी गाने दो ।।
मुनियों की भाषा में वोलूँ, पहुँचूँ तीर्थंकर गये जहाँ।
कुछ और पढूँ कुछ और कहूँ, कुछ दीपक धर दूँ नये वहाँ ।।

तुम क्षमा-मूर्ति मेरी माता! तुम दया-मूर्ति मेरी माता।
तुम बोधमयी तुम क्रोध-रहित, तुम धर्म-मूर्ति तुम हो दाता ।।
तुम व्यष्टि नही तुम हो समष्टि, इसलिये मुझे वरदान मिले।
तेरा सुत उपवन उपवन हो, उपवन उपवन में फूल खिले ।।

माता ! सारा संसार दुखी, विपदाओं के लाखों प्रकार।
तन एक आपदाएँ अनेक, मन रग बदलता बार बार ।।
तन कभी दुखी मन कभी दुखी, रोगो के अगणित रूप यहाँ ।
प्राणी पीडाओ का पुतला, माँ! शान्ति किसी को यहाँ कहाँ ।।

कोई 'लक्ष्मण' जैसा भाई, कोई है भ्रात 'विभीषण' सा ।
कोई है मित्र 'कर्ण' जैसा, कोई है दु:ख किसी व्रण सा ।।
कोई पत्नी से सुखी दुखी, कोई साधू को सता रहा ।
कोई नारी के चक्कर मे, सूरज तक को तम बता रहा ।।

जननी! मुझको मजबूर न कर, मेरी मजबूरी भारी है ।
उस राजकुमारी से कह दो, सुत साधू है, लाचारी है ।।
लो राजमुकुट आभरण वस्त्र, मुझको तप करने जाने दो ।
जो रत्न ज्ञान के छिपे पडे, वे रत्न खोज कर लाने दो ।।

जाने दो माता मुझे,
करो न तुम मजबूर ।
सूरज कितना निकट है,
सूरज कितना दूर ।।

धधक रही है आग माँ!
जला जा रहा बाग ।
वशी से वश मे करूँ,
मन का विषधर नाग ।।

शैशव बीता गोद मे,
बचपन बीता खेल ।
अब माँ! केवल ज्ञान से,
हो जाने दो मेल ।।

बात बात मे बीतता,
समय बडा अनमोल ।
जाग जाग लो आ गया,
काल बजाता ढोल ।।

श्वास श्वास में चक्र हैं,
कदम कदम पर मोड़।
बात बात में होड़ है,
बात बात में तोड़॥

माता बोली मेरे साधू! गुरुओं के गुरु से बोल रहे।
सन्यासी बन माँ के मन को, साधू के मन से तोल रहे॥
माथे के पावन चुम्बन को, रेती की राह नही भाती।
'गोकुल' की प्यासी 'राधा' को, निर्गुण की चाह नही भाती॥

मेरे मन अम्बर के चन्दा! वन मे न तुझे जाने दूँगी।
मेरी आशाओं के मेले! गोदी में मेला भर लूँगी॥
बाबा की बड़ी तमन्ना है, मेरा सन्मति राजा होगा।
वह इन्द्र बने संन्यासी क्यों, जिसने स्वर्गो का सुख भोगा॥

वन में ये महल नही बेटे! वन मे ऐसे आराम नही।
वन में सेवक सेविका कहाँ, मन्दिर बनवाले नया यही॥
पूजा कर बन राजाधिराज, तेरे शासन मे सब सुख हो।
कर्त्तव्य बड़ा तप है सन्मति! दायित्व पहाड़ प्रमुख मुख हो॥

सन्यासी बनना सरल पुत्र, मुखिया बनना भारी तप है।
आसान पलायन करना है, सघर्ष वीरता का जप है॥
नश्वरता से डर कर हटना, भागना वीर का धर्म नही।
संसार न उसके लिए लाल! जो कर सकता है कर्म नही॥

यह धरा कर्म से टिकी हुई, यह गगन कर्म से टिका हुआ।
वह भारत माँ के लिए भार, जो धर्म कर्म से डिगा हुआ॥
मुझमें अनुरक्ति ललकती है, तुममे विरक्ति के भाव उगे।
तुम चाह व्याह की त्याग रहे, मेरे मन मे हैं चाव उगे॥

यह शासन कौन सँभालेगा, बाबा को कन्धा देना है।
मेरे जीवन का यान पुत्र, तुझको सागर में खेना है॥
तू नही देखता पिता खडे, डबडबा रही इनकी आँखे।
तू वन जाने को कहता है, कट जाती हैं मेरी पाँखे॥

क्यों भागते संसार से,
सुख दो यही सुख लो यही।
माँझी हमारी नाव को,
मत छोड कर जाना कही ॥

यह भूमि भोगो के लिये, बोओ यहाँ काटो यहाँ।
दौलत तुम्हारे पास है, भोगो यहाँ बाँटो यहाँ ॥
माता पिता के पास रह, ऋण से उऋण हो शान्ति दो।
कुल बेल आगे को चले, प्रियपुत्र! कुल को कान्ति दो ॥

ढलती हुई इस उम्र में,
सुत के बिना सुख है नही।
क्यो भागते संसार से,
सुख दो यही सुख लो यही ॥

सुख दो प्रजा को प्यार से, सुख दो दुखी लाचार को।
बल दो, दया दो, धैर्य दो, उत्थान दो संसार को ॥
शासक बनो वह राज दो, जिसमे न कोई क्लेश हो।
ईर्ष्या करें सब देवता, ऐसा हमारा देश हो ॥

मन सन्त सा जिसका जहाँ,
तप है वही जप है वही।
क्यों भागते संसार से,
सुख दो यही सुख लो यही ॥

जो राजसिंहासन तनय! वह है तपासन वीर का।
जो जीव प्राणीमात्र हित, वह जीव हर तस्वीर का ॥
तुम वीर हो सब कष्ट सह, वनवास घर मे मान लो।
राजा स्वय को मान लो, साधु स्वय को जान लो ॥

प्राणी कही भी श्वास ले,
धरती वही अम्बर वही।
क्यों भागते ससार से,
सुख-दो यही सुख लो यही ॥

माता त्रिशला की वाणी थी, या भावुकता में था विवेक।
या वैरागी की कविता में, करुणा लिखती थी करुण टेक॥
या पुनः 'अयोध्या' पीड़ित हो, कहती थी 'राम' न वन जाओ।
या राजा 'दशरथ' की आशा, कहती थी विपदा! मत आओ॥

यह ज्ञान किसी को ही होता, क्या छोड़ें क्या पाये जग में।
जिह्वा यह भेद जानती है, क्या त्यागे क्या खाये जग में॥
यह मोह बड़ा ही विकट स्वाद, तन मन से लिपटा रहता है।
विकराल काल काला विषधर, चन्दन से चिपटा रहता है॥

चन्दन को जहर नही चढ़ता, अपनी सुगन्ध ही देता है।
जिसको गंगाजल की तृष्णा, मदिरा की प्यास न लेता है॥
यह दुनिया है इस दुनिया में, ईर्ष्या डायन डसती रहती।
गर्वान्ध धनी को बोध नही, धन पर नागिन हँसती रहती।

सन्मति बोले मेरी माता! मैंने संसार निहार लिया।
जग के चरित्र को देख लिया, इस जग पर बहुत विचार लिया॥
कितने ही करें पवित्र कर्म, फिर भी फल भय उपजाते है।
चिर संचित पुण्य समूहों तक, सब अगणित दु:ख उठाते हैं॥

हे तृष्णे! अब तो छोड़ मुझे, मै जग में चक्कर काट चुका।
दौलत पाने की इच्छा से, मै अद्‌भुत दौलत बाँट चुका॥
दुनिया छानी पर्वत फोडे, धातुएँ फूक डाली सारी।
पर खाली खाली हाथ गया, माँ! अब मेरी दुनिया न्यारी॥

सागर को पार किया मैंने, अम्बर को छान लिया मैंने।
सब देश विदेशों में जाकर, सब रस का पान किया मैंने॥
वे जन्म न मेरे शेष रहे, सब सेवाएँ बेकार गई।
दुनिया के विकट तमाशों में, मेरी इच्छाएँ हार गईं॥

छला दुष्टता से गया,
जला दीप पर रोज।
माता! अब मन में बसी,
अमर ज्ञान की खोज॥

जिन विषयों में हम भटक रहें, वे विषय एक दिन छोड़गे।
यदि हम विषयों का त्याग करें, तो हम अनन्त सुख जोड़ेगे ॥
मिलती विवेक से शान्ति सदा, तृष्णा से शान्ति नही मिलती।
तृष्णा लिपटाने वाले को, तृष्णा की पूर्ति नही मिलती ॥

तृष्णा जड़ है पाप की,
आशा है अभिशाप।
गर्व बड़ा शैतान है,
डाह बड़ा है ताप ॥

मांस लोथड़ा रूप सुख,
स्वर्ण पात्र में राल।
काल व्याल विकराल है,
रूप राशि का जाल ॥

भोजन को वन फल वहुत,
तृषा शान्त हित नीर।
सोने को पृथ्वी वहुत,
माँ! क्यों हुई अधीर ?

भिक्षुक तक विपय नही तजते, वासना गले में फाँसी है।
वैरागी की दुलहन विरक्ति, वृद्धों की दुलहन खाँसी है ॥
धन के मद में उन्मत्त सगे, अपमान सन्त का करते हैं।
सज्जन लड़ने से डरते है, साधू स्वादो से डरते है ॥

वहुतो ने यह संसार जीत, तृण के समान इसको त्यागा।
कोई नर चौदह भुवन जीत, जग से ऊवा जग से भागा ॥
अभिमानरहित उज्ज्वल अधिपति, भुवनों का पालन कर भागे।
विज्ञानी अज्ञानी माता! जो पाकर ज्ञान नही जागे।

राजा होने का मद कैसा, विद्वत्ता का अभिमान व्यर्थ।
गुरुओ की पूजा से पाया, जो कुछ भी पाया यहाँ अर्थ ॥
उन कवियो का वैराग्य धन्य, जो कवि विरक्ति मे भी राजा।
कुत्ता वासी हड्डी खाता, साधु खाता वन फल ताजा।

यह अचला साथ न जाती है, वे चले गये जो आये थे।
आनन्द खेद को कहते है, क्या साथ गया क्या लाये थे॥
जल की रेखा से घिरी भूमि, मिट्टी की छोटी सी घेरी।
वे पागल खाने के प्राणी, भोगों ने जिनकी मति फेरी॥

माँ राजसभा उनको भाती, जो नट विट गायक रस भोगी।
मधुकर से नही गूंजते है, यौवन के उपवन में योगी॥
वाणी ने मुझको ज्ञान दिया, विद्या से ऊँचा ताज नही।
जिस वन मे कोई क्लेश नही, उस वन से ऊँचा राज नही॥

विद्याविहीन राजा पशु है, विद्या धन सबसे बडा राज।
जो बड़े बड़े बलवान हुए, वे नही दीखते यहाँ आज॥
धन पर यदि राजा का प्रभुत्व, शब्दो पर कवि का श्रेष्ठ राज।
अनहद संगीत विरक्तो का, शब्दो का नृप कवि अमर साज॥

श्रद्धाहीन समाज को,
दूं श्रद्धा के दीप।
हंसों को मोती मिलें,
मैं मोती तुम सीप॥

स्वजन विमुख, धन क्षीण हो,
मिटे मान सम्मान।
माता! सब कुछ क्षीण हो,
क्षीण न हो गुरुज्ञान॥

परिजन यौवन तन ढले,
रहे ज्ञान की प्यास।
बुद्धिमान को चाहिए,
करे गुफा मे वास॥

मन दर दर मारा फिरे,
फैला फैला हाथ।
अन्तर्मुख हो बावले!
सारे धन है साथ॥

बात बात में भय जहाँ,
कदम कदम पर डाह ।
माता! बोलो क्यों चलूँ,
ऐसी उलटी राह ॥

भोगो में भय है रोगों का, ऊँचे कुल में गिरने का भय ।
धन रहने पर राजा का डर, सौन्दर्य बुढ़ापे से है क्षय ॥
सज्जन को दुष्टों से भय है, शास्त्रज्ञ कुतर्को से डरते ।
भय से है सभी पदार्थ व्याप्त, निर्लिप्त निडर विचरण करते ॥

भगुर प्राणों के लिये दीन, जिह्वा से पेट दिखाते हैं ।
गङ्गो का नीर न पीते वे, जो जग को ज्ञान सिखाते हैं ॥
कजूस खजानों के आगे, क्यों कवि अपने गुण गाते है ?
बेकार बड़ाई करके भी, अपना खोते क्या पाते हैं ॥

नगरी न रही राजा न रहे, पडित न रहे वैभव न रहे ।
जब प्रलय काल का जल फैला, सब ऊँचे ऊँचे महल बहे ॥
उन सुन्दरियों का पता नही, जिनके चरणो में दौलत थी ।
वे कण भी जाने कहाँ गये, जिन स्वर्ण कणों में दौलत थी ॥

बालू में लगे पेड़ जैसे, सब काल पवन से हिलते है ।
गुणवान मिले जो मिट्टी मे, वे डाल डाल पर खिलते है ॥
माँ! उनका नाम निशान नही, जो आये आकर चले गये ।
इस दुनिया के बाजारों में, सब आये आकर छले गये ॥

अति भंगुर जीवन में तन से, तप करे निवास करें वन में ।
माँ! कवियो के निर्वेद मंत्र, सुन सुनकर ज्ञान भरे मन मे ॥
माता मैं वन मे जाऊँगा, पद्मासन वहाँ लगाऊँगा ।
पर्वत होगें गगा होगी, योगासन जहाँ लगाऊँगा ॥

मेरे तन से सुख पाने को, निर्भय बूढे मृग आयेगे ।
गायेंगे गीत अहिंसा के, कस्तूरी मृग दे जायेगे ॥
माँ! मौन चाँदनी गंगातट, पावन पर्वत तरु की छाया ।
बेकार यहाँ उसका आना, जिसको न मिली ऐसी माया ॥

संयम बिना न सुख कही,
संयम बिना न त्राण।
संयम पाटल पुष्प है,
सुरभित होते प्राण ॥

संयम बिना न साधना,
संयम बिना न ऋद्धि।
संयम बिना न तप सफल,
संयम बिना न वृद्धि ॥

संयम से विज्ञान है,
सयम से सगीत।
संयम से आलोक है,
संयम से है जीत ॥

पहनूँगा वस्त्र दिशाओं के, मुझको विरक्ति से हुआ प्यार।
आशा तृष्णा की घोर नदी, निर्लिप्त तैर कर करूँ पार ॥
माँ! पिता! जगत में पग पग पर, विषयो का हाथी घूम रहा।
बेहोश भयकर हाथी पर, पागल सा प्राणी झूम रहा ॥

सर्वस्व याचको को दे दे, जीवों के दुख सुख पहचाने।
भोगों के दुखों को समझें, त्यागो के सौरभ को जाने ॥
तप करें तपोवन मे जाकर, वह पाये जिसका अन्त नही।
चाँदनी शरद ऋतु की कहती, झगडो में रहते सन्त नही ॥

वल्कल हो या रेशमी वस्त्र, सन्तोष बिना आराम नही।
जो धन की लिप्सा में पीडित, उनको सुख मिलता नही कही ॥
'शकर' समाधि में पर्वत पर, तप करते करते तपरत हैं।
'ब्रह्मा' का आसन कमल पत्र, श्री 'विष्णु' शेष पर शाश्वत हैं ॥

चचल घोडे जैसे मन को, पाते पाते सन्तोष नही।
ऊँचे ऊँचे पद पाकर भी, क्यो शान्ति नही क्यो होश नही ॥
दुनिया के भंगुर भोगो मे, तप छोड दूसरा मार्ग नही।
शास्त्रो के शब्दो को तजकर, मन भटका करता कही कही ॥

जो धन पापों से प्राप्त हुआ, उस धन से जहर भला माता!
उसका उद्धार नही होता, जो पापों की दौलत खाता ॥
पापी के घर भोजन करके, साधू पुण्यों को दे देता।
चन्दन अपनी सुगन्ध देता, सर्पो तक का विष पी लेता ॥

अपमान मिले या मान मिले, साधू को इससे क्या लेना।
सब कुछ पायें सब कुछ खोये, फिर भी दुख लेकर सुख देना ॥
विद्वानो! सुन्दरता श्री को, तपमूर्ति मान तप किया करो।
दुनिया को दीपक दिया करो, 'शंकर' बनकर विष पिया करो ॥

माँ! लक्ष्मी से मोह क्या,
क्या सोने के पात्र।
भोजन को कर पात्र हैं,
जीवन को जल मात्र ॥

ढंग एक से एक है,
रंग एक से एक।
एक सूर्य की रश्मि के,
जग मे चित्र अनेक ॥

रमणी का सुख क्षणिक है,
प्रज्ञा का सुख पूर्ण।
एक रूप नारी नही,
रूप अनेक अपूर्व ॥

लक्ष्मी! मुझको छोड़दे,
मुझे न भाता राज।
मुझको वन में चाहिए,
मुक्त खगो का साज ॥

माता! ऊँचे महल क्या,
क्या सुन्दर सगीत।
निर्जन वन में सुलभ है,
सब से ऊँची जीत ॥

झरनों का जल तरु की छाया, वन फूल मधुर फल काफी हैं।
हरियाली वहाँ यहाँ जग में, मीठे मीठे छल काफी है॥
विश्वास किसी का क्या जग में, जब तन का ही विश्वास नही।
विश्वासहीन इस दुनिया में, निज मन का ही विश्वास नही॥

प्रलयाग्नि मचलती है जिस क्षण, पर्वत सुमेरु तक गिर जाते।
जब प्रलय सृष्टि में होती है, महलो के पते नही पाते॥
पर्वत धारण करने वाली, पृथ्वी तक लय हो जाती है।
पानी ही पानी रहता है, सारी दुनिया खो जाती है॥

जो शान्त नही कामना रहित, जो भव बन्धन से मुक्त नही।
वह जन्म मरण में रहता है, होता क्रन्दन से मुक्त नही॥
इच्छानुसार सुख मिल जाएँ, सम्मान, विजय, लक्ष्मी, नारी।
मिल जाए कल्पवृक्ष विद्या, दुनिया सारी दौलत सारी॥

वैराग्य बिना आनन्द नही, वैराग्य बिना कुछ सार नही।
जब तक तपता है सूर्य नही, तब तक दुनिया साकार नही॥
वह व्यजन विष से भी कडवे, जो शोषण और रक्त के है।
माता जितने भी सगे यहाँ, मतलब के और वक्त के हैं॥

जग मे दुखो का अन्त कहाँ, सुख हुआ तो साथी जलते हैं।
कवियो की आँखो के आँसू, अक्षर अक्षर मे ढलते है॥
माँ! मिथ्या भूत पदार्थों को, मै क्यो जोडूं क्यों मान करूँ।
जो दीख रहा वह सदा नही, किन चीजो का अभिमान करूँ॥

चचल मन बडा विचित्र मित्र, पल पल चक्कर काटा करता।
मन कभी देवता होता है, मन कभी बडे मक्कर भरता॥
मन कभी हिमालय पर होता, पाताल पहुँच जाता पल में।
मछली को मछली खाती है, जीवन जल मे ज्वाला जल मे॥

संसारी को बोध है,
क्या दिन क्या है रात।
फिर भी दिन में रात की,
बात बात मे बात॥

उत्तम शैया भूमि माँ!
छाया है आकाश।
तकिया भुजा वितान शशि,
वायु व्यजन शिव रास॥

वैरागी को राग क्या,
'शंकर' को क्या नाग।
स्याही का लगता नही,
जलधारा पर दाग॥

यौवन कुछ दिन के लिये,
जल तरंग सी आयु।
धन अस्थिर विद्युत विषय,
सदा न सुख की वायु॥

भव-भय-सिन्धु अपार है,
आत्म-ज्ञान की नाव।
माँझी शुद्ध विकास है,
विविध तरगे चाव॥

यौवन पर कामदेव के शर, तन मन को घायल कर देते।
तन मन धन यौवन जीवन तक, नारी के आगे धर देते॥
अति काम क्रोध की ज्वाला में, तन जलता है मन जलता है।
जलता है शिव से काम स्वयम्, जलता है वह जों छलता है॥

सत्सग सुखद, चाँदनी मधुर, हरियाली आँखों को भाती।
काव्यो में नौ रस भाव भरे, मन हरती नारी मुस्काती॥
रमणीय कथाएँ प्रणय कोप, जल में मछली जैसी आँखे।
सब आकर्षण जग में अनित्य, कहती न ज्ञान गति की पाँखे॥

माता पृथ्वी है पिता वायु, है तेज मित्र भैया जल है।
आकाश शीप पर वरद हस्त, इन गुरुजन में अद्भुत बल है॥
इन गुरुओ मे इन गौरव मे, तज मोह ज्ञान मैं लीन हुआ।
परब्रह्म प्रकाश आत्म रवि मे, तम घुल मिल तमः विहीन हुआ॥

जव तक शरीर मे रोग नही, तव तक ही तप करने का बल।
जब तन के घर मे आग लगे, तव काम न आता कोई जल॥
तव कुआ खोदना व्यर्थ मित्र, जब प्रलय पहाडो पर नाचे।
जिसने सूरज की कथा पढी, वह तम के किस्से क्यो बाँचे॥

सज्जन यदि ज्ञान सूर्य पाता, मद मान भस्म हो जाते है।
दुर्जन यदि कुछ विद्या पाते, सज्जन को मूर्ख वताते है॥
योगी वैरागी साधू को, एकान्त मुक्ति का साधन है।
कामी को यदि एकान्त मिले, तो नारी का आराधन है॥

वे परमेश्वर जो पर्वत पर, पत्थर की शैया पर सोते।
वन की छाया में जिनके घर, वे धरती के रक्षक होते॥
वे साधक अधरो की भाषा, तरु योगी जिनको फल देते।
ऐसे निवृत्त तम में प्रकाश, नित झरने जिनको जल देते॥

विद्या जिनकी प्रिया है,
उनको करो प्रणाम।
विद्या जीवन ज्योति है,
विद्या धन गुरु नाम॥

हम सब हैं कच्चे चने,
जग है जलता भाड़।
भुन भुन भक्षण हो रहे,
हम मरघट के हाड॥

हम सब जिन्दा लाश है,
जग जलता शमशान।
जिन्दा लाशे जल रही,
क्या दुनिया क्या मान॥

चलें ज्ञान की राह पर,
भूल मान अपमान।
तपे सूर्य से विश्व मे,
रखे सभी का ध्यान॥

अन्त न दुःखो का यहाँ,
दुखी न जग में कौन?
किसे पता है छोड़ दे,
किसको जग में कौन॥

सब की अपनी चाह है,
सब की अपनी राह।
कौन जानता है यहाँ,
किसको कितना दाह॥

अपना मन वश में नही,
यहाँ न अपनी खैर।
बिना बात के वैर हैं,
सगे यहाँ है गैर॥

सज्जन अपनी ओर से,
रोज जोड़ता हाथ।
फिर भी दुर्जन जगत में,
रोज फोडता माथ॥

सज्जन दुर्जन मोह वश,
काल सर्प अज्ञान।
जिसे न ममता मोह है,
वह है केवल ज्ञान॥

ज्ञान बिना वैराग्य कब,
मोक्ष मन्त्र है ज्ञान।
ज्ञान प्राप्त करने चला,
त्याग राज सम्मान।

मद मोह नही वैरागी हूँ, सब मे सम भाव प्रकाश साथ।
कोई न शत्रु कोई न मित्र, सब जग से जाते रिक्त हाथ॥
लक्ष्मी चचल जीवन अस्थिर, यौवन गिरगिट स्वप्नो के सुख।
तब तक मन भटका बहुत बहुत, जब तक न हुआ मन अन्तर्मुख॥

सयमी शान्त सन्तोपी को, आनन्द ज्ञान से मिलता है।
प्रज्ञा के ज्ञान सरोवर में, जलजात रात दिन खिलता है ।।
तन मन टूटे पर क्या रोना, पर्वत तक के टुकडे होते।
सकल्प न पूरे होते है, सब सो जाते बोते बोते ।।

मत रोक मुझे मेरी माता, मत रोको पिता महान मुझे।
जो ज्ञान अनन्त अनश्वर है, पा लेने दो वह ज्ञान मुझे ।।
माता की आँखे भर आईं, रुँध गया पिता का भोला मन।
मानो लाखो बिजलियाँ गिरी, चमका दमका सारा उपवन ।।

पीडा कौंधी आँसू बोले, सन्मति रुक जा, रुक वीर लाल!
बाबा की वृद्ध दशा से रुक रुक अपनी माँ का देख हाल ।।
कह रहे मेंहदी के पौधे, मत पत्तो की आशा तोडो।
हम जिन हाथो के हित उपजे, पकडो वह हाथ नही छोडो ।।

विधि के हाथो से बनी हुई, क्वाँरी सुन्दरता कहती है।
सुन्दरता तप से प्रकट सिद्धि, आँखो के जल में बहती है ।।
तप किया वीर के लिए बहुत, फल मिला नही प्रिय मिला नही।
तप करने जाते वीर जहाँ, मैं भी जाऊँगी चली वही ।।

मेरे सन्यासी वैरागी! तुम वीर तुम्हारी जय हूँ मैं।
ओ मेरे स्वपनो के स्वामी, हर तरफ तुम्हारी लय हूँ मैं ।।
तुम गगन और मैं धरती हूँ, बरसो तो प्यास बुझे मेरी।
प्यासी प्रतीक्षा मे बैठी, क्यो करते आने मे देरी?

पहले चाह ब्याह की भरदी,
अब विरक्ति के गीत गा रहे।
तन में मन मे आग लगा कर,
स्वामी! तुमको योग भा रहे ।।

खुली रही सुरमे की शीशी,
बिन्दी रही हाथ मे मेरे।
झड़े पड़े महँदी के पत्ते,
लहरे बहुत साथ मे मेरे ।।

उड़ पहुँचा सिन्दूर गगन में,
उषा बन गईं चाहें सारी।
आभूषण अंगार हो गये,
धधक रही है राहे सारी॥

पहले आग लगा दी तुमने,
अब क्यों मुझसे दूर जा रहे?
पहले चाह व्याह की भर दी,
अब विरक्ति के गीत गा रहे॥

श्वासों में सुगन्ध भरने को,
मैं चन्दन वन में आई थी।
स्वामी की पूजा करने को,
आँखों के दीपक लाई थी॥

करो तपस्या ध्यान बनी मैं,
चरणो मे हूँ, शरण धूलि है।
प्रीति बनी आरती तुम्हारी,
भक्ति पगो में चरण धूलि है॥

हार गई मै जीत गये तुम,
सारे जग को जीत जा रहे।
पहले चाह व्याह की भरदी,
अब विरक्ति के गीत गा रहे॥

भक्ति तुम्हारे साथ रहेगी,
शक्ति तुम्हारे पास रहेगी।
मेरे महावीर स्वामी है,
मुझ से मेरी प्यास कहेगी॥

तुम वैरागी वीर कथा मैं,
मैं अनुरक्ति विरक्ति हो गई।
योगी! बनी वियोगिन करुणा,
तुम कवि मैं अभिव्यक्ति हो गई॥

दूर गये तुम पास रही मैं,
यादों में भगवान आ रहे।
पहले चाह व्याह की भरदी,
अब विरक्ति के गीत गा रहे॥

## वन पथ

पृथ्वी माँ की गोद है,
सिर पर गगन महान।
तरह तरह के वृक्ष है,
जीवों के भगवान॥

पीने को जलधार है,
भोगों को फल फूल।
तन की शोभा को सुलभ,
धरती माँ की धूल॥

आलिंगन को हवा है,
चुम्बन को गुरु पैर।
कैसी किससे मित्रता,
कैसा किससे वैर?

दुनिया के हर ढोल से,
अच्छे हैं पाषाण।
सहते चरण प्रहार हैं,
नही चलाते वाण॥

हमने दुनियाँ देख ली,
देख लिये सब मित्र।
सब के मन में मैल है,
सब के मन मे इत्र॥

चलो चलो संसार से,
भाग चलो उस पार।
यहाँ रात दिन कलह है,
यहाँ कहाँ है प्यार ॥

पड़े पीजरे में दुखी,
तन की कैद कठोर।
कैद छोड़ जागे नही,
आ आ लौटे भोर ॥

दया करो संकट हरो,
महावीर भगवान!
मुझे भरोसा आप पर,
रखना मेरा ध्यान ॥

गुण दोषों से भरे हैं,
मेरे विविध प्रकार।
चरण तुम्हारे खोजते,
मेरे रूप हजार ॥

जो उन्नत नग जो बढते पग, उन सर्वेश्वर को नमस्कार।
जो अणु विभु स्यादवाद सुन्दर, उन परमेश्वर को नमस्कार ॥
जो तपते तपते तीर्थंकर, वे पूजा को स्वीकार करें।
जो विना कहे पीड़ा हरते, वे दाता मेरे दु.ख हरे ॥

मेरे अभाव सब के अभाव, मैं सब की चिन्ता गाता हूँ।
बच्चो को बाँट दिया करता, मैं जितने पैसे पाता हूँ ॥
मैं आँसू उनका आँसू हूँ, जो आँसू देखा नही गया।
मेरी झोली में बहुत दु:ख, मुझ पर बहुतो की बहुत दया ॥

मैं हूँ असक्त तुम महाशक्ति, मेरे रक्षक! रक्षा करना।
तन मन से लिपटे पडे सर्प, सारा विष मेरे हर! हरना ॥
देवता अमृत पी गये नाथ! विष तो शिव ही पी सकते हैं।
दु खो में कविता पलती है, विष पी शिव ही जी सकते हैं ॥

हमनें अपनों की दुनिया में, अपमान सहे सम्मान दिये।
वे हमें गिरा कर हँसते है, हमने जिनको उत्थान दिये।।
कुछ ऐसे घाव कसकते हैं, जिनका उपचार नही मिलता।
मनचाहा फूल नही खिलता, मनचाहा प्यार नही मिलता।।

सन्तोष बिना सुख कही नही, भगवान और सन्तोष एक।
वह उतना ईश्वर का स्वरूप, जो जग में जितना अधिक नेक।।
जो साधू सब कुछ छोड़ चुके, वे साधू मुझे नही छोड़े।
जो पूज्य दिगम्बर दिव्य तेज, वे मुनि श्री मुझ से मन जोड़े।।

मेरे उपास्य प्रभु महावीर, मेरी पीड़ा को दूर करो।
मेरा विश्वास तुम्हारे में, मुझको न नाथ मजबूर करो।।
मजबूरी पल पल सता रही, ले रही परीक्षा बार बार।
प्रभु मैं जहाज का पक्षी हूँ, फिर फिर उड़ आता हार हार।।

महावीर भगवान वरदान दाता।
न रूठो न जाओ मनाना न आता।।

शरण मे तुम्हारी खडे हाथ जोड़े।
उसे थाम लेना न जो हाथ छोड़े।।
न धन पास मेरे न मन पास मेरे।
अँधेरा बहुत है कहाँ हो सवेरे?

दया धर्म का टूट जाए न नाता।
महावीर भगवान वरदान दाता!

कथा पढ रहा हूँ दिया आपका है।
व्यथा गा रहा हूँ हृदय ताप का है।।
न तूफान मे नाव डूबे किसी की।
न जानी किसी ने यहाँ बात जी की।।

बिना ज्ञान के दुःख हर जीव पाता।
महावीर भगवान वरदान दाता!

प्रभो! ज्ञान गौरव मुझे ज्ञान दे दो !
जरासा जरासा इधर ध्यान दे दो ।।
कलम की तरफ देख लो भाव से तुम ।
खिला गोद मे लो जरा चाव से तुम ।।

तुम्हे टेरता हूँ न मैं गीत गाता ।
महावीर भगवान वरदान दाता !

त्रिशला नन्दन सिद्धार्थ सुवन, स्वीकार सुमन कर दया करो ।
प्रभु दीन दयालु कृपालु नाथ, शरणागत की सब पीर हरो ।।
दर दर पर दीपक धर धर कर, अब आया द्वार तुम्हारे मैं ।
वन्दना नयन मालाओ से, दृग लाया द्वार तुम्हारे मैं ।।

मेरी आँखो के साथ साथ, जन जन की आँखे आई हैं ।
मेरे भावो मे धरती की, पीड़ाओ की अमराई है ।।
मेरी रोती मुस्कानों के, गीतो मे जग के दर्द भरे ।
तुम जिनको छन्द बताते हो, वे मेरे रिसते घाव हरे ।।

जो चुपके चुपके रोते थे, मैं उनके घाव चुरा लाया ।
जो अपनो ही से लुटे पिटे, मैं उनके दर्द उठा आया ।।
जो यज्ञों मे बलि के पशु हैं, मै उनकी मौन व्यथा कहता ।
कहता कहता बन गया काव्य, धरती सा हूँ सहता सहता ।।

धरती की कथा सुनाता हूँ, जन जन की व्यथा बताता हूँ ।
प्रभु महावीर की वाणी को, गा गा कर पुन. जगाता हूँ ।।
उन पद चिह्नो पर चलता हूँ, जो चरण कमल मेरे मन के ।
मेरे श्वासो के सौरभ है, जो सौरभ सारे उपवन के ।।

वे चले विरक्त छोड़ जग को, मैं प्यासी पूजा पग पग पर ।
मैं हूँ 'कलिंग' की तृषित कली, 'जित शत्रु' सुता सुन्दर जलधर ।।
षोडशी 'यशोदा' चन्द्रमुखी, मानो आशाओ की बिजली ।
मणियों की मालाओ वाली, सम्पाओ के उर से निकली ।।

सौन्दर्य चेतना का दमका, चमकी वियोगिनी की पीड़ा।
'त्रिशला' नन्दन के पग पग पर, कौंधी कविताओं की क्रीड़ा॥
'त्रिशला' कुमार ने मुकुट तजा, राजसी वस्त्र सब त्याग दिये।
महलो के सारे सुख छोड़े, कर में मयूर के पंख लिये॥

कन्या कली 'कलिंग' की,
रूप ज्योति रस राग।
त्याग चले 'सिद्धार्थ' सुत,
सुन्दरता का बाग॥

खड़ी 'यशोदा' राह में,
या बिजली की मूर्ति।
या पथ में सहसा प्रकट,
हर अभाव की पूर्ति॥

ऋद्धि सिद्धि सुषमा सुरभि,
चाह आह की ज्योति।
कविता बन कर प्रकट थी,
मित्र! दाह की ज्योति॥

भावो मे सत्यो की कविता, पूजा मे शिव प्रभु महावीर।
आँखो मे चंचल सुन्दरता, पथ में गति की आभा अधीर॥
मग में वियोगिनी खडी खड़ी, गाती थी जाओ जय पाओ।
मेरे मनहर मेरे उपास्य! मेरी पूजा के हो जाओ॥

तुम तप करने को जाते हो, मै बदली बनकर साथ चली।
तुमको न धूप लगने पाये, इसलिए धूप मै स्वयं जली॥
प्रभु! तुम जिस पथ से जाओगे, मेरी काया छाया होगी।
मेरे प्रभु बाल ब्रह्मचारी, पूजा मेरी माया होगी॥

आओं मै खड़ी प्रतीक्षा मे, जाना अर्चन लेकर जाना।
स्वामी मुझको भी आता है, धरती बन कर वन मे आना॥
तुम वन मे तप करने जाते, मेरा मन वन वन जायेगा।
सौन्दर्य सत्य से पृथक् नही, आराधक शिव को पायेगा॥

तुम सत्यम् शिवम् सुन्दरम् हो, मैं प्यासी गंगा नारी हूँ।
मेरा मन कहता बार बार, मैं जीत जीत कर हारी हूँ॥
विधि की विडम्बना है विचित्र, कुछ पता नही क्या हो जाये।
कब हाथो मे से हस उडे, कब किसकी दुनिया खो जाये॥

कर्मों के इस चौराहे पर, प्राणी को भाग्य नचाता है।
धर्मों का जिसे सहारा है, उसको भगवान बचाता है॥
मेरे योगी भगवान वीर, मैं रहूँ तुम्हारी धर्म ध्वजा।
ओ मेरे संन्यासी शासक, मैं देश धर्म की भक्ति प्रजा॥

भगवान तुम्हारे गुण गा गा, कुछ अपने पुण्य बढ़ाऊँगी।
भगवान तुम्हारे चरणो मे, पूजा के पुष्प चढाऊँगी॥
मेरे स्वामी दर्शन देगे, मैं धन्य धन्य हो जाऊँगी।
चरणों मे न्यौछावर होकर, उन के पथ मे खो जाऊँगी॥

प्रजा प्रतीक्षा में खड़ी,
आयेंगे भगवान।
खड़ी 'यशोदा' फूल ले,
देखेंगे भगवान॥

माता त्रिशला धन्य है,
धन्य पिता सिद्धार्थ।
तप हित सब सुख तज चला,
जिन का पुत्र परार्थ॥

राज त्याग वन को चले,
त्रिशला नन्दन वीर।
लगा कि सारे विश्व मे,
रही न कोई पीर॥

जो माया ममता मोह ग्रसित, वे बोले वीर! न वन जाओ।
राजा के लाल लाड़ले हो, राजाओ के सब सुख पाओ॥
हम नगरो में सुख भोगेगे, तुम वन मे कष्ट उठाओगे।
जन जन के सन्यासी राजा! कब आओगे कब आओगे?

दुखियों से धरती माँ बोली, कर्मो के भोग नही टलते।
कोई न दुख सुख देता है, कर्मो से सब हँसते जलते ।।
क्या महल और क्या बड़े दुर्ग, मिट्टी है मिट्टी में मिलते।
मुरझा गिरते वे सभी फूल, जो फूल रश्मियो से खिलते ।।

यह दुनिया ताजे फूलो की, बासी फूलो का मूल्य कहाँ।
जा रहा वहाँ मेरा सन्मति, खिल रहा ज्ञान का फूल जहाँ ।।
मन उपवन का जलजात ज्ञान, बासी न कभी भी होता है।
जो ज्ञानी है वह हँसता है, जो मूर्ख व्यथित वह रोता है ।।

फंदे है योग वियोग भोग, हित अनहित सब भ्रम जाल व्याल।
जंजीरे जन्म मरण तक हैं, सुख दु.ख युद्ध सुख दु.ख काल ।।
धरती धन दारा गाँव स्वजन, सब स्वर्ग नरक है मोह जाल।
व्यवहार जगत मे शान्ति कहाँ, खा रहा हर समय काल व्याल ।।

बोले सन्मति माता मत रो, तुम रोओगी सब रोयेंगे।
यह प्रजा तुम्हारी तुम पर है, तुम खोओगी सब खोयेंगे ।।
जग कालरात्रि जलती भट्टी, योगी बच कर वन जाते है।
सन्यासी पृथक प्रपचो से, सुख देते है सुख पाते है ।।

मैं भागा दूर मोहभ्रम से, पथ है विवेक आनन्द भरा।
परमार्थ साथ आकाश हाथ, सत्यो से मन क्रम वचन हरा ।।
मैं जाता सकल विकार रहित, पाने को पूर्ण अनन्त ज्ञान।
परमार्थ रूप जो ब्रह्म शिवम्, वे परम रम्य निष्काम राम ।।

दयालु वर्द्धमान शिव, दयालु वर्द्धमान सुख।
कृपालु नीर क्षीर है, कृपालु ज्ञान ध्यान सुख ।।

गरल पिया सुधा दिया तपे सदैव वीर शिव।
सदैव साधना निरत सदैव नीर क्षीर शिव ।।
न आग से न नाग से न राग से रुके कही।
न दाग भाल पर कही, न काम से झुके कही ।।

गगन वितान वीर पर, अकाम वीर ज्ञान मुख।
दयालु वर्द्धमान शिव, दयालु वर्द्धमान सुख ।।

विवेक मार्ग वीर का प्रकाश ध्येय वीर का।
अनेक एक प्रेय है सदैव श्रेय वीर का॥
अजेय चल पडे जिधर उधर उड़ी विजय ध्वजा।
गये विरक्त वर जिधर उधर खड़ी मिली प्रजा॥

प्रणाम कर रही प्रजा विरक्त को न एक दुख।
दयालु वर्द्धमान शिव दयालु वर्द्धमान सुख॥

न काम क्रोध मोह है, न गर्व द्वेष शेष है।
न देह है न दाह है, पथिक न है महेश है॥
न शस्त्र है न अस्त्र है न वस्त्र है न चाह है।
गये जिधर उधर चलो, उधर अशेष राह है॥

यहाँ वहाँ जहाँ तहाँ दयालु, ज्ञानवान सुख।
दयालु वर्द्धमान शिव दयालु वर्द्धमान सुख॥

संकट मोचन भगवान वीर, पथ की बाधाएँ दूर करे।
जो ज्ञानी दानी शिव स्वरूप, वे मेरे सारे कष्ट हरे॥
मेरी हर व्यथा कथा करदो, हर आँसू को दीपक करदो।
मेरे मन को धरती करदो, मेरे मन मे गगा भरदो॥

मैं रहूँ अहिंसा का झरना, मैं रहूँ अमृत से भरा स्रोत।
तपते सूरज की धूप करो, मैं रहूँ सृष्टि मे खरा स्रोत॥
जोडूँ तो जोडूँ विद्या धन, खर्चूं तो खर्चूं विद्या धन।
मेरा तन तरुओ का तन हो, मेरा मन हो तरुओ का मन॥

इतना न कभी लाचार बनूँ, फैलाऊँ अपना हाथ कही।
दाता! मुझको इतना देना, मुख से न किसी से कहूँ, नही॥
रोतो के आँसू पोछ सकूँ, दुर्बल दुखियो के हरूँ कष्ट।
मुझको ऐसी दौलत दे दो, जिसको न कर सकूँ कभी नष्ट॥

जो त्याग मूर्ति जो सत्य मूर्ति, वे जो कहते वह होता है।
जो जाग गया वह सूरज है, जो सोता है वह खोता है॥
चल पड़े जाग कर महावीर, पथ फूल चढाता साथ चला।
कण कण से सौरभ उड़ता था, यह पथिक चला वह दीप जला॥

चल पडे वीर पग ध्वनि बोली, आभरण निर्धनो को दे दो।
माँ! मेरे सिर का राजमुकुट, सुख मान हरजनों को दे दो॥
सब राजवस्त्र उनको दे दो, जो वस्त्रहीन नगे भूखे।
घी की रोटी उनको दे दो, जो बिना रोटियो के सूखे॥

ऐसे भी चूल्हे सोते है, जिन पर न पतीली चढती है।
रखने से दौलत घटती है, देने से दौलत बढती है॥
धन के केवल उपयोग तीन, भोगो बाँटो अन्यथा नष्ट।
भगवान कष्ट सह लेते हैं, भगवान न देते कभी कष्ट॥

महावीर भगवान को,
वारम्बार प्रणाम।
जिनमे 'शिव' साकार है,
जिनमे है श्री 'राम'॥

सुर असुरों के मुकुट से,
पूज्य वीर भगवान।
चूड़ामणि मनु वंश के,
मानवता के ज्ञान॥

इक्ष्वाकु कुल कमल के,
सूर्य वीर भगवान।
हरण करे तम तोम सब,
तपःपुज दिनमान॥

चन्दन वन के तुल्य है,
नाथ वंश के वीर।
सौरभ उड़ता पगो से,
कही न कण भर पीर॥

धर्म रत्न श्रामण्य सुख,
वीर जाति अवतस।
वन्दनीय अतिवीर से,
धन्य लिच्छवी वश॥

जय जिनेन्द्र भगवान की,
जिनकी कृपा महान।
जिनका जीवन मित्र को,
युग युग का वरदान॥

स्वयादवाद के स्रोत से,
मुखरित जिनके गीत।
त्रिशला नन्दन नाथ वे,
हारे मन की जीत॥

जन जन में हर्ष हिलोर उठी, जन जन दर्शन करने दौड़ा।
बरसाये फूल पक्षियो ने, जन जन जीवन भरने दौड़ा॥
राजा सेनापति मन्त्री गण, चरणो मे सिर घरने आये।
जन जन मे वर्षा करने को, राजा गण द्रव्य रत्न लाये॥

जय महावीर जय महावीर, रत्नो की वर्षा ने गाया।
रत्नो की अद्भुत वर्षा मे, दर्शन करने कुबेर आया॥
लाया रत्नो के कोप साथ, जय कह चरणो मे चढा दिये।
रत्नो के ऊपर पग रख कर, योगी ने निज पग बढ़ा दिये॥

दर्शन को लक्ष्मी पति आये, आये 'ब्रह्मा' दर्शन करने।
सुर असुर गगन पथ से आये, चरणो में अर्चन धन धरने॥
भोले 'शकर' हो गये मुग्ध, 'ओकार' 'पार्वती' से बोले।
जिनको धोने हैं पाप उमा! इन चरणो मे सिर धर धोले॥

खग वृन्द चोच से फूल तोड, वन पथ मे बिछा बिछा गाते।
उड उड़ कर चरणो मे आते, चरणो को छूकर उड़ जाते॥
छाया की मेघो ने झुक झुक, छिड़काव किया बौछारो ने।
मिट्टी से सौरभ उडता था, मधुमास दिया बौछारों ने॥

शीतल समीर सुरभित वन पथ, हरियाली नयी निराली थी।
झिलमिल करती थी प्रकृति परी, बिजली की माँग निकाली थी॥
आँखो मे मेघो का काजल, माथे पर नयी उषा बिन्दी।
लिपि भाषाओ के रूप वीर, सब लिपियो की बोली हिन्दी॥

६

सब भाषाओं की वाणी ने, सब भापाओं में गुण गाये।
पग छू छू सभी दिशाओं ने, परिधान दिगम्बर से पाये॥
फूलों ने इत्र निचोड़ दिया, तरुओं ने छाते तान दिये।
पग जिधर बढ़े खिल गये कमल, ज्ञानोदय ने दिनमान दिये॥

मुक्त डाल पर खग सुखी,
दुखी कीच में कीट।
मुक्तेश्वर के शीश पर,
शोभित सूर्य किरीट॥

राज मिले जगधन मिले,
मिले रत्न का कोष।
सारे धन बन्धन बड़े,
यदि न मिला सन्तोष॥

मुक्त वीर आगे बढ़ें,
वर्द्धमान उत्थान।
पीछे पीछे विश्व था,
आगे आगे ज्ञान॥

ऐसे बढते थे वर्द्धमान, जैसे पुण्यों के फल बढते।
ऐसे चढते थे गगनो पर, जैसे बारह सूरज चढते॥
बढ चले चरण ऐसे जैसे, सारी जनता के चरण बढ़े।
मानो धर्मो के धरण बढे, मानो कमलो के वरण बढे॥

कुछ चमत्कार ऐसा फैला, आँखे आनन्द विभोर हुईं।
नयनो के उत्पल मुखर हुए, भापाएँ छन्द विभोर हुईं॥
मैं तुच्छ तपस्या के आगे, दौलत वैरागिन बन बोली।
भरदी दौलत ने गा गा कर, दुनिया भर की रीती झोली॥

वैशाली की रूपसियो ने, सुन्दरता से वैराग्य लिया।
भर गई सत्य के सौरभ से, पग धो चरणामृत पान किया॥
अक्षत बदाम से पूजा की, पूजा की थाली धन्य हुई।
गलियो मे बन सम्पदा खिली, सारी वैशाली धन्य हुई॥

गर्वित था पावन 'वासुकुड', गर्वित थी तपती गली गली।
जय महावीर जय महावीर, गाती थी सुरभित कली कली ।।
वे बालक पैर पकड़ते थे, खेले थे जिनके साथ वीर।
वे नटखट इत्र उडाते थे, हँसते थे जिनके साथ धीर ।।

वे फेक रहे थे व्यंग्य फूल, कहते थे बाबा जी! प्रणाम।
कहते थे 'सगम' यदि आया, हम लेगे प्यारा वीर नाम ।।
अब तक वैरागी 'कुडग्राम', मानो प्रतीक है योगी का।
मानो उस दिन से मन्दिर है, सुन्दर आकार वियोगी का ।।

पुज रहा वीर का 'कुडग्राम', मैं बना पुजारी गाता हूँ।
वे चरणकमल मेरे मन में, जिनको पा ज्ञान बढाता हूँ ।।
उन पद चिह्नो पर चला बढा, जो बढते बढते बर्द्धमान।
वह जगह बोलती मैं लिखता, जिस जगह वीर को मिला ज्ञान ।।

'वासुकुड' की भूमि को,
शत शत बार प्रणाम।
'त्रिशला' नन्दन वीर का,
वरदाता यह धाम ।।

'कुडग्राम' में मुखर है,
युवा वीर के गीत।
जीत जीत पर जीत है,
त्रिशलासुत की जीत ।।

'वैशाली' की रात में,
देखे सूर्य महान।
अस्त कभी होते नही,
ज्ञान सूर्य भगवान ।।

धर्म ध्वजा से गूजते,
योगेश्वर के गीत।
गीत गीत मे मुखर है,
पूजा भरा अतीत ।।

राग भरा संसार है,
भोग भरा ससार।
महावीर वन को चले,
तज कर सारे भार॥

त्रिशला नन्दन सन्मति कुमार, यौवन के सब सुख छोड चले।
झूठे आकर्षण छोड़ चले, मुकुटो के बन्धन तोड चले॥
'चेटक' नाना की आँखो में, अति वीर दिखाई देते थे।
बाबा निज प्यासी बाँहों में, बढती छाया भर लेते थे॥

जनता उमड़ी आलोक बढा, जलजात खिले सौरभ फैला।
हर मन वैरागी वन सा था, उस क्षण न कही था मन मैला॥
सुन्दर आँखों के दीप लिये, ललनाएँ दर्शन को आईं।
लाईं पूजा को सुमन साथ, वाणी मे वीर कथा लाईं॥

त्रिशला रानी का लाल धन्य, कोई पत्नी पति से बोली।
पति बोला धन्य धन्य योगी, करपात्र न कर में है झोली॥
फिर हँस कर पत्नी को देखा, बोले अपरिग्रह करो प्रिये!
मत खाओ 'सिर लाओ यह वह', निज निर्धनता से डरो प्रिये!

ये कैसी बाते कहते हो, दाता भगवान सामने है!
जो माँगे बिना बहुत देते, वे पति धनवान सामने है॥
भगवान जिसे दर्शन देते, वह निर्धन कभी नही रहता।
आश्चर्य मुझे तब होता है, जब सुखी दुखी हूँ यह कहता॥

'त्रिशला' नन्दन के दर्शन कर, हमने घर में दौलत भरली।
पतिहित सारे सुख प्राप्त किये, मनचाही निधि पक्की करली॥
जो चाहूँगी वह ले लूंगी, जो चाहूँगी वह दे दूंगी।
मैं एक नही दस बीस लाख, प्रिय तुमको साड़ी ले दूंगी॥

पहनोगे साड़ी बोलो प्रिय? क्या मुझको नारी बनना है?
हाँ, तुमको नारी बनना है, पुरुषो को भी कुछ जनना है॥
विज्ञान बदलने वाला है, नारी नर, नर नारी होगे।
नारियाँ मर्द बन जायेंगी, पुरुषो के पग भारी होगे॥

खोजो तो आनन्द है,
बात बात में मित्र!
रोने वाले खो रहे,
मोर तोर मे इत्र ।।

यह दुनिया चौगान है,
सुखद व्यंग्य की गेंद ।
खेलो, मत फेको कही,
दुखद व्यग्य की गेद ।।

शब्द भाव का रूप है,
मन के रूप विचित्र ।
समधन की गाली मधुर,
अगर सीठना मित्र!

व्यंग्य न अभिधा मित्र है,
व्यग्य लक्षणा मित्र!
झूठ कथन का अर्थ सच,
तरह तरह के चित्र ।।

बदला अर्थ प्रसग से,
एक शब्द दस रूप ।
नौ रस भरा समाज है,
आत्मभूत है भूप ।।

आनन्द सार है जीवन का, रागी हो या वैरागी हो ।
आनन्द हेतु जप तप व्रत हैं, सुरपति हो चाहे त्यागी हो ।।
आनन्द रहित रसहीन काव्य, घर बाहर कही नही जीता ।
जीवन न एकरस में रहता, थक जाता मधु पीता पीता ।।

रस मे अनेक रस-धाराएँ, हम पथ पर हँसते हुए बढे ।
जीवन की ऊँची चोटी पर, हम हँसते खिलते हुए चढें ।।
हँसते खिलते जय जय गाते, नागरिक वीर के साथ चले ।
वन पथ मे अरबो पैर बढे, वन पथ में खरबो दीप जले ।।

ममता ने आशीर्वाद दिया, धरती ने पैरों को गति दी।
वन पथ जीवन का उज्ज्वल यश, वाणी ने जन जन को मति दी॥
दर्शन करने साधू आये, आँखों में रस भर चले गये।
जितने भी पेड़ पुराने थे, सब दीख रहे थे नये नये॥

वैशाली वासुकुड छोड़ा, त्रिशला-सुत गंगा पार हुए।
पाटलीपुत्र के उत्साही, पथ मे स्वागत के हार हुए॥
पदयात्रा करते गाँव गाँव, ग्रामीण चरण छू साथ चले।
मानो वन यात्री के पीछे, ध्वज ले ले अरबों हाथ चले॥

अतिवीर राजगृह आ पहुँचे, पर्वत मालाएँ मुखर हुई।
सुन्दर शाखाएँ झूम उठी, अद्भुत बालाएँ मुखर हुई॥
झरनों से जय ध्वनियाँ फूटी, पानी की परियाँ नाच उठी।
मानों धर्मों के अमर मन्त्र, बल खाती लहरे बाँच उठी॥

मिट्टी में मिली हुई हिंसा, बोली मेरा उद्धार करो।
मैं रूप अहिंसा का ले लूँ, मेरा ऐसा सत्कार करो॥
पाषाणी पग छू जी जाये, पग छू पापाणी बोल उठी।
मैं त्वचा वीर के तन पर हूँ, पृथ्वी कल्याणी बोल उठी॥

नमन 'राजगृह' की मिट्टी को,
जहाँ तपों के स्वर है।
जहाँ 'स्वर्ण भंडार' भरे थे,
जहाँ योग के घर है॥

महावीर की जय के स्वर है,
झरनों के पानी में।
मूक तपोज्ज्वल सूर्य मुखर है,
महावीर दानी में॥

कुड कुड के गर्म नीर में,
रोग न कोई रहता।
पंच पहाड़ी पहुँच गया कवि,
कविता कहता कहता॥

परिक्रमा पर्वत पर्वत की,
इन पर तीर्थंकर हैं।
नमन 'राजगृह' की मिट्टी को,
जहाँ तपों के स्वर हैं॥

मन्दिर मन्दिर फूल फूल में,
महावीर की वाणी।
लहर लहर पर्वत पर्वत पर,
ध्वनियाँ हैं कल्याणी॥

प्रकृति गा रही गीत वीर के,
मन चाहे वर मिलते।
एक अनेक यहाँ हर ज्ञानी,
सन्मति घर घर मिलते॥

नमन युवा भगवान वीर को,
जो भोले शंकर हैं।
नमन 'राजगृह' की मिट्टी को,
जहाँ तपो के स्वर हैं॥

मूक शिलाओं में मुखरित है,
गीत वीर के प्यारे।
मूक चोटियो पर चर्चित हैं,
अर्चित वर्य हमारे॥

धर्म जहाँ के पात पात में,
वात वात मे अर्चन।
चारो ओर सुगन्ध वह चली,
महावीर चन्दन वन॥

पूज्य 'राजगिरि' हर चोटी पर,
'त्रिशला'-सुत हरि हर हैं।
नमन 'राजगृह' की मिट्टी को,
जहाँ तपो के स्वर हैं॥

घूमा सारा 'राजगृह,
चढ़ चढ़ गये पहाड़।
चट्टानों में ध्वस्त थी,
पूर्व काल की राड़॥

जैन मूर्तियों में मुखर,
विश्व शान्ति के गीत।
ध्वस्त युद्ध के खड्ग थे,
मुखर धर्म की जीत॥

देश-विदेशों के यहाँ,
देखे साधू सन्त।
'वर्मी' 'जापानी' यहाँ,
भजते बुद्ध अनन्त॥

विश्व शान्ति की मूर्तियाँ,
स्वर्ण चोटियाँ देख।
लगा कि हिंसक मर गये,
वोलो सच है शेख!

देवों ने हृदय पालकी पर, 'त्रिशला' नन्दन को चढ़ा लिया।
खडन वन ने पग छूने को, चरणों तक माथा वढ़ा दिया॥
खंडन वन के तरु झूम उठे, फल-फूल चढाये पग पग पर।
पालकी उतारी वन तट पर, सारे सुर-असुरो ने लाकर॥

'सिद्धार्थ', पुत्र के जन्म स्वप्न, कहते थे अर्थ वताते थे।
'त्रिशले'! तेरा सुत तीर्थकर, पत्नी को पति समझाते थे॥
पर माँ की ममता वार वार, आँखो मे जल भर लाती थी।
वन के शेरों सांपो से डर, छाती धक से रह जाती थी॥

सुत राज-सुखो मे पला चला, वन के कष्टों मे जायेगा।
पत्थर कांटो पर सोयेगा, क्या पहनेगा क्या खायेगा?
प्रतिध्वनि मे कण कण वोल उठा, 'त्रिशला'! क्यो दु:ख मानती हो।
सन्मति इन्द्रो का इन्द्र देवि! पहचानो नहीं जानती हो॥

अपनें स्वप्नों को याद करो, मत डरो वीर की चिन्ता कर।
सन्मति है ज्ञान स्वरूप शुद्ध, इनमें 'ब्रह्मा' इनमे हरि हर ॥
माँ की आँखो में महावीर, आये अनन्त सुख सार भरे।
पतझड मे हरियाली आई, सब सूखे तरु हो गये हरे ॥

अतिवीर प्राणियों से बोले, खंडन वन आया सब जाओ।
मैं चला तपस्या करने को, मत मेरे पथ मे अब आओ ॥
मैं आऊँगा उस दिन जिस दिन, पालूँगा केवल ज्ञान पूर्ण।
लाऊँगा जग हित वाणी में, सम्पूर्ण ज्ञान भगवान पूर्ण ॥

आलोक लोक भगवान वीर, स्वस्तिक-अंकित पवि पर बैठे ॥
मानो कैलाशी वासी शिव, वन पर्वत की छवि पर बैठे।
जय ध्वनियो से भर गया गगन, अर्चन रत देखे दिगदिगन्त।
नैसर्गिक गति थी निर्निमेष, जन जन मे छाया सुख अनन्त ॥

महावीर भगवान ने,
पल मे त्यागा राग।
वस्त्राभूषण मुकुट सब,
सुख के पथ में नाग ॥

पाँच मुट्ठियो में तुरत,
नोच उतारे बाल।
जय धरती माँ के मुकुट,
जय धरती के लाल!

नमन लोक भगवान को,
नम नम अर्हन्त!
नम. रत्न त्रय नम· श्री,
नमः अनन्त अनन्त!!

मेरी बाधाएँ हरो,
महावीर भगवान!
मेरा तुम मे ध्यान है,
तुमको सबका ध्यान ॥

गिरे न मेरा मन कभी,
रहे हाथ पर हाथ।
मैं बालक डरपोक हूँ,
रहना मेरे साथ॥

योगेश्वर वीर दिगम्बर ने, देखा जन जन है मोहग्रस्त।
थक गये आ रहे साथ साथ, श्रम स्वेद युक्त है अस्त-व्यस्त॥
बोले घर जाओ सुख पाओ, मैं तत्त्व प्राप्त कर आऊँगा।
वन के अन्तश्चेतन के सुख, वाणी में भर कर लाऊँगा॥

मित्रो जाओ, बाबा जाओ, नाना जाओ मामा जाओ!
माँ जाओ, पिता विदा दे दो, समझो औरो को समझाओ॥
मैं आउँगा मैं आऊँगा, लाऊँगा अमृत तपस्या का।
जीवन सागर को मथ मथ कर, पाऊँगा अमृत तपस्या का॥

सज्जनो! हर्ष का समय आज, मैं तुम सब में तुम सब मुझमें।
जितने भी विविध रूप जग मे, वे सब के सब है अब मुझमें॥
दुनियाँ के रग पगो मे है, वन देव दृगो मे घूम रहे।
दृग कमल वीर के वक्ता थे, दृग भ्रमर पगो पर झूम रहे॥

उपदेश दे रही थी किरणे, फूलो से दूर न है सूरज।
फूलो के ऊपर है सूरज, कोमल है क्रूर न है सूरज॥
चाँदनी छतो पर रहती है, चाँदनी वनो मे रहती है।
जो हवा घरो में रहती है, वह हवा वनो मे वहती है॥

धरती घर मे धरती वन मे, धरती घर है धरती पहाड़।
मिट्टी पनघट मिट्टी मरघट, मिट्टी उपवन वन चीड हाड॥
मिट्टी के रूप बदलते है, मिट्टी के रंग बदलते है।
मिट्टी के पुतले चलते है, मिट्टी के पुतले जलते हैं॥

आने जाने का मेला है, कोई आता कोई जाता।
वह बार बार मरता जीता, जो केवल ज्ञान नही पाता॥
दो विदा ज्ञान भगवान मिले, दो विदा लोक भगवान मिले।
दो विदा अमृत मथ कर लाऊँ, दो विदा ज्ञान के फूल खिले।

हाथ जोड़ राजा खडे,
प्रजा गा रही गीत।
तुम दुर्बल के बल प्रभो!
तुम जन जन की जीत।।

जाओ वन के देवता,
चन्दन वन हो धन्य।
धन्य धन्य हम धन्य है,
हम सा धन्य न अन्य।।

पाने को जग श्रम करे,
त्याग हेतु तप वीर।
महलो मे राजा दुखी,
सुखी वनो में धीर।।

इधर दुखी ससार है,
उधर सुखी सन्यास।
इधर तृप्ति भी तृषित है,
उधर न कोई प्यास।।

विदा गीत गाने लगे,
अर्चन रत सब लोग।
जाओ योगी! सिद्ध हो,
लोक सूर्य हर योग।।

विदा हमारे प्यारे योगी,
जाओ पथ बनते जाओ!
जाओ भूल न जाना हमको,
जाओ सारे सुख पाओ!!

जैसे कमल सूर्य से खिलते,
तुम से भारत देश खिले।
चन्दन वन बन सौरभ देना,
तुम से जग को मार्ग मिले।।

कलाकार के गीत बनो तुम,
आँसू के आधार बनो।
प्यार बनो धरती माता के,
फूलो के शृङ्गार बनो ॥

शिक्षा के आकाश बनो तुम,
गुरुओ के स्वर बन आओ।
विदा हमारे प्यारे योगी,
जाओ पथ बनते जाओ!

रहे हमारे सिर पर ऐसे,
जैसे गर्मी मे छाया।
पास नाथ के रहकर हमने,
पाया सारा धन पाया ॥

प्रभु! विद्या के कल्पवृक्ष है,
हर मौसम मे फल देते।
पग पग पर बरगद बन है प्रभु!
धूप शीत सब सह लेते ॥

हम जब जब भी तुम्हे बुलायें,
बिना बुलाये तुम आओ।
विदा हमारे प्यारे योगी,
जाओ पथ बनते जाओ!!

विदा दृगो के दीप दे रहे,
विदा हृदय के द्वारों से।
विदा भावना की मणियो से,
विदा नयन के तारो से ॥

गंगा बनकर यमुना बनकर,
अर्घ्य चढाती है आँखे।
वर्द्धमान आगे बढते है,
दीप जलाती है आँखे ॥

उन्नति की चोटी पर जाओ,
शास्त्र बने जो तुम गाओ।
विदा हमारे प्यारे योगी,
जाओ पथ बनते जाओ!!

## दिव्य दर्शन

किससे खेलें किसको पूजें, किसको आँखों से नहलायें ?
किससे अपनी पीड़ा कह दे, किससे अपना मन बहलायें ।।
किससे जीवन का पाठ पढ़ें, किस पथ से सूरज तक जायें ?
किससे कविता की कथा कहे, किससे कविता में रस पायें ।।

वह ईश्वर कौन कहाँ पर है, जड़ चेतन जिसके इंगित पर ?
आराध्य दूर होते जाते, मै निकट आ रहा चल चल कर ।।
कोई कहता है इधर गये, कोई कहता है उधर गये ।
जिस ओर गया आश्चर्य बढ़ा, मैं रूप देखता नये नये ।।

कह दिया किसी ने इंगित कर, जाओ वह देखो, वह ईश्वर ।
मैं उधर गया तो क्या देखा, फल लटक रहे थे वृक्षो पर ।।
मैं समझ गया तरुलोक प्राण, छाया देता फल देता है ।
माली है भक्त सींचता तरु, तरु को तन का जल देता है ।।

ईश्वर सारा ब्रह्माण्ड मित्र ! ब्रह्माण्ड ज्ञान विज्ञान रूप ।
कर्मों से सब संसार बने, कर्मों से साधू और भूप ।।
जो सिद्धि कर्म से प्रकट मित्र, वह ईश्वर है वह है प्रकाश ।
जितने भी पवन थिरकते हैं, सब कर्म योग के सरस रास ।।

पूजा का अर्थ कर्म करना, निष्काम भाव से जय पाओ ।
पूजा का अर्थ त्याग करना, धरती के सूरज बन जाओ ।।
पूजा करता है श्रमिक रोज, घर सड़के महल बनाता है ।
पूजा करता है कृषक रोज, तपता है अन्न उगाता है ।।

ये मित्र लोक भगवान सभी, गायक पायक नायक कर्ता।
कर्ता ईश्वर हर्ता ईश्वर, ईश्वर सब से लायक कर्ता॥
उस कर्ता धर्ता को पूजो, जो केवल ज्ञान लोक कर्ता।
वह कष्ट स्वयम् सह लेता है, जो जन जन की पीड़ा हर्ता॥

महावीर भगवान को,
वन ने किया प्रणाम।
मुखर हुई वन सम्पदा,
जय जय जय सुख धाम!

वन देवी वन देवता,
लाये फल पकवान।
हाथ जोड़ बोले सभी,
लो अहार भगवान!

साधू सन्तो ने किया,
कीर्तन वारम्बार।
विविध भक्त करने लगे,
पूजा विविध प्रकार॥

वन नागो ने पगो मे,
मणियाँ धरी उतार।
नभ नदियो ने पगो मे,
लड़ियाँ धरी उतार॥

खग कुल गुण गाने लगे,
डाल डाल पर गीत।
गीत गीत मे प्रीति थी,
गीत गीत मे जीत॥

साधू सन्तो ने नमन किया, फल फूल चढाये पेड़ो ने।
पग पग पर वढते गये पेड, पग पेग वढाए पेडो ने॥
शेरो ने किया प्रणाम कहा, भगवान सिह कुल के दादा।
ये अपने बाबा पडबाबा, अति वीर सिह कुल के दादा॥

अजगर ने पग छू पूजा की, फिर कहा नाथ! उद्धार करो ।
मैं अपने विष से जलता हूँ, जीवन में रस की धार भरो ॥
योगेश्वर ने उपदेश दिया, मत काटो करो वनों में तप ।
मैं कभी शेर था इस वन मे, अब व्रती अहिंसक हूं जप जप ॥

खूंखार सिंह था, हिंसा तज, हरिणो से क्रीड़ा करता था ।
मैं शेर भयङ्कर था लेकिन, खरगोश न मुझसे डरता था ॥
अच्छा है इसी जन्म मे तुम, तन का मन का सब विष त्यागो ।
हर श्वास कीमती जीवन का, जल्दी जागो जल्दी जागो ॥

अजगर ने बढते योगी से, दीक्षा ले कर व्रत मौन लिया ।
कुछ शैतानो ने अजगर को, आ आ कर काफी तंग किया ॥
कंकड़ मारे पत्थर मारे, अजगर निज व्रत में मौन रहे ।
जो सत्य अहिंसा के पथ पर, उन सब ने लाखो कष्ट सहे ॥

जो जितने कष्टो मे तपता, वह उतना आगे बढता है ।
जो कॉंटो पर हँसता खिलता, वह फूल वीर पर चढता है ॥
दु.खो मे है वरदान सुखद, दु.खों से घबराने वालो !
घबराना नाम मृत्यु का है, मुस्कान जिंदगी, मुस्का लो ॥

वन मे जब आगे बढे वीर, दावानल बढता आता था ।
तूफानो की गति से कृशानु, वन फूल जलाता जाता था ॥
ऑंधियॉं नाचती पेड गिरे, पर रुके वीर भगवान नही ।
पैरों में अद्भुत गति आई, थे वीर कही तूफान कही ॥

जब बढ चले फिर आग क्या ?
जब शिव बने फिर नाग क्या ?

पथ में करोड़ो शूल हो ।
फिर भी न हम से भूल हो ॥
मँझधार पीना सीख ले ।
पी जहर जीना सीख ले ॥

धारा बने फिर दाग क्या ?
जब बढ़ चले फिर आग क्या ?

तूफान क्या भूचाल क्या ?
जब मृत्यु ध्रुव फिर काल क्या ?
पर्वत बने फिर धूप क्या ?
साधू बने फिर भूप क्या ?

त्यागा जगत फिर राग क्या ?
जब बढ़ चले फिर आग क्या ?

जब मन नही दलदल नही ।
क्या डर हमे जब छल नही ।।
विश्वास है तो तम नही ।
यदि ज्ञान है तो गम नही ।।

सब कुछ मिला फिर माँग क्या ?
जब बढ चले फिर आग क्या ?

मुनिनाथ बढे पथ पर आगे, वन वन ने चरण वन्दना की ।
सरिता सरिता ने पग धोये, पथ पथ ने चरण अर्चना की ।।
वर्षा ने आ अभिषेक किया, गूंजे मेघो के मधुर गीत ।
मोरो ने मनहर नृत्य किये, चरणो से करने लगे प्रीत ।।

पक्षी शास्त्रो को गाते थे, पल्लव शास्त्रों को पढते थे ।
हरियाली स्वागत करती थी, अतिवीर अकेले बढते थे ।।
जो बढा अकेला पथ बन कर, वह व्यष्टि समष्टि अनश्वर है ।
झरने उसको नहलाते है, वह ज्योति पुज सब का घर है ।।

दामिनी दमक आरती बनी, मस्तक तक इन्द्रधनुष चमका ।
मेघो के अगणित चित्रो मे, मानो मुखरित हीरा दमका ।।
वर्षा सुहावनी थी वन मे, ऋतुएँ लुभावनी थी वन मे ।
वर्षा मे योगी यात्री थे, या वर्षा थी ऋषि के तन मे ।।

रिमझिम रिमझिम वर्षा आई, प्यासे पेडो को नीर मिला ।
हँसती गाती वर्षा आई, वन-उपवन का हर फूल खिला ।।
वन वन मे वन सम्पदा बढी, भर गई अन्न से धरा वरा ।
जब तप से गगा आती है, हो जाता है ससार हरा ।।

तप करते योगी बढते थे, ऋतु साथ साथ तप करती थी।
तप से प्रसन्न अक्षता क्षमा, अक्षत से धरती भरती थी॥
आश्विन कार्तिक शीतोज्ज्वल वर, काले मेघो से श्वेत वरा।
गगा धारा ने स्नान किया, दर्पण सा जीवन हुआ खरा॥

जाड़े के श्वेत प्रसूनों ने, पृथ्वी माँ का शृगार किया।
निर्मल अम्बर ने झुक झुक कर, वन यात्री का सत्कार किया॥
ऋतुराज वसन्ती फूल लिए, प्रभु की पूजा करने आया।
मानो केसरिया बाने में, ऋतुराज वीर के स्वर लाया॥

ऋतुराज है या ताज है,
ऋतुराज है या साज है।
ऋतुराज अद्‌भुत राज सुख,
ऋतुपति प्रकृति का राज है॥

ऋतुराज राजकुमार है,
ऋतुराज योगी वीर है।
ऋतुराज हर शृङ्गार है,
ऋतुराज निर्मल नीर है॥

स्वर्णिम वसन्ती फूल है,
या भूमि पर तारे उगे।
ये रूप के शिशु खेलते,
या खगों ने मोती चुगे?

संगीत भ्रमरों का कही,
या तितलियों का नाज है।
ऋतुराज है या ताज है,
ऋतुराज है या साज है॥

बोले वसन्ती फूल गा,
हम रोशनी के मूल है।
दृग पुतलियों के गीत है,
दृग पुतलियों की भूल है॥

हम सत्य के कोमल हृदय,
हम शान्ति के ससार हैं।
सौन्दर्य के साधन सुमन,
कृषि के गले के हार है॥

ऐसी न कोई कामिनी,
जैसी प्रकृति यह आज है।
ऋतुराज है या ताज है,
ऋतुराज है या साज है॥

ये फूल साधों के हृदय,
ये फूल साधू के वचन।
ये फूल तपते छन्द है,
इनमे मुखर कवि की तपन॥

जेवर लदी निधियाँ पडी,
या सिद्धियों की भक्ति है।
उपलब्धियाँ बिखरी पडी,
या नौ रसो की शक्ति है॥

ये वीर के तप से खिले,
इन पर प्रकृति को नाज है।
ऋतुराज है या ताज है,
ऋतुराज है या साज है॥

पतझड ने कहा आँधियो से, तपते बादल जल लायेंगे।
हिमगिरि पर ग्रीष्म शीत होगा, वर्षा से पल्लव पायेंगे॥
जो राग छोड तप करते है, उनको तूफानो से क्या डर।
ऋतु ऋतु में तप करते करते, आ गये वीर शिप्रा तट पर॥

सिद्धासन पद्मासन सारे, साधन योगी ने अपनाये।
पानी न पिया खाया न अन्न, थे वीर विदेह बिना खाये॥
अस्तेय सत्य साकार मित्र! साकार अहिसा ब्रह्मचर्य।
हृदयो के काल पिशाचो को, गुरु ज्ञान अहिसा ब्रह्मचर्य॥

परिग्रह त्यागा तप प्रकट हुआ, साकार पवित्र प्रकाश मिला।
सन्तोष शान्त रस निर्विकार, योगी या तप का फूल खिला॥
मन मन न रहा दृढ हिमगिरि था, धारणा विचार धराधर थे।
त्रिशला-सुत ध्यान लगा बैठे, या चिर समाधि में शंकर थे॥

तट पर थे ध्यान ध्येय ध्याता, योगेश्वर के थे विविध रूप।
गगा तट पर तप करते थे, पंचानन प्रभु अद्भुत अनूप॥
कुछ दुष्ट वृद्धि से जलते हैं, दुष्टो की जग में कमी नही।
जिस जगह न दुष्ट सताते हों, मिल सकी न ऐसी जगह कही॥

पग बढते दुश्मन बढते है, मित्रों का भी कुछ पता नही।
अपने भी बहुत सताते है, रोने वालों की खता नही॥
आँसू रोको क्यो रोते हो, दुनिया ऐसी ही होती है।
कोई खो खो कर पाती है, कोई पा पा कर खोती है॥

ध्यानावस्थित थे महावीर, बाधाओं ने आकर घेरा।
शैतानों ने उत्पात किये, भूतों ने डाल दिया डेरा॥
धधका मसान शोणित बरसा, लोथडे मांस के फैल गये।
क्षण क्षण मे रूप भयकर थे, अति विकट रुद्र थे नये नये॥

हँसते हुए पीते हुए,
शैतान हड्डी चाबते।
जलते हुए भुनते हुए,
पशु साधुओ को दाबते॥

तप भग करना चाहते,
चाकू चलाते पीठ से।
हटता नही सिर पर खड़ा,
ईश्वर बचाए ढीठ से॥

यह भूत है वह प्रेत है,
यह 'वृकासुर' वह 'कस' है।
कौए बहुत हैं हर तरफ,
वन में अकेला हस है॥

उठते हुए इंसान को,
कुछ दुष्ट नीचे दाबते।
हँसते हुए पीते हुए,
शैतान हड्डी चाबते ॥

कुछ रुड है कुछ मुड हैं,
कुछ सिर कटे शोणित सने।
कुछ नाचते कुछ गाजते,
कुछ आग के पुतले बने ॥

कुछ भूत लोथो को उठा,
नाली बहाते रक्त की।
लड्डू बनाते माँस के,
रबड़ी बनाते रक्त की ॥

हैवान सिर पर चढ रहे,
इंसान थर थर काँपते।
हँसते हुए पीते हुए,
शैतान हड्डी चाबते ॥

जीना कठिन मरना कठिन,
बदमाश चक्कर काटते।
जो सन्त तप करते यहाँ,
शैतान उनको डाटते ॥

कोई अगर उन्नति करे,
तो दुष्ट चिढ दम छोड़ दे।
बढते हुए को देख कर,
सिर फोड़ ले सिर फोड़ दे ॥

बनता न बनने काम दें,
वे गालियाँ ही बाँचते।
हँसते हुए पीते हुए,
शैतान हड्डी चाबते ॥

हिमगिरि न पगों से दबता है, सागर न धूलि से पटते है।
शैतानों के संहारों से, ऊँचे आकाश न कटते है।।
'होली' जलती 'प्रहलाद' नही, दुष्टो को इतना ध्यान रहे।
अंगारो का भी अन्त राख, अगारों को यह ज्ञान रहे।।

तप पर हमला करने वालो, तप पर तम तोम नही चढता।
तप का आदर्श अहिंसा है, सूरज तपता सूरज बढता।।
सूरज को दाग नही लगता, चन्दा पर धूल नही चढती।
अपरिग्रह नग्न नही होता, 'दु.शासन' की निन्दा बढ़ती।।

श्री वृद्धि अहिंसा ज्योति शिखा, तप मूर्ति 'द्रोपदी की साड़ी'।
जितनी खीचो उतनी बढ़ती, विद्यानिधि त्यागी की गाड़ी।।
दुष्टों ने शोणित बरसाया, शोणित बरसा बन कर पानी।
उत्पात भूत प्रेतों के सब, बन गये 'मोरध्वज' से दानी।।

शैतान हार कर चले गये, मति का तप भग न कर पाये।
अतिवीर ध्यानरत डिगे नही, फिर कामदेव चढ कर आये।।
कानो तक ताने पुष्पबाण, फूलों से सारी भूमि भरी।
इत्रों की बरसाते महकी, बूढी लतिकाएँ हुई हरी।।

मनचली हवाएँ मन छू छू, तन मे सिहरन भर जाती थी।
फूलों के बाणों की वर्षा, सीनो मे घर कर जाती थी।।
शाखाएँ विटपो से लिपटी, रजनी से तारे लिपट गये।
काँटो से कलियाँ चिपट गई, कमलों से भौरे चिपट गये।।

नदियों मे लहरे मस्त हुईं, आपस में लिपट चिपट टूटी।
धरती पर नभ हिनहिना झुका, बूंदें बरसी, कलियॉ फूटीं।।
मदहोश हुई क्यारियाँ सभी, कविताएँ काम विभोर हुई।
वन में बरगद रस में डूबे, नौकाएँ नर्तित मोर हुई।।

पेड़ हिले पर्वत हिले,
मिले फूल से फूल।
किन्तु वीर से एक भी,
हुई न वन में भूल।।

परियों ने वन मे नृत्य किये, गन्धर्वों के गूँजे अलाप ।
सगीत पल्लवो ने छेडा, रतिपति का बढने लगा ताप ॥
रागों में जड़ मनचले हुए, ककड़ी ककड़ों से खेली ।
पाषाणों ने चाँदनी रात, उत्सुक भुजपाशो मे ले ली ॥

ध्यानावस्थित थे वीर जहाँ, सुन्दर से सुन्दर वहाँ गई ।
परियों की पटरानियाँ गई, रति गई एक से एक नई ॥
पायल की रुनझुन गुनगुन मे, अतिवीर तपस्या करते थे ।
तन मन तक आ आ अतन काम, परियों के दीपक धरते थे ॥

दीपों पर शलभ जला करते, दीपों से सूर्य न जलते हैं ।
वे वीर न ज्वाला से जलते, जो सदा आग पर चलते हैं ॥
बड़वानल से सागर न जला, पानी से आग न बुझ पाई ।
ये शिव के केवल ज्ञान सखी ! तू छलने कहाँ चली आई ॥

अप्सरा नयन के बाण छोड़, बोली मुझ से है कौन बचा ?
मेरे इगित से द्वन्द्व हुए, मेरी आँखों से युद्ध मचा ॥
मैं हूँ मुस्कानो की बिजली, मेरे गालो मे रवि शशि हैं ।
मेरे बालों में उषा निशा, मेरे कमलों में असि मसि है ॥

मैं कभी 'मत्स्यगन्धा' सम्पा, मन जीता वृद्ध 'पराशर' का ।
मैं कभी 'मेनका' वन आई, ऋषि रहा न घाट और घर का ॥
बच सके न 'विश्वामित्र' तपी, ऋषिवर 'वशिष्ठ' से हार गये ।
ऐसे है 'भीष्म' जहाज कौन, जो रूप सिन्धु के पार गये ॥

मेरे उद्दीपन मतवाले, सचारी भाव अनोखे हैं ।
मैंने तप के सागर सोखे, मेरे नखरो मे धोखे हैं ॥
मैं ललना हूँ मैं छलना हूँ, मैं फूल फूल की भाषा हूँ ।
मैं मानव की अन्धी आशा, मैं उपवन की परिभाषा हूँ ॥

चाहूँ तो आकाश को,
दूँ धरनी पर डाल ।
मुझ मे सब आराम हैं,
मुझ में काल कराल ॥

मधुर मोहिनी रूप ने,
असुर नचाये खूब ।
अमृत पिलाया सुरों को,
मैं ज्वाला पर डूब ॥

नर्तित बाला ने कहा,
चला नयन के तीर ।
वीर! तपस्या से मधुर,
मेरी मीठी पीर ॥

गले लगो रस रंग लो,
भोगो सुन्दर रूप ।
सिद्ध तपों से प्रकट है,
मेरा रूप अनूप ॥

मधुर चाँदनी रात में,
चखो रूप के फूल ।
हम भूलें, भूलें हमें,
दुनिया के सब शूल ॥

लोकोत्तर आनन्द लो,
प्रिया प्रणय लो वीर!
अधरामृत का पान कर,
चूमो सरस शरीर ॥

केसर कुमकुम से सरस,
सूंघो मधुर कपोल ।
पीन गुलाबी कुचों पर,
धरो अधर अनमोल ॥

नर्तकी नाचती थी ऐसे, जैसे बिजली की मस्त परी ।
करधनी कंकणों के मोती, बजते थे जैसे ज्योति तरी ॥
कानों के कुण्डल हिल-हिलकर, पर्वत का हृदय हिलाते थे ।
हिलते थे बड़े-बड़े पर्वत, पर वीर नहीं हिल पाते थे ॥

हीरों के हार झूलते थे, दृग कौंध-कौध टकराते थे।
चाँदनी रात मे रूप देख, उठते जीवन गिर जाते थे॥
तरुणी बल खाती जिधर चली, चल पड़े काम-शर उसी ओर।
चंचल नेत्रो के चलते ही, मीठी आहो के मचे शोर॥

लालिमायुक्त रसराज अधर, कामान्धो को पीड़ा देते।
उभरे अङ्गों की आभा के, फल फूल बहुत क्रीड़ा देते॥
उन्नत उरोज उन्नत नितम्ब, तन मन को व्याकुल करते हैं।
जो तत्वज्ञान के वीर पथिक, वे तप के दीपक धरते हैं॥

नवयुवती के रूपक अनेक, मन में घुस प्रलय मचाती है।
वह कभी भँवर में ले जाती, मरने से कभी बचाती है॥
नारी का मोह जाल है या, शीशा है पागलखाने का।
नारी अद्भुत अभिनेत्री है, कुछ पता न आने जाने का॥

इत्रो मे भीगी परी देख, कोई कहता है स्वर्ग यही।
पीते पीते थक गये अधर, फिर भी पीने की चाह रही॥
पुरुषार्थ रूप का आलिंगन, रति स्वाद नयन मुँदते मिलते।
तन मन मे प्रलय मचाते हैं, मन मिलते नये फूल खिलते॥

या तो तरुणी का वक्षस्थल, या गंगा तट का वास रास।
तरुणी का रस प्यासा पानी, गंगाजल पी कर बुझी प्यास॥
कामोद्दीपक कण कण के स्वर, बिजली कडकी मन फड़क उठे।
रस भीगी उर चिपटी कस कर, तन के आभूषण कड़क उठे॥

बालो गालों चाल से,
बल खाती आ पास।
जाड़ों की बरसात मे,
प्रिया बढ़ाती प्यास॥

कामी की भाषा सरस,
रति का मधुर सितार।
ज्ञानी गुरु के हृदय में,
आता नहीं विकार॥

कहा चाँदनी रात ने,
धन्य धन्य यह रात।
प्यासे रस पी कर रहे,
प्यासी प्यासी बात॥

अपसरा नग्न तलवार बनी, बिजली सी वाला दमक उठी।
रूपाग्नि वीर पर चमक उठी, क्रोधाग्नि वीर पर गमक उठी॥
आँखो की तेज तराश चली, गालों के लाल उवाल उठे।
भौंहों के धनुष बाण नाचे, अलको के काल कराल उठे॥

चिलमिला उठे अनमोल चिबुक, नासिका अनोखी महक उठी।
मस्ती में भर नर्तन करती, अलबेली वाला वहक उठी॥
श्वासो से सुरभित लाल लाल, आँधियाँ साथ मे नाच उठी।
शृंगारो की अतियाँ दहकी, सब कामशास्त्र को वाँच उठी॥

गमगमा रहा था कंठहार, वक्षस्थल से क्रीड़ा करता।
नागों की रूप-राशियो सा, बल खाता था पीड़ा हरता॥
वह गला बला की कला सदृश, हर अग वार करने वाला।
उँगली से सिर तक आकर्षण, जलती आँधी ठंडी ज्वाला॥

पहले नर्तन का वार किया, फिर अंगडाई का वार किया।
फिर सुरा उड़ेली गजलों की, फिर बाण आँख का मार दिया॥
वाला की काम कलाओं के, शर पर शर चलते जाते थे।
हिलते थे बड़े बड़े पर्वत, पर वीर नही हिल पाते थे॥

जो वार कर रही थी वाला, वह घायल खुद हो जाती थी।
अप्सरा रूप की गर्वीली, वह रूप देख शरमाती थी॥
प्रभु महावीर से हार गई, वाला की सारी मुस्कानें।
ले सकी न जान दिगम्बर की, मर गई स्वयम् सारी जानें॥

तलवार रूप की हार गई, तेजस्वी योद्धा से लडकर।
आँधियाँ काम की पस्त हुई, हिल सके न तीर्थंकर शकर॥
तलवार काटना सरल मित्र! पर प्यार काटना सरल नही।
जो जीत काम को मुक्त हुए, वे वीर तपोधन हुए यही॥

लीन हुआ जो ज्ञान में,
उसे न जग की चाह।
गंगाजल में हो गया,
दावानल का दाह॥

रूप पराजित हो गया,
शान्त रही जलधार।
पानी पर चलती नही,
तृषित नग्न तलवार॥

युद्ध रूप का ज्ञान से,
त्यागी से तकरार।
भस्म हो गया काम जल,
शकर पर कर वार॥

सुन्दरता तप से प्रकट,
करती तप पर वार।
वार पिता का सुता पर,
उचित न यह व्यवहार॥

गिरी पगों मे हार कर,
गर्व हो गया चूर।
परियो ने भगवान से,
लिया ज्ञान का नूर॥

सभोग शिथिल प्यासा मद्यप, पीता है ज्ञान नही रहता।
ला और पिला ला और पिला, मर जाता है कहता कहता॥
ये मधुर अधर ये काले कच, रस भीगे स्वर कव तक तेरे ?
गुदगुदी और सीत्कार प्यार, बोलो रूपसि ? कब तक मेरे ?

नि.सार विषय, नि.सार रूप, कुछ सार नही रति क्रीडा मे।
नेत्रो के लिए सरस सुख है, सुन्दर नारी की व्रीडा मे॥
सुन्दर नारी से कही अधिक, सुख है परहित की छाया मे।
जो परहित मे शाश्वत रस है, आनन्द नही वह माया मे॥

छलना क्षण भर को सुख देती, दु खों की वर्षा करती है।
झगड़ों की जड स्वर्णिम नागिन, रस भरती है विष भरती है ॥
जीवन लेती जीवन देती, मृगनयनी जादूगरनी है।
नारी की सारी तिथियों पर, कवियों को कविता करनी है ॥

माना नारी के स्वर चुम्बक, सुन्दर तन तजना सरल नही।
वह शिव कैसे हो सकता है, जो पी सकता है गरल नही ॥
परियाँ हारी थक गया काम, त्रिशला-सुत तिल भर हिले नही।
हो गया काम का गर्व चूर, गिर पड़ा मृतक-सा वही कही ॥

नारी समक्ष सुख देती है, यदि पृथक् हुई तो दु:ख दिया।
मोहित करने को आई थी, प्रायश्चित को वनवास लिया ॥
सिद्धहस्त वीर से हार मान, वालाओ ने संन्यास लिया।
मानो शृंगारिक भाषा ने, वन भाषा का अभ्यास किया ॥

परवाने जल मर जाते है, दीपक जलते ही रहते है।
वाधाएँ पथ रोका करती, राही चलते ही रहते है ॥
हमने दुनिया मे देखे है, रवि शशि के पहरे मे स्वप्ने।
रस रूप गन्ध आलिगन धन, नश्वर तन मन कव तक अपने ?

काम के तीक्ष्ण शरो से विद्ध जड़ चेतन कहो कुछ ?
सुख मिले या दु.ख ?
विष्णु वोलो चचला कितनी मधुर है ?
शिव ! वताओ पार्वती के तप कठिन कितने सरस है ?
प्रश्न ब्रह्मा से कलम का तप मधुर या रस मधुर है ?
शारदा का तन मधुर या मन मधुर या गीत मीठे ?
घुंघरुओ के स्वर सरस या तार वीणा के मधुर है ?

एक स्वर फूटा वनो में हर दिशा से।
ज्ञान केवल ज्ञान जो हारा नही है।
काम ने जीता जगत पर वीर तो हारा नही है।
ज्ञान है वह, ज्ञान, केवल ज्ञान !

रक्त हड्डी मांस पर गोरी त्वचा है।
चाँद कहते, परी कहते, कमल कहते हो त्वचा को।
गरल को कहते अमृत कवि।
रूप रस कब तक किसी के ?
यह कली मेरी न तेरी,
हर भ्रमर चक्कर लगाता काटता चक्कर,
वास्तविकता यह, कली किसकी ? कली का कौन अपना ?
प्यार सपना।

काम केवट, जाल नारी, सिन्धु है जग।
अधर पल्लव मास लोलुप मनुज मछली।
प्रेम की है आग मछली पक रही हैं।
काम की क्रीड़ा धधकती आग प्यारी लग रही है।
जन्म लेकर जी रहे हैं मर रहे हैं चल रहे हैं।

जो विवेकी वह रमण मे क्यो फँसेगा ?
कामपीड़ित मृत्यु से कब तक बचेगा ?
हनन धन यौवन मधुर मुस्कान पर करना मरण है।
रूप की जलती शिखा पर शलभ का जाना मरण है।
गुप्त पुरुषो से प्रताड़ित अधर वेश्या के घिनौने।
पीकदानो से सलोने।
क्या कुलीनो के लिए वे चूमने के पात्र ?
धन्य है वे नर न जो गिरते कभी भी।
सुन्दरी को देख कर विकृत न जो होते कभी भी।
जो दृगो को देख कर चचल न होते।
धन्य हैं वे, धन्य है वे, धन्य है वे।

ये कटारी सी अदाएँ ये कटीले नेत्र सुन्दर—
सर्प से खल से खिलौने काँच के है।
स्वाद सौरभ ठग रहे है।
रूप आलिंगन लिपट कर छल रहे है।

कर रही मति भ्रष्ट कुलटा की हवाएँ।
आह इस निस्तत्त्व जग में—
रूप यौवन से तनी तन्वी घिरावों की पहेली।
सुन्दरी विद्वान से सेवा कराती।
सुन्दरी आँसू दिखा झगड़े कराती।
सुन्दरी इसान को पागल बनाती।
कामिनी है क्लेश की जड़।
कामिनी ने राम को वन वन फिराया।
'केकयी' रोयी न खाया घर मिटाया।
लात ऐसी थाल मे मारी—
राज्य का भोजन गिराया।
'राम' वनवासी 'भरत' को योग भाया।
कूच 'दशरथ' कर गये पल पल धधक कर।
क्या मिला घर फोड़ बदनामी उठायी?
दाग मस्तक का अभी तक मिट न पाया।
कौन सी गगा न जाने दाग धोयेगी हृदय का।
वही पीड़ा है मुझे भी जो 'अयोध्या' मे कभी थी।
'मन्थरा' की घात मन मे चुभ रही है।
बात 'माहिल' की हृदय में गड़ रही है।
मर रहे या जी रहे किसको बताएँ?

हम सुखी ऐसे कि जैसे आग पानी मे सुखी हो।
किन्तु जब दर्शन किये भगवान त्रिशला-सुत सुखी के,
ज्ञान पाया दुःख भ्रम है।
वह दुखी है राज्य की लिप्सा जिसे है।
वह दुखी है रूप से आशा जिसे है।
वह दुखी है जो नहीं सन्तोष को अपना समझता।
क्या हुआ धन लुट गया अपना लुटा क्या?
क्या हुआ घर छुट गया अपना छुटा क्या?
घर न अपना धन न अपना मन न अपना।

कान्ता के गीत गा मुख चन्द्र कहता।
रूप यौवन के ढले पर क्या कहेगा ?
प्रणय रस में बावला नवयौवना के श्लोक पढता।
कमलनेत्री! चन्द्रबदनी! अनगिनत रूपक सुनाता।
लाख उपमानों जडे सम्बोधनो के सतलड़ों की—
नित नयी कृतियाँ दिखाता।
मोह माया और ममता के बिराने गीत गाता।
झिडकियाँ खाता बहुत अपमान सहता।
रूप तृष्णा की भयकर बाढ मे सम्मान बहता।
ऊब जाता है भ्रमर जब फूल पर रौनक न रहती।
डूब जाता है तृषित तारुण्य को सर्पिल नदी मे।
ज्ञान का सौरभ कभी मरता नही है।
ज्ञान गगा का अमृत जीवन जगत का।
ज्ञान का दीपक कभी बुझता नही है।
ज्ञान की अचला सदा चलती रहेगी।
ज्ञान की डाली सदा फलती रहेगी।
ज्ञान का सूरज कभी ढलता नही है।

ज्ञानोदय के उजियाले पर, तम की विभीषिकाएँ छाईं।
प्रणप्रज्ञ वीर की तप निधि पर, आँधियाँ करोडो घिर आईं॥
प्रतिकूल हवाएँ बहुत चली, अतिवीर ध्यान से डिगे नही।
भागे डरावने भूत काँप, उत्थान ज्ञान से डिगे नही॥

हिल उठी प्रकृति तप-तेज देख, तपते सूरज पर फूल गिरे।
ऋजुकूला तट पर ज्ञान देख, पूजा करने को भजन घिरे॥
कैवल्य प्रकट था कण कण मे, हर ओर तेज के अक्षर थे।
अद्‌भुत अनन्त अनुपम प्रकाश, मानो नीरवता के स्वर थे॥

क्षणभगुरता मे शाश्वतता, साकार दिखाई देती थी।
अमरत्व शान्त रस का चुप था, पृथ्वी अनन्त सुख लेती थी॥
चिद्‌रूप तपोधन प्रकट हुए, सुषमा का सागर लहराया।
आलोक पुज की महिमा से, सौरभ बरसा सब कुछ पाया॥

आध्यात्मिक छटा चतुर्दिक थी, हर तरफ अखंडित ज्योति खिली।
हर ओर अपरिमित ज्ञान सूर्य, मानों कमलों को तृप्ति मिली॥
कैवल्य पूजने को भू पर, उज्ज्वलता निर्मलता आई।
समता की परम सिद्धियाँ ले, चाँदनी धूप पथ में छाई॥

युग युग के दाता वर्द्धमान, सर्वज्ञ सौम्य सब के स्वामी।
अर्हन्त प्रकट कैवल्य प्रकट, वदले छलने वाले कामी॥
ज्योतिर्धर महावीर स्वामी, तीर्थंकर धर्मचक्र की जय।
ज्योतिर्धर वर्द्धमान की जय, धरती के मर्मचक्र की जय॥

जय हो उनकी जिनके पग छू, वैषम्य साम्य में वदल गया।
तीर्थंकर के दर्शन करके, कवि को जीवन मिल गया नया॥
प्रभु परम ज्योति अद्भुत अखड, अभिवादन आराधन जय जय।
उनकी भाषा मेरे अक्षर, उनकी पगध्वनि मेरी मृदु लय॥

दीक्षा तिथि मगसिर सुदी,
दसमी दीक्षित धन्य।
साढ़े वारह वर्ष तक,
तप कर शुद्ध अनन्य॥

मित्र उनहत्तर पाँच सौ,
ईशा पूर्व प्रकाश।
प्रकट ज्ञान भगवान थे,
मैं हूँ उनका दास॥

निर्जल व्रत तप कठिन कर,
निराहार रह वीर।
जय पा तीर्थंकर हुए,
महावीर रणधीर॥

धर्मक्षेत्र यह हृदय है,
कुरुक्षेत्र संसार।
पाप पुण्य दो पक्ष है,
जहाँ जीत या हार॥

प्राप्त हुए कैवल्य को,
प्राप्त किया कैवल्य।
तीर्थंकर भगवान ने,
लिया दिया कैवल्य ॥

कैवल्य प्राप्त कर पृथ्वी पर, लोकोज्ज्वल रत्न हुए दाता।
मिल गये पिता हर प्राणी को, मिल गई निराश्रित को माता ॥
त्रय रत्न रूप तीर्थंकर प्रभु, अपराजित वन्ध मुक्त उज्ज्वल।
छासठ दिन मौन साधना कर, प्रकटे कैवल्य युक्त उज्ज्वल ॥

वर्ण स्वर्ण दमकता था ऐसे, जैसे रत्नो की भाषा हो।
शनि दशा दिशाओ में प्रकाश, मानो रवि की अभिलाषा हो ॥
बुध दशा चमत्कारो जैसी, कमलो के वन को सूर्य बनी।
कण कण मे फैली परम ज्योति, पृथ्वी पर थी रश्मियाँ घनी ॥

हो गया धरा का मौन मुखर, सरिताओ के कल गान हुए।
नभ के नक्षत्रों ने गाया, लो प्रकट लोक भगवान हुए ॥
तरु तरु फल-फूल वढा वोले, हमने मन वाछित फल पाये।
तीर्थंकर के दर्शन करके, सारे कवियो ने गुण गाये ॥

ये दर्शन आत्म तत्व के हैं, ये दर्शन फूल फूल के है।
ये दर्शन सरित सरिता के, ये दर्शन कूल कूल के है ॥
ये दर्शन धरती माता के, ये दर्शन गगन पिता के है।
जिसको न चिता भी जला सकी, ये अक्षर उसी चिता के है ॥

कैवल्य ज्ञान को नमस्कार, सशय बाधा का नाम नही।
युग युग के दाता को प्रणाम, जो सदा सुवह है शाम नही ॥
ये वढते वढ़ते वर्द्धमान, ये अप्रमेय इनमे न चाह।
ये तीर्थ समुद्रों पर जहाज, इनकी गति तपती हुई राह।

यह कथा मौन परमेश्वर की, यह कथा दिव्य वाणी की है।
कविता मत समझो सन्यासी, यह पूजा हर प्राणी की है ॥
अर्चना सभी आदित्यो की, अर्चना अहिंसा के स्वर की।
भारती दिशाओ मे गाती, आरती पूर्ण परमेश्वर की ॥

मौन मुखरित हुआ दिव्य वाणी मिली।
वाग की हर कली रश्मियो से खिली ।।

हर दिशा गूजती भारती गा रही।
सूर्य की हर किरण आरती गा रही ।।
वीर भगवान के दिव्य दर्शन मिले।
दिव्य दर्शन मिले दिव्य अर्चन मिले ।।

भोर के भाल पर दिव्य आभा खिली।
मौन मुखरित हुआ दिव्य वाणी मिली ।।

दिव्य दर्शन हुए ज्ञान में भक्ति थी।
दिव्य दर्शन हुए भक्ति में शक्ति थी ।।
दिव्य दर्शन हुए इन्द्र गाने लगे।
सुर असुर साथ वीणा वजाने लगे ।।

लोक भगवान से लोक रचना खिली।
मौन मुखरित हुआ दिव्य वाणी मिली ।।

दिव्य दर्शन हुए हर तरफ त्याग था।
सत्य साकार था शान्ति का राग था ।।
हिंसको ने अहिंसा पढ़ी भाल पर।
भूमि की जीत थी सर्प से काल पर ।।

सूर्य श्री ज्योति मणि नागफण पर खिली।
मौन मुखरित हुआ दिव्य वाणी मिली ।।

## ज्ञान वाणी

उन तरुओं को शत शत प्रणाम, जो पत्थर सह फल देते हैं।
उन मेघो को मेरे प्रणाम, जो तप तप कर जल देते हैं॥
धरती माता को नमस्कार, सब सहती शब्द नही कहती।
उन मौन सुरभि का वंदन है, जो तपते श्वासों से बहती॥

मेरी पूजा की वाणी में, निर्मल सरिताओं के स्वर हैं।
मेरे प्राणों की भाषा में, 'त्रिशला'-नन्दन तीर्थंकर हैं॥
पृथ्वी चुप है आकाश मौन, ये मौन व्रती बाते करते।
दुनिया के हिंसक भूतों से, कहते हैं क्यो लड़ते मरते?

अस्तेय धर्म जिनका जीवन, वे वर्णाका के तन मन धन।
अतिवीर दिगम्बर महावीर, वन वन के घन उपवन उपवन॥
अद्भुत प्रकाश कैवल्य ज्ञान, त्रय रत्न रूप भगवान वीर।
प्राणी प्राणी को सुख अनन्त, सब के राजा सब के फकीर॥

जिनमे न स्वार्थ की गन्ध कही, वे सौरभ फूल फूल मे हैं।
जो हर प्यासे के लिए नीर, वे सरिता कूल कूल मे हैं॥
उन तीर्थंकर को नमस्कार, जो माँगे बिना बहुत देते।
वे त्याग तपस्या के गौरव, मेरी हर पीड़ा हर लेते॥

संकटमोचन भगवान वीर, फैले न हाथ मन गिरे नही।
हर फूल मुझे ललचाता है, मैं बहक न जाऊँ कभी कही॥
इच्छा है जो कुछ लिखता हूँ, जन जन की थाती बन जाये।
मेरी पूजा के गीतों को, धरती गाये अम्बर गाये॥

मैं गायक फूल फूल का हूँ, मैं पायक प्राणी प्राणी का।
यह मेरी बात तुम्हारी है, यह रस है वाणी वाणी का।।
ये दर्शन वर्द्धमान के हैं, भगवान विविध रूपो में है।
भगवान हमारे महावीर, जन जग में है भूपो में है।।

चलते चलते राह बन गये,
तपते तपते बने उजाली।
तन प्राणी प्राणी का तन है,
मन उपवन उपवन का माली।।

रूप अतन जीवन चन्दन है, रोम रोम कमलों का वन है।
श्वासों मे साहित्य सुमन है, हाथो मे विद्या का धन है।।
बात बात मे जन जन का शिव, राग राग में भोले शंकर।
अधरों पर दुखियो की कविता, आँखों में सारे तीर्थंकर।।

ज्ञान सिन्धु ऐसा सागर है,
जो न कभी रत्नो से खाली।
चलते चलते राह बन गये,
तपते तपते बने उजाली।।

दुनिया त्यागी कपडे छोड़े, तोड़ा नही हृदय कवियों का।
जोडा नही दिया दाता को, श्वासों में प्रकाश रवियो का।।
उपवासो में जग को भोजन, मौन व्रतो मे मन्त्र ज्ञान के।
मस्तक पर त्रय रत्न दीप्त है, उर में अंकित शब्द ध्यान के।।

मन्दिर मन्दिर के दीपक स्वर,
चाह अमर पूजा की थाली।
चलते चलते राह बन गये,
तपते तपते बने उजाली।।

जिधर दिगम्बर पग धरते थे, उधर बुझे दीपक जलते थे।
जिस पर दया दृष्टि करते थे, उसके नष्ट बीज फलते थे।।
जो उस जलधारा में तैरे, उनके सारे दाग धुल गये।
प्रकट न्याय भगवान भूमि पर, न्याय तुला पर वाद तुल गये।।

मानस में शशि की शीतलता,
माथे पर सूरज की लाली।
चलते चलते राह बन गये,
तपते तपते बने उजाली ॥

गूजी स्यादवाद की बोली, भावों मे भक्तों की भाषा।
पूजा मे जन जन की पूजा, चावों में सब की अभिलाषा ॥
गति विधि में युग युग की निधियाँ, यति मे विश्व क्रान्ति की सीता।
प्रकट लोक भगवान भूमि पर, मुखर हुई मुनियो की गीता ॥

रसना नही रसो से खाली,
साधू नही गुणो से खाली।
चलते चलते राह बन गये,
तपते तपते बने उजाली ॥

आत्मा के रूपक है अनेक, उपमानों मे आत्मा के स्वर।
यह चन्द्र बदन वह काल नाग, कोई 'दधीचि' कोई 'शकर' ॥
अद्भुत प्रकाश मे प्रकट हुए, कैवल्य प्राप्त कर तीर्थकर।
जगमगा उठे जय बोल उठे, इन्द्रादि देवताओ के घर ॥

सुरराज इन्द्र ने पूजा को, सुर वृन्द सभा मे बुलवाये।
आज्ञा कुबेर को दे बोले, केवडा कुओ मे घुल जाये ॥
तीर्थकर महावीर के स्वर, सुनने सब प्राणी आयेंगे।
हम वाणी सुनने जायेंगे, हम दर्शन करने जायेंगे ॥

ऋजुकूला तट पर शुद्ध ज्ञान, व्याख्यान सृष्टियो को देंगे।
हम ज्ञानामृत का शब्द शब्द, अपने श्वासो में भर लेंगे ॥
देशनामच की रचना हो, अद्भुत् अनुपम हो समवशरण।
जन जन के लिये सुलभ करदो, 'त्रिशला'-नन्दन के चरणवरण ॥

आलोक पुज की वाणी से, कोई प्राणी वचित न रहे।
हर दिशा दिव्य ध्वनि युक्त रहे, प्रिय पवन ! सुगन्धित हवा वहे ॥
सुन्दर सुरभित हो समवशरण, नन्दन वन के उपकरण सजे।
सब दर्शन करे लोक प्रभु के, ऐसे आसन पर धरण सजे ॥

चन्दन चर्चित ऋतु सुधामयी, तन मन में मधुर सुगन्ध भरे।
हर ओर लोक भगवान रहे, हर जीव हृदय को शुद्ध करे॥
आज्ञा पा धुन में उठ कुवेर, ऋजुकूला के तट पर आया।
मण्डप की रचना हेतु धनी, सुर लोकों के शिल्पी लाया॥

तीर्थंकर के उपदेश हेतु, अद्भुत मंडप मुँह से बोला।
देशना हेतु हर दिशा सजी, पर प्रभु ने मौन नहीं खोला॥
दुन्दुभी वजी प्राणी आये, परिवार सहित सुरपति आये।
कैवल्य ज्योति के अर्चन को, पुण्यों के सारे फल लाये॥

समवशरण में सिद्धियाँ,
सेवा रत थी मित्र!
महावीर भगवान का,
हर क्षण वड़ा पवित्र॥

समवशरण में हर तरफ,
दर्पण लगे अनूप।
नयन नयन में बसे थे,
महावीर के रूप॥

ऋजुकूला के तीर पर,
अद्भुत अनुपम मंच।
पुण्यों की महिमा प्रकट,
कहीं न कालस रंच॥

समवशरण में दिव्यध्वनि,
जीव जीव में ज्ञान।
समवशरण के सृजन में,
रहता सब का ध्यान॥

महावीर भगवान का,
सुनने को उपदेश।
समवशरण में आ गये,
ब्रह्मा विष्णु महेश॥

तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि,
सुनते है जो लोग।
उनको जीवन में कभी,
रहता शोक न रोग ॥

सुर नर मुनि जन देव गण,
जल थल नभ चर जीव।
समवशरण में सज गये,
नृपति मुकुट धर जीव ॥

अर्चना और दर्शन करने, देवो के दल के दल आये।
कैवल्य ज्ञान भगवान प्रकट, सुर असुरो ने दर्शन पाये ॥
वैशाली के गणपति आये, काशीपति मथुरापति आये।
मद्रासी बंगाली सिन्धी, पूजा को स्वच्छ सुमन लाये ॥

पूरब आया पश्चिम आया, उत्तर आया दक्षिण आया।
सत्सग समन्वय का करने, कण कण आया पूजा लाया ॥
सब बैठे रहे प्रतीक्षा मे, पर प्रभु नें मौन नही खोला।
चल दिये वहाँ से महावीर, तब इन्द्र उपस्थिति से बोला ॥

सज्जनो, देवियो, सुर, असुरो! प्राणियो! लोक भगवान मौन।
देशना श्रवण को उत्सुक जन! भगवान मौन या ज्ञान मौन?
कैवल्य जहाँ भी जायेंगे, हम पद-चिह्नो पर जायेंगे।
जिस जगह रुकेंगे वही नया, हम अदभुत मच बनायेंगे ॥

जागेगा भाग्य कभी न कभी, भगवान कभी तो बोलेंगे!
तीर्थंकर तप से प्रकट ज्ञान, यह मौन कभी तो खोलेंगे ॥
प्रभु महावीर की वाणी से, कल्याण प्राणियो का होगा।
प्रभु वर्द्धमान के चरणो से, उत्थान प्राणियो का होगा ॥

शिल्पियो! समेटो मच शीघ्र, रचना यह और कही होगी।
चल पड़े जीव सब उसी ओर, जिस ओर वढे अद्‌भुत योगी ॥
पैरों के नीचे की चीटी, तू वडा भाग्य लेकर आई।
पग महावीर नें स्वयम् धरा, तू तरी 'अहल्या' सी काई!

जब तक न ज्ञान तब तक लज्जा, जब ज्ञान हुआ तो ज्ञान वस्त्र ।
कैवल्य ज्ञान अपराजित बल, तीर्थंकर मे सब अस्त्र शस्त्र ॥
जिनके न कान अहि रंध्र मित्र! वे बात ज्ञान की सुनते है ।
कुछ ज्ञान श्रवण कर सुख पाते, कुछ भुन भुन माथा धुनते है ॥

समवशरण बनता गया,
रुके जहाँ भगवान ।
जन समुद्र पीछे चला,
आगे आगे ज्ञान ॥

अमृत देशना का मिले,
बड़ी सभी की चाह ।
बड़े ज्ञान की ज्योति है,
महावीर की राह ॥

'राजगृही' पहुँचे प्रणव,
'इन्द्र' आदि थे साथ ।
उठा देशना के लिये,
'विपुलाचल' पर हाथ ॥

'विपुलाचल' पर भगवान रुके, आदर्शो के दिनमान रुके ।
प्रभु महावीर के चरणों पर, विद्वान झुके अभिमान झुके ॥
उपदेश श्रवण को उत्सुक थे, इन्द्रादि सन्त ज्ञानी ध्यानी ।
वाणी न खुली तीर्थंकर की, कारण जाने सुरपति ज्ञानी ॥

हममें से ऐसा कौन यहाँ, जो प्रभु का अर्थ समझ लेगा ।
भगवान वीर के भावो को, जो सब के आगे धर देगा ॥
सौधर्म इन्द्र की युक्ति चली, गुरु 'इन्द्रभूति' दौड़े आये ।
अपने गुण उनको अल्प लगे, जब दाता के दर्शन पाये ॥

बन गया अलौकिक समवशरण, अद्भुत वैभव अद्भुत प्रकाश ।
राजा 'श्रेणिक' अगवानी मे, मानो भक्तो के भक्त दास ॥
आगन्तुक आते थे ऐसे, जैसे हो रत्नों की झाले ।
उत्सुकता हर प्राणी मे थी, वचनो का अमृत शीघ्र पाले ॥

लिच्छवि प्रमुखों की शोभा थी, शोभा थी वज्जि जवानों की।
'श्रेणिक' सेवक ने सेवा की, सुरपतियो की इन्सानो की ।।
झुक बैठे 'इन्द्रभूति गौतम', तीर्थंकर को पहचान लिया।
सूरज के दर्शन करते ही, तप के प्रभात को जान लिया ।।

कर कर प्रणाम गौतम चुप थे, उत्सुक थे महावीर बोले।
जिनमें विवेक का सार भरा, वे युग युग का सम्पुट खोले ।।
सहसा नीरवता मुखर हुई, हर ओर दिव्य ध्वनि गूँज उठी।
मानो सत्यों के सागर में, सद्भावों की ध्वनि गूँज उठी ।।

तल अतल वितल अम्बर जग मे, आलोक लोक वाणी गूँजी।
शारदा सत्य की मुखर हुई, कण कण में कल्याणी गूँजी ।।
गूँजा प्रकाश का पूर्ण गीत, संगीत शान्ति का गूँज उठा।
तप ज्योति क्रांति की मुखर हुई, दिनमान क्रांति का गूँज उठा ।।

'विपुलाचल' पर देशना,
युग युग को वरदान।
मुखर दिव्य वाणी हुई,
मुखर लोक भगवान ।।

जीने दो जीते रहो,
परम धर्म यह धर्म।
सत्य अहिंसा प्रेम से,
करो विश्व में कर्म ।।

परम धर्म है अहिंसा,
परम धर्म अस्तेय।
परमेष्ठी गुरु पूर्ण हैं,
इनके सद्गुण गेय ।।

फलदाता है कल्प तरु,
सत्य सभी का धर्म।
सब का दाता धर्म है,
सब का दाता कर्म ।।

चिन्तामणि चिन्तन किये,
देती इच्छित दान।
सर्वश्रेष्ठ सम्पूर्ण धन,
ईश्वर केवल ज्ञान ॥

हिंसा चोरी झूठ से,
सदा रहो सब दूर।
परिग्रह और कुशील से,
होता बुरा जरूर ॥

क्रोध शत्रु मद जहर है,
माया लोभ मसान।
क्षमा कवच ऋण अग्नि है,
मित्र मिलन मधु पान ॥

कविता जिसको प्राप्त है,
उसे प्राप्त है राज।
जिसे नम्रता प्राप्त है,
उसे प्राप्त है ताज ॥

दुर्जन संग भुजग है,
विद्या धन अनमोल।
सदा सत्य की जड़ हरी,
बोल ज्ञान के बोल ॥

तीर्थंकर ने उपदेश दिया, ध्वज की रक्षा करते रहना।
विचलित न धर्म से होना तुम, गगा धारा वन कर वहना।
जो समवशरण पर फहर रहा, यह ध्वज है प्राणी प्राणी का।
इस धर्म पताका मे स्वर है, हर तीर्थंकर की वाणी का ॥

पचरगे ध्वज मे परमेष्ठी, अरुणाभ और पीताभ श्रेष्ठ।
श्वेताभ हरा नीलाभ वर्ण, पॉचो मे न्यायिक लाभ श्रेष्ठ ॥
स्वस्तिक प्रतीक सस्कृति का है, ध्वज णमोकार का उजियाला।
पहनाते हैं पहनायेगे, इस ध्वज को सव मन की माला ॥

यह ध्वज मानवता का मस्तक, मानवता जैन धर्म की गति।
इस झंडे के नीचे निर्भय, इस झडे मे ऊर्जा की मति ॥
यह झंडा जन जन का झंडा, यह झडा मंगल करता है।
यह शिखर रत्नत्रय का प्रतीक, यह कभी न गिरता मरता है ॥

सम्यग्दर्शन का उजियाला, इसमें है सम्यग्ज्ञान पूर्ण।
सम्यक् चरित्र का मौन रूप, इस ध्वज को सब का ध्यान पूर्ण ॥
अरहन्त सिद्ध आचार्य साधु, ध्वज फहराते है उपाध्याय।
त्रयरत्न रूप अद्भुत अनूप, इसका स्वरूप है पूर्ण न्याय ॥

यह धर्म चक्र यह कर्म चक्र, यह जयध्वज जनजन का ध्वज है।
इस झडे मे शाश्वत लहरे, यह सदा सदा का ध्वज अज है ॥
इस झंडे के नीचे आओ, इस झडे के नीचे गाओ।
हिंसा की काली छाती पर, यह ज्योति पताका फहराओ ॥

यह झंडा लेकर बढे चलो, तलवारे फूलों मे बदले।
इस झडे के दर्शन करके, जल-प्लावन कूलो मे बदले ॥
यह सदा शक्ति बरसाता है, परहित का पाठ पढाता है।
यह सब का मान बढ़ाता है, यह सब का ज्ञान बढ़ाता है ॥

परमेश्वर का रूप ध्वज,
वारम्बार प्रणाम।
जिसका झंडा गड़ गया,
उसका ऊँचा नाम ॥

अमर पचरँगा ध्वज हमे बहुत प्यारा।
सभी का किनारा सभी का सहारा ॥

सदा शक्ति वाला अमर भक्ति वाला।
जगत का मुकुट यह जगत का उजाला ॥
भोर अरुणाभ है पीत स्वर्णाभ है।
श्वेत सुख शिव हरा स्वच्छ नीलाभ है ॥

किसी से न हारा किसी को न मारा।
अमर पचरँगा ध्वज हमें बहुत प्यारा ॥

सवक देशभक्ति का इसमे भरा है।
वरण सर्व शक्ति का इसमें भरा है॥
मुखर स्वस्ति का सांगरूपक ध्वजा मे।
गगन में ध्वजा यह ध्वजा यह प्रजा में॥

अमर है अमर है अमर ध्वज हमारा।
अमर पचरँगा ध्वज हमे वहुत प्यारा॥

पताका पवन खूब लहरा रहा है।
अहिंसा लहर इन्द्र फहरा रहा है॥
हमारी पताका प्रभा त्याग की है।
कथा शान्ति की है कथा आग की है॥

युगालोक हर लोक झंडा हमारा।
अमर पचरँगा ध्वज हमें वहुत प्यारा॥

यह धर्म धर्म का उन्नत ध्वज, उन्नति की हवा चलाता है।
सव को सन्मार्ग वताता है, घर घर में दीप जलाता है॥
यह सत्य अहिंसा का प्रतीक, अन्याय न इस तक जा पाता।
हिंसा न करो उपकार करो, यह धरती अम्वर पर गाता॥

सौधर्म इन्द्र! तुम शासक हो, सव को सुख देने वाले हो।
तुम सिर्फ स्वर्ग के नही मित्र! सव भुवनो के उजियाले हो॥
देवो! तुम मे सामर्थ्य वहुत, तुमको धरती का ध्यान रहे।
अपने भोगो के साथ साथ, कर्तव्यो का भी ज्ञान रहे॥

अधिकार सभी को प्रिय होते, कर्त्तव्य भूल फूले फिरते।
कर्त्तव्य-पूर्ति के विना मित्र! दुःखो के काले घन घिरते।
वर्षा अनुकूल रहे भू पर, पृथ्वी पर मधुर समीर वहे।
शत्रुता व्यर्थ की मिट जाये, आपस मे सव का प्यार रहे॥

घर घर में झञ्झावात आज, आपस मे तलवारे चलती।
छोटे छोटे है राज वहुत, वस्तियाँ चिताओ सी जलती॥
भाई का भाई रहा नही, साथी से साथी जलता है।
अव राम नही लक्ष्मण न कही, भाई को भाई छलता है॥

शासक मनमानी करते है, मदिरालय मे गणतन्त्र दुखी।
अन्याय बढ रहे है प्रतिपल, शासक न सुखी जनता न सुखी ॥
नारी के पीछे रोज युद्ध, हिसा की मनचाही चलती।
दीपों से ज्वाला बरस रही, मानवता आँखो से ढलती ॥

राजा कर्तव्यविमुख होकर, शैयाओ पर शासन करते।
'लंका' जलने की फिक्र नही, ये 'रावण' 'सीताएँ' हरते ॥
हत्यारे शोर मचाते है, साधू को चोर बताते है।
ये कैसे मित्रो! घरवाले, जो घर मे आग लगाते है ॥

'इन्द्रभूति गौतम' सुनो,
सुनो असुर सुर सर्व।
दुनिया का मगल करे,
'विपुलाचल' का पर्व ॥

श्रम से धन से ज्ञान से,
हरो सभी के कष्ट।
धर्मभ्रष्ट को देख कर,
कभी न होना भ्रष्ट ॥

पशु-बलियाँ रोको सभी,
रोको नरबलि 'इन्द्र'!
व्यर्थ बोलना बन्द हो,
रोको स्वरबलि 'इन्द्र'?

सेवा करो समाज में,
हरो दुखी की पीर।
उन नयनो को हँसी दो,
जिन नयनो मे नीर ॥

सावधान ससार में,
बड़े बडे है धूर्त।
दूर धूर्तता से रहो,
धर्म ज्ञान के मूर्त!

होशियार इस देश पर,
छाये काले भूत।
रक्तपान नित कर रहे,
भर भर प्याले भूत॥

कच्चे पक्के मांस के,
खुले आम बाजार।
कटते सिकते हर तरफ,
बेजबान लाचार॥

बकरी कट कट सिक रही,
काटी जाती गाय।
हमें पिलाती दूध जो,
उन पर यह अन्याय॥

बिल्ली जैसी भावना,
फाड़ कबूतर खाय।
बन सकती है आग भी,
दुर्बल जन की हाय॥

उदर समाता खाइये,
देह सुहाता धार।
सब जीवो का ध्यान रख,
अपने मन को मार॥

तरह तरह के रूप है,
एक रूप के रूप।
बेटा माता के लिये,
जनता को वह भूप॥

सुर नर मुनि गन्धर्व गण!
लो दो सब को ज्ञान।
ज्ञान बिना होता नही,
जीवन का उत्थान॥

मैं अपने में कुछ नहीं,
मै हूँ केवल ज्ञान।
सब दानो से श्रेष्ठ है,
इन्द्र! ज्ञान का दान॥

बुरा किसी का मत करो,
बुरा न बोलो बोल।
बुरा सुनो देखो न तुम,
यही ज्ञान का मोल॥

हर ओर दिव्य ध्वनि फैल गई, जैसे सूरज की स्वर्ण धूप।
आगये शरण मे क्षण भर में, अभिमान छोड़ कर रुष्ट भूप॥
पग छुए वीर तीर्थंकर के, अन्तर में दीपक जला लिया।
पचरगे झडे को सब ने, श्रद्धा के साथ प्रणाम किया॥

सामूहिक पूजा कर राजा, प्रभु की वाणी मे गाते थे।
प्रभु महावीर के श्लोको का, 'गौतम' गुरु अर्थ बताते थे॥
राजा 'श्रेणिक' राजा 'चेटक', 'पाटलीपुत्र' 'काशी' वासी।
भगवान वीर के भक्त बने, राजा सेवक रानी दासी॥

समता का शखनाद गूँजा, वन्दन की धारा मुखर हुई।
शिष्यो के दल के दल आये, मन्थन की धारा मुखर हुई॥
विद्वान गुणी 'गौतम गणधर', श्री इन्द्रभूति ने गुण गाये।
आलोक लोक भगवान वीर, जन जन के मानस मे छाये॥

पहले गणधर थे 'इन्द्रभूति', दूसरे शिष्य श्री 'अग्निभूत'।
तीसरे शिष्य हैं 'वायुभूति', भगवान वीर के दिव्यदूत॥
चौथे थे 'आर्यव्यक्त' सेवक, पाँचवे 'सुधर्मा' थे पडित।
षष्ठम 'मडित' अद्‌भुत उदार, सप्तम थे 'मौर्यपुत्र' मडित॥

अष्टम मिथिलावासी पडित, अनुकूल 'अकपित' धर्म प्राण।
गुणगायक नवम 'अचलभ्राता', 'मेतार्य' दशम थे लोक त्राण॥
एकादश प्रभा 'प्रभास' शिष्य, ग्यारह गणधर गुणवान हुए।
भगवान वीर की वाणी के, देवो द्वारा गुणगान हुए॥

'उत्पाद' सत्य 'व्यय' सत्य 'ध्रौव्य', भगवान वीर के पहले स्वर ।
हर जाति वर्ग से मडित थे, आलोक लोक के शिष्य प्रवर ।।
वन गया चतुर्विध सघ शुद्ध, साधू साध्वी के भजन मन्त्र ।
श्रावक श्राविका रश्मियो सी, गुरु महावीर की बनी यन्त्र ।।

सघ लोक भगवान का,
वड़े बडे विद्वान ।
अगणित कठों से हुआ,
मुखर ज्ञान विज्ञान ।।

गणधर गण गुरुमन्त्र ले,
बोले पग छू साथ ।
ज्ञान दिया अब क्या करे,
हमे बताओ नाथ !

महावीर भगवान ने,
कहा उठाकर हाथ ।
प्राणी की सेवा करो,
सब को लेकर साथ ।।

अधिकारो की होड़ है,
कर्त्तव्यो का दाह ।
अपनी अपनी राह है,
अपनी अपनी चाह ।।

अन्धकार मे देश है,
हिसा मे है जीव ।
चोटी पर राजा खड़े,
नीचे हिलती नीव ।।

यज्ञो मे पशु बलि तजो,
तजो जीव का दाह ।
हत्या भूख अनर्थ मे,
बनो धर्म की राह ।।

नैतिकता का पाठ दो,
राजनीति को धर्म।
धर्म बिना होता नहीं,
सफल किसी का कर्म॥

धर्म न जाति विशेष का,
धर्म सभी का माल।
धर्म कभी घटता नही,
धर्म न डसता काल॥

जिससे शिव हो देश का,
खिले फले संसार।
ऐसा मानव मन बने,
ऐसा हो ससार॥

भगवान वीर की वाणी से, गुरुओ का गणधर सघ बना।
हंसों ने छाना नीर क्षीर, फैला सत्यों का रग घना॥
हिसक राजाओं ने आ आ, चरणो मे अपने शस्त्र धरे।
जिस भू पर प्रभु के चरण गये, उस भू के सूखे कुए भरे॥

राज्याध्यक्षों को ज्ञान दिया, जन जन का शिव करते रहना।
जनता के हित तपते रहना, जनता के हित पीडा सहना॥
जिसके शासन मे प्रजा दुखी, वह शासक नारकीय शासक।
वह राजधर्म का सुखी राज्य, जिसमे न कही भी हो याचक॥

राजा भोगो का भक्त न हो, राजा सन्यासी बना रहे।
राजा जनता के दु.खो को, हर्पित हो अपने शीश सहे॥
जनता की आँखो का आँसू, राजा की आँखो से निकले।
राजा की कोमल गदा देख, पत्थर पिघले लोहा पिघले॥

राजा हो 'हरिश्चन्द्र' राजा, पग पग पर अग्नि-परीक्षा दे।
राजा हो ऐसा गुरु विशेप, जो सभी युगो को दीक्षा दे॥
जैसे थे राजा 'जनक' अतन, ऐसे विदेह वरदान बने।
अज्ञान भटकता फिरता है, राजागण रिस मे ज्ञान बने॥

राजाओ! गैर दिशाओ से, खतरे की घंटी बोल रही।
सीमा की घाटी घाटी से, हिंसा मधु में विष घोल रही।।
हिंसा से सावधान रहना, दुष्टो से होशियार रहना।
अन्याय किसी पर मत करना, अन्याय किसी का मत सहना।।
दुश्मन के ज्वालामुखी बुझे, बाणों में इतना पानी हो।
'शंकर' बनकर विष पी जाओ, प्राणो में इतना पानी हो।।
थपकी से घट पर हाथ फेर, हिंसक को सबक पढाना है।
जनपतियो! अपने त्यागो से, जन जन का मान बढ़ाना है।।

नैतिकता से नीति से,
चले धर्म का राज।
जनसेवा की धर्म से,
करो प्रतिज्ञा आज।।

निर्धनता में और मन,
धन पाने पर और।
समय पड़े पर और मन,
स्वार्थपूर्ति कर और।।

राजनीति वेश्या सदृश,
जिसके रूप अनेक।
गणिकाओं के नृत्य में,
धर्म कर्म हैं टेक।।

जो राजा धर्मविमुख होता, वह राजा नरक भोगता है।
जो राजा भोगों को तजता, वह सुन्दर सरक भोगता है।।
तुम धर्म कर्म से राज करो, विद्वानों का सम्मान करो।
तन से मन से धन से स्वर से, कविताओं का गुणगान करो।।
चोरी न चले रिश्वत न चले, बेईमानी की बात न हो।
सूरज से खाली दिन न रहे, चन्दा से खाली रात न हो।।
गेहूँ से खाली खेत न हो, चावल से खाली खेत न हो।
जीवन मे जाली घात न हो, आटे में जाली रेत न हो।।

न्यायालय में अन्याय न हो, ईर्ष्या से पैदा हाय न हो।
दुर्बल पर अत्याचार न हो, धन विना जीव कृशकाय न हो॥
असली में नकली मेल न हो, आँखो में पडती धूल न हो।
हर सूरज अनुशासन में हो, सौरभ से खाली फूल न हो॥

सग्रह करने का भाव न हो, गुरु को छलने का भाव न हो।
औरो को पीडा पहुँचा कर, सुख से जीने का चाव न हो॥
अपने को अपना बोध रहे, दिन दिन है, रात रात ही है।
जो कहो उसे कर सुख देना, राजा की बात बात ही है॥

तुम तन से राजा बने रहो, मन से सन्यासी बने रहो।
तुम रहो भरत से नृपति सजग, घर में वनवासी बने रहो॥
शृखला शक्ति की बने रहो, भावना भक्ति की बनी रहे।
भारत माता स्वाधीन रहे, दीपिका व्यक्ति की बनी रहे॥

गगा बन कर बहते रहना, तरु बनकर सब को फल देना।
जो पेड़ तनिक भी प्यासा हो, उसको सेवा का जल देना॥
झडे के नीचे साथ साथ, ध्वज वदन बार बार करना।
तूफान भरे काले तम मे, तुम आस्था के दीपक धरना॥

जाति नही है जन्म से,
जाति कर्म से सिद्ध।
जाति न साधू-सन्त की,
जाति धर्म से सिद्ध॥

शाकाहारी जैन है,
जहाँ न दाह न आह।
मनसा वाचा कर्मणा,
चलो ज्ञांन की राह॥

खानपान सब शुद्ध हो,
रखना शुद्ध चरित्र।
यह धरती उनसे टिकी,
जिनका हृदय पवित्र॥

औषध भोजन शास्त्र धन,
अभयदान जयकार।
सुनो श्रावको ध्यान से,
श्रेष्ठ दान है चार॥

ऐसे समाज की रचना हो, कोई भी लक्षणहीन न हो।
सब हो उदार पर उपकारी, जनता में कोई दीन न हो॥
पतिव्रता एक नारी व्रत नर, सच्चा नर सच्ची नारी हो।
जनता को शासक प्यारा हो, शासक को जनता प्यारी हो॥

मिट जायें सारे भेद भाव, तरु फूले फले खूब फल दे।
उपवन में हो या कानन मे, वादल सब को इच्छित जल दें॥
गज सिंह नाग खग मृग जलचर, आपस मे अद्भुत प्यार करें।
दुर्वल का सवल सहायक हो, गुणवानों का सत्कार करे॥

भूखे लाचार अनाथो को, भोजन दे अपने से पहले।
शासक वटवारा शुद्ध करे, धरती वन कर सब कुछ सहले॥
सम्पन्न रहे हर घर इतना, कुत्ते बिल्ली भूठा न करें।
हाथो से इतना भर जाये, प्राणी प्राणी का पेट भरें॥

श्रम से हरियाली हो जग मे, निष्काम कर्म फल देता है।
वादल निष्काम कर्म करते, नभ पृथ्वी को जल देता है॥
सामाजिक अस्तव्यस्तता को, सगठित व्यवस्था में वदलो।
उन्नति नीचे गिरती जाती, सँभलो सँभलो शासक सँभलो॥

मानसिक रोग से मुक्त रहो, शारीरिक वाधा दूर रहे।
वह शासक दो वह दो समाज, जिसमें न जीव मजवूर रहे॥
जैसा शासक जनता वैसी, जनता शासक शासक जनता।
शासको! शहीदों को पूजो, जिनकी मिट्टी से नभ वनता॥

जो फूल डाल पर देख रहे, ये प्रकट शहीद डाल पर हैं।
जो दीप जल रहे महलो मे, वे ज्योतित शलभ काल पर है॥
जो तारे नभ मे चमक रहे, वलिदानों के स्वर्णिम अक्षर।
तरु की जड़ धरती के अन्दर, धरती मे गड़ी नीव पर घर॥

दिव्य गिरा भगवान की,
सुन सुन शासक वृन्द।
मुकुटों से लिखने लगे,
धर्म कर्म के छन्द ॥

क्षत्री वोले खड्ग की,
शपथ हमें है नाथ।
निरपराध पर कभी भी,
नही उठेगा हाथ ॥

धनुष पगों तक झुकेगा,
फिर भी यदि अन्याय।
भक्ति शक्ति का रूप धर,
वदलेगी अध्याय ॥

समवशरण मे शान्त थे,
सभी धर्म के लोग।
सव के मन में मुखर था,
महावीर का योग ॥

गणधर कुलकर प्रजाजन,
जोड़ जोड़ कर हाथ।
प्रभु के गुण गाने लगे,
सुर नर मुनि सव साथ ॥

## उद्धार

जय जय तीर्थंकर भगवान,
हमारे पूज्य लोक भगवान!
जय जय धरती के गुरु ज्ञान,
तुम्हारे बोल हमारे गान ।।

तुम्हारे तप से धरती धन्य ।
इन्द्र से पूज्य प्रकाश अनन्य ।।
हमारे दिव्य रत्न त्रय वीर ।
हमारे गीतों की लय वीर ।।

जय जय मानवता के मान,
दिव्य प्रभु युग युग के उत्थान ।
जय जय तीर्थंकर भगवान,
हमारे पूज्य लोक भगवान ।।

धन्य 'त्रिशला' धरती के वीर ।
धन्य धर्मो की दिव्य लकीर ।।
रूप अरुणोदय जैसा शान्त ।
कांति से जग का कण कण कान्त ।।

जय जय 'कुंडग्राम' के पुण्य,
हमारी धर्म ध्वजा के मान ।
जय जय धरती के गुरु ज्ञान,
हमारे पूज्य लोक भगवान!

अहिंसा के अद्भुत अवतार।
सत्य साकार शान्ति साकार ।।
पूज्य सुर असुरों से अतिवीर।
वीर प्रभु धीर वीर गम्भीर ।।

जय जय जन जन के आलोक,
ज्योति से प्रकट ज्ञान के दान।
जय जय तीर्थंकर भगवान,
हमारे पूज्य लोक भगवान!!

गणधर सुर असुर नाग नर सब, भगवान वीर की जय बोले।
तीर्थंकर की पूजा फैली, दुर्व्यसनो के आसन डोले।।
आँधी ने कहा दीपको से, तूफानों से लौ भडकेगी।
सत्यो के दीप बुझा दूँगी, दर्पण की भाषा तडकेगी।।

नगी तलवारो के आगे, उपदेश नही चलने दूँगी।
जिनसे मेरा अस्तित्व मिटे, वे पुण्य नही फलने दूँगी।।
इतनी पीड़ा बरसाऊँगी, उज्ज्वल चरित्र रोता होगा।
रोयेगा दयावान जग मे, हिंसक सुख से सोता होगा।।

माना मैं ईर्ष्या हार गई, प्रभु महावीर के त्यागो से।
जीते है महावीर स्वामी, विष वाले काले नागो से।।
माना मैं काम पराजित हूँ, भगवान वीर के सयम से।
माना मैं क्रोध नही जीता, अतिवीर धीर के सयम से।।

मैं लोभ हार कर पीडित हूँ, सन्मति ने जब सब कुछ छोडा।
मैं मोह पराजित भटक रहा, जब त्राता ने बन्धन तोडा।।
मैं प्यासा काम युक्त रस हूँ, रमणी प्रत्यचा तीर भोग।
उद्दीपन सैनिक है असंख्य, कब तक जीतेगा महायोग।।

सघर्ष बढेगे कण कण में, युद्धो की ज्वाला धधकेगी।
हर शान्ति आग बन जायेगी, जब क्रुद्ध भावना भभकेगी।।
ईर्ष्या का और विषमता का, अस्तित्व नही मिट पायेगा।
निर्ग्रन्थ ज्ञान के सूरज का, उजियाला वन मे जायेगा।।

संघर्षो के जलप्लावन मे, पृथ्वी का पता नही होगा।
जिस जगह अहिंसा जायेगी, हम सब का योग वही होगा ॥
प्रतिध्वनि में कहा देशना ने, सघर्षहीन जीवन विषाद।
यदि संघर्षो का हेतु सत्य, तो 'भरत'-रूप होता 'निषाद' ॥

बिना सिन्धु को मथे अमृत के घड़े नही मिलते।
बिना कर्म के चाहो के जलजात नही खिलते ॥

बढ़ते हुए चरण पथ की चट्टान हटाते हैं।
महावीर के हाथ शिखा पर ध्वज फहराते है ॥
वीर व्यथा की कथा न कहते कर्म किया करते।
जिनके कर्म काव्य बन जाते वे न कभी मरते ॥

कर्तव्यो के बिना कर्म के फूल नही खिलते।
बिना सिन्धु के मथे अमृत के घड़े नही मिलते ॥

कर दो मुकुट कुटी का दीपक दुख में सुख भरदो।
शासक का तन साधू का मन श्वास श्रमिक करदो ॥
टिकते है अधिकार कर्म की अचला धरती पर।
दीपक धरते रहो धर्म की सबला धरती पर ॥

धर्म कर्म के बिना कहो क्या रत्न कही मिलते ?
बिना सिन्धु को मथे अमृत के घडे नही मिलते ॥

अधिकारों के भोग रोग यमदूत बुलाते हैं।
अधिकारों के भोग चिता की गोद सुलाते है ॥
मात्र पूज्य ही नही मूर्यं पूजा का दीपक भी।
गाय खिला देती है जग को तन का घी तक भी ॥

सघर्षो के बिना सृष्टि के फूल नही खिलते।
बिना सिन्धु को मथे अमृत के घड़े नही मिलते ॥

निर्दोषो के उद्धार हेतु, रुकना कैसा झुकना कैसा ?
अपने को जब पहचान लिया, फिर अरि चाहे भी हो जैसा ॥
जो औरो के हित चलते है, वे पग बढते ही जाते है।
पर्वत हों या आंधी पानी, सूरज चढते ही जाते है ॥

भगवान वीर के साथ साथ, चल पड़ी हवाएँ गति लेती।
भगवान वीर की चरण धूलि, सिर पर हर चोटी धर लेती ।।
प्रभु एक दिवस 'कौशाम्बी' मे, आये 'कौशाम्बी' धन्य हुई।
आराध्य वीर के दर्शन कर, सब को ही खुशी अनन्य हुई ।।
लेकिन यह कौन वन्दिनी जो, कारा में अथक प्रतीक्षा सी।
आँसू तक रहे न आँखो मे, तलघर मे देवी दीक्षा सी ।।
यह वही चन्दना है जिसको, चौराहे पर नीलाम किया।
'वृषभानु' खरीद जिसे लाया, जिसने आँसू का नीर पिया ।।
यह सेठानी की ईर्ष्या से, कारा में जलती बत्ती है।
यह जल में जलती हुई आग, तलघर मे ढलती बत्ती है ।।
यह कौस्तुभ रत्न वैजयन्ती, यह रूप सिंधु की उजियाली।
'त्रिशला' की बहन ज्योति जैसी, स्याही से मिटी न यह लाली ।।
जी रही सूप के कौदो पर, जी रही ज्ञान की भाषा पर।
यह अस्थि-पंजरो की गरिमा, जीवित जाने किस आशा पर ।।
सहसा कारा के द्वार खुले, बेड़ियाँ पैर छूकर बोली।
तलघर की पीड़ित दीवारे, पग छू आँखे भर भर बोली ।।
भगवान आ रहे है देवी! कारा के बन्धन टूटेंगे।
चेतन ही क्या हम जड तक भी, जीवन के सब सुख लूटेंगे ।।
पल मे नीरवता मुखर हुई, जय महावीर जय महावीर।
मुस्कान बन गया पल भर मे, आँखो से बहता हुआ नीर ।।

वर्द्धमान विश्वधर्म, जय अनन्त जय अनन्त !
वीर धीर कर्मसूर्य, लय अनन्त लय अनन्त ।।
चरण वरण शरण सभी अजेय! जय अजेय जय।
बोल तुम रहे प्रबुद्ध अनेक लय अनेक लय ।।
अभी यहाँ अभी वहाँ अथक पृथक न तुम कहीं।
निगाह जिस तरफ गई मिले वही मिले वहीं ।।
लोकनाथ दिव्य गीत जय अनन्त वय अनन्त।
वर्द्धमान विश्व धर्म जय अनन्त जय अनन्त ।।

जयजय जिनेन्द्र जयजय जिनेन्द्र, कारा की दीवारें बोली ।
जयजय जिनेन्द्र जयजय जिनेन्द्र, दुर्गो की मीनारे वोली ॥
जय जय जिनेन्द्र जगत्राता जय, सड़के वोली गलियाँ वोली ।
जय तीर्थकर जय तीर्थकर, भौरे बोले कलियाँ वोली ॥

जय महावीर जय महावीर, बूढे बोले बालक बोले ।
जय वीरेश्वर जय सर्वेश्वर, प्राणी बोले पालक बोले ॥
भगवान वीर यात्रा पर थे, दाहिना हाथ कधे पर था ।
वाये में पिच्छी सर्वसुखद, कर पात्र कमण्डल वर कर था ॥

चन्दना हर्ष से उमड़ पड़ी, अस्थियाँ ललक कर खड़ी हुई ।
फूलो की लड़ियों में वदली, वेड़ियाँ पगो में पड़ी हुई ॥
आँखों में आशा उमड़ पड़ी, रोमाच हुआ उत्साह बढा ।
अधरो पर हर्ष हिलोर उठी, वक्षस्थल पर दृग फूल उठा ॥

चन्दना सोचती थी मन मे, आहार दे सकूँगी क्या मै ?
तीर्थंकर की पदरज सिर धर, सत्कार दे सकूँगी क्या मै ?
क्या वह पूजा कर पायेगी, जिसकी चादर पर दाग नही !
मैं कारा मे उत्सुक पूजा, क्या देगे दर्शन मुझे यही ?

वह सोच रही थी रह रह कर, घन में विजली सी दमक दमक ।
कारा के तट तक आती थी, वह शीत धूप सी चमक चमक ॥
सहसा तलघर के द्वार खुले, मानो बन्दीगृह मुक्त हुआ ।
दर्शन कर मुक्त चन्दना के, नभ धर्म कर्म से मुक्त हुआ ॥

चन्दना भूल तन मन की सुध, सूपड़ मे कौदे ले आई ।
वह अस्तव्यस्त पृथ्वी पीडा, प्रभु के दर्शन कर मुस्काई ॥
चन्दना खडी थी जिधर, उधर वन्धन हर दीन दयाल वढे ।
भगवान वीर के चरणो पर, आँसू वन वन कर फूल चढ़े ॥

मुक्त चन्दना खड़ी थी,
कोलाहल था शान्त ।
स्यादवाद साकार था,
श्याम रग था कान्त ॥

आवाहन करने लगी,
मूक चन्दना ज्योति।
चरणो तक बढती गई,
अथक वन्दना ज्योति॥

उत्सुक हो बढ़ने लगी,
भक्ति ज्ञान की ओर।
खग कलरव करने लगे,
लगे नाचने मोर॥

पड़गाहा भगवान को,
द्रवित हुए भगवान।
जिधर भक्ति थी भाव से,
उधर बढ गये ज्ञान॥

प्रकट सभी तिथियाँ हुई,
अद्भुत दृश्य महान।
खड़े भक्ति के सामने,
तीर्थंकर भगवान॥

नमन चन्दना ने किया,
किया बहुत सत्कार।
भाव भरे लेने लगे,
वर्द्धमान आहार॥

कौदों डाले चन्दना,
कौदों बनते खीर।
महिमा है भगवान की,
नीर बन गया क्षीर॥

कर पात्रों मे वीर ने,
पाई जैसी खीर।
किसी सुखी को मिल सकी,
कभी न ऐसी खीर॥

कौदो देती चन्दना,
लेती ज्ञानाहार।
मेरी श्रद्धा कर रही,
पूजा विविध प्रकार ॥

वरदान दिया तीर्थंकर ने, धूमिल शशि का उद्धार हुआ।
आहार लिया तीर्थंकर ने, शुचि धारा का सत्कार हुआ ॥
'कृषभानु' सेठ की पत्नी का, सब डाह चाह में बदल दिया।
पग छुए चन्दना के उसने, धरती पर था आलोक नया ॥

चन्दना सती के सेठानी, पग छूकर बोली, क्षमा करो।
चन्दना लिपट सेठानी से, बोली दीदी मत नयन भरो ॥
तुम बडी बहिन मैं छोटी हूँ, मुझको पदरज सिर धरने दो।
मेरी पीड़ा हर ली प्रभु ने, मुझको भी पीड़ा हरने दो ॥

जो कुछ भी मुझको मिला आज, सब आशीर्वाद तुम्हारा है।
यह कृपा बेडियों की ही है, जो प्रभु ने मुझे दुलारा है ॥
तलघर से आत्म ज्ञान पाया, तलघर से सम्यक भाव मिले।
जिनकी सुगन्ध जग मे फैली, बन्दीगृह में वे फूल खिले ॥

तुमने मेरा उपकार किया, तीर्थंकर ने आहार लिया।
तुमने मेरा उत्थान किया, तुमने मुझको सम्मान दिया ॥
मिल गई मुझे वह भाग्य ज्योति, जो बडे पुण्य से मिलती है।
खिल गई ज्ञान की वह कलिका, जो बड़े भाग्य से खिलती है ॥

मिल गये मुझे माँ! चरण वरण, सब अद्‌भुत कृपा तुम्हारी है।
देखो तो यह चन्दना आज, दृग दृग मे दिव्य दुलारी है ॥
अब आज्ञा दो मुझको माता! प्रभु के पग चिन्हों पर जाऊँ।
जो बोल रहे है तीर्थंकर, वे बोल दिशाओ मे गाऊँ ॥

सेठानी बोली राज करो, मै बनूँ श्राविका व्रत ले लूँ।
जो किया तुम्हारे साथ पाप, उनसे छूटूँ नौका खेलूँ ॥
तुम रानी रहो राज भोगो, मैं गीत तुम्हारे गाऊँगी।
जो कुछ भी मैंने खोया है, भगवान वीर से पाऊँगी ॥

बोली देवी चन्दना,
करो धर्म से राज।
पगचिन्हों पर पूर्ण के,
मै जाऊँगी आज॥

बनी चन्दना श्राविका,
सबसे श्रेष्ठ महान।
जन सेवा में लग गई,
लगा धर्म में ध्यान॥

हर्ष दिशाओं में हुआ,
गूँजे मंगल गीत।
बनी रश्मियाँ आरती,
हुई सत्य की जीत॥

महावीर भगवान की,
सम्यग्दृष्टि महान।
मिली सभी को चेतना,
पाया सब ने ज्ञान॥

कोई छोटा बड़ा क्या,
क्या ऊँचा क्या नीच।
पानी सदा श्लाघ्य है,
बहता सब को सींच॥

अर्जिका संघ युग का प्रकाश, चन्दना प्रकाश लिये घूमी।
श्राविका श्वेतवस्त्रा ज्येष्ठा, घर घर दीपक धर धर घूमी॥
बन गईं श्राविकायें लाखों, चन्दना सती की गति फैली।
श्रावक अनगिनत कर्म रत थे, चादर न किसी की थी मैली॥

सब रूप अपरिग्रह के स्वरूप, खद्दरधारी अल्पाहारी।
मुनि और अर्जिका सब सदस्य, अर्जिका सघ मे नर नारी॥
अर्जिका सघ था दिव्य शख, बजता था देश जगाता था।
जिसमें छाया जिसमे फल थे, ऐसे तरु सघ बताता था॥

वीणा के तारों के स्वर बन, साधू सन्तों के स्वर निकले।
नर-नारी लेकर धर्म ध्वजा, धार्मिक पदयात्रा पर निकले ॥
सतरगा नभ पचरंगा ध्वज, मानो बारह आदित्य उदित।
तीर्थंकर बढ़ते जाते थे, पृथ्वी को करते हुए मुदित ॥

अर्जिका सघ सर्वोदय था, सेवा के पथ पर बढ़ता था।
हिंसा के रक्तिम अधरों पर, तपता उजियाला चढता था ॥
चढता जाता था गंगाजल, घुलती जाती थी हर स्याही।
चल पड़ी उधर सारी जनता, चल पड़े जिधर भी ये राही ॥

प्रभु महावीर की वाणी से, शैतान बदलते जाते थे।
खेतों पर महावीर की जय, तपते किसान नित गाते थे ॥
ग्रामो में ग्वाल-बाल हिलमिल, पग छूते रास रचाते थे।
भगवान हमारे हम इनके, हँसते थे शोर मचाते थे ॥

सावन के झूले बोल उठे, जय महावीर जय महावीर।
कारा के ढूले बोल उठे, चन्दना गई हम है अधीर ॥
गऊओं ने इतना दूध दिया, पीते पीते थक गये प्राण।
लोकोपकार करने वाले, भरते जाते थे नये प्राण ॥

सेवा के पथ पर बढे,
गणधर सन्त अनेक।
वीर एक से एक थे,
नेक एक से एक ॥

अगणित श्रावक श्राविका,
धर्म ध्वजा थी हाथ।
जन सेवा की होड़ थी,
अनेकान्त था साथ ॥

भारत माँ सी चन्दना,
चलती फिरती ज्योति।
जन सेवा की वन्दना,
चलती फिरती ज्योति ॥

सब कलियों में रश्मि थी,
सब फूलो में वीर।
सूरज निकला भोर का,
घोर अँधेरा चीर॥

प्रातः प्रभातफेरी निकली, ध्वज आगे वढता जाता था।
हर ओर वीर की वाणी को, जो सुनता था वह गाता था॥
उठ आये सोते हुए लोग, चल पड़े संघ के साथ सभी।
वढते चरणो से यति वोली, आराम करो क्यों चले अभी ?

गति ने यति को समझा गाया, आराम कर्म से मिलता है।
क्या बोये सीचे विना कभी, उपवन मे पाटल खिलता है॥
श्रम-तप लेकर चन्दना चली, गौतम ने ली लेखनी सवल।
सोने की खेती वोल उठी, श्रम दम से है यह सृष्टि सफल॥

सेवक पद यात्रा करते थे, घर घर मे दीपक धरते थे।
जिस घर में धान न होता था, वह घर चावल से भरते थे॥
अन्धे लँगडे लूले बहरे, कहते थे हम न अपग रहे।
अजिका सघ की सेवा से, वढ गये पुण्य सव पाप बहे॥

ग्यारह गणधर विद्वान श्रेष्ठ, जीवन के मार्ग वताते थे।
जीने का जीने देने का, पथ पग पग पर समझाते थे॥
ये चमत्कार से फैल गये, अज्ञान भागने लगा दूर।
अजिका सघ के दीपो पर, घिर घिर आई आँधियाँ क्रूर॥

जो ऋद्धि-सिद्धियो के गौरव, उन पर भी पर्वत गिरते है।
जो क्षमा-दया की मूर्ति पूर्ति, वे भी दैत्यो से घिरते हैं॥
दुष्टो ने गुरुओ को घेरा, वोले अपने घर जाओ तुम।
भोली जनता को बहकाते, हम से समझो समझाओ तुम॥

रटते रहते हो ज्ञान ज्ञान, चक्कर में डाल रहे सब को।
करते हो बात अहिंसा की, धोखे मे डाल रहे सब को॥
क्या तुम में रब की ताकत है, क्या तुम मे सब की ताकत है ?
हर और दिखाई तुम देते, वक्तव्य झाडते आफत है॥

जीत हार का प्रश्न था,
बिना बात तकरार।
भभक रही थी सर्पिणी,
चमक रहा था प्यार॥

'इन्द्रभूति' पर वार था,
'वायुभूति' पर वार।
पानी पर चलती नही,
लोहे की तलवार॥

'अग्निभूति' शुचिदत्त' ने,
कहा, न कोई नीच।
विप्र शुद्र क्षत्री सभी,
रहे देश को सीच॥

कहा 'सुधर्म' सचेत ने,
त्यागो झूठ कुशील।
हिंसा चोरी जोड़ना,
दुष्ट प्रकृति यह चील॥

महावीर निर्ग्रन्थ गुरु,
हम है उनके दास।
सब जीवों के लिये है,
जो कुछ अपने पास॥

भोजन औषध अभय सब,
ज्ञानदान से न्यून।
ज्ञान प्राप्ति के सामने,
क्या सोना क्या चून?

भूमिदान दो कृषक को,
बसे अन्न में प्राण।
प्राणी का होता नही,
बिना ज्ञान के त्राण॥

गउधन गजधन रत्नधन,
सब धन परहित हेतु ।
जग प्रलयंकर सिन्धु है,
वीर सेत है केतु ॥

पाठ दिया 'मोहव्य' ने,
ग्रन्थ बने 'मेदार्य' ।
'अचल' धर्म पर अडिग थे,
वीर धर्म के आर्य ॥

कल्प 'अकम्पन' में नही,
फल से बड़ा 'प्रयास' ।
मित्र प्रकाश स्वरूप है,
आत्मा का विश्वास ॥

रश्मि सदृश थी राह में,
'मौर्यपुत्र' की बात ।
साधू पर चलती नही,
छल-छिद्रो की घात ॥

कंकड़ फेके पत्थर फेके, पेड़ों ने फल के दान दिये ।
लाठियाँ पड़ी पर लगी नही, जनता ने सीने तान दिये ॥
धरती की गर्दन कटी नही, हत्यारों की तलवारो से ।
चन्दना नाव की गति न रुकी, जल प्लावन के मँझधारों से ॥

चन्दना श्राविका की वाणी, भारत माता की वाणी थी ।
चन्दना कहो या धरती माँ, वह दिव्य भक्ति कल्याणी थी ॥
जो धर्म सिखाने आये थे, वे धर्म सीख कर शिष्य बने ।
जो मित्र रुलाने आये थे, हम उन मित्रो के मित्र घने ॥

क्रोधी विरोधियों ने उन पर, छल से बल से आक्रमण किये ।
दुष्टों ने गगाजल तक पर, काले अंगारे गिरा दिये ॥
स्याही धारा बन जाती है, धारा पर दाग नही लगता ।
श्रम और धूलि मे मिले विना, आमों का बाग नही लगता ॥

हिंसा की क्रोधी ज्वाला को, संगठन शक्ति ने ललकारा।
शासन की स्वार्थी हिंसा को, 'चन्दना' भक्ति ने ललकारा॥
कर के भारों से दबी हुई, जनता ने झंडे उठा लिये।
जो जलते गलते नही कभी, वे मन्त्र शक्ति ने फूंक दिये॥

भोगियो ! देश को मत लूटो, हीरों के मुकुटों को छोड़ो।
दुर्भिक्ष खड़ा है मुँह फाड़े, तुम दौलत घर मे मत जोड़ो॥
बढ रहे मूल्य घट रही कीर्ति, रिश्वत बढ़ती पीड़ा बढ़ती।
जनता का जीवन दुखी बना, राजाओं की क्रीड़ा बढ़ती॥

राजाओं के आराम हेतु, कर पर कर बढते जाते हैं।
भावों का कोई ठीक नही, दिन पर दिन चढ़ते जाते है॥
वेश्यालय बढ़ते जाते है, मदिरालय बढ़ते जाते है।
धीरे धीरे चुपके चुपके, परदेशी चढ़ते आते हैं॥

सती 'चन्दना' दे रही,
जन जन को उपदेश।
बढ़ता जाता संगठन,
घटते जाते क्लेश॥

देश देश भगवान के,
उपदेशो से धन्य।
मुक्त वीर भगवान है,
अंकित धर्म अनन्य॥

'काशी' 'कुरु' 'अवन्ति' में,
दिया ज्ञान ने ज्ञान।
'कौशल' 'मद्र' 'कलिग' में,
गये वीर भगवान॥

'पुड' 'चेदि' में 'वग' मे,
विचरे वीर महान्।
'मगध' 'आन्ध्र' मे 'अंग' मे,
मिला जीव को ज्ञान॥

ज्ञान धर्म के सूर्य का,
बढ़ता गया प्रकाश।
प्रलय सिन्धु को पी गये,
महावीर के श्वास॥

दुर्जन तक गाने लगे,
सज्जनता के छन्द।
भीड़ मन्दिरों में बढी,
मदिरालय थे बन्द॥

भेद भाव का अन्त था,
सब थे सज्जन सन्त।
महावीर भगवान का,
फैला ज्ञान अनन्त॥

मित्र! अर्जिका संघ में,
सब को था अधिकार।
प्राणी प्राणी एक थे,
छाया सम्यक प्यार॥

महावीर भगवान की,
अद्भुत सम्यक दृष्टि।
जन जन मे करने लगी,
प्रेमामृत की वृष्टि॥

हरिजन ने पग छू कहा,
जय मेरे भगवान।
दलितों को गुरु ने दिया,
स्वाभिमान का ज्ञान॥

घृणा न हमको स्वयम् से,
घृणा न करते श्रेष्ठ।
मानव मानव एक सब,
क्या छोटा क्या ज्येष्ठ॥

ऊँच नीच के भेद का,
किया आपने अन्त।
सुनकर वाणी आपकी,
दुष्ट हो गये सन्त॥

महावीर के पगों में,
कोढ़ी आया एक।
कोढ उड़ गया स्वर्ण तन,
रोगी शुद्ध अनेक॥

एक श्रमिक ने पगो मे,
धरा धरा का ज्ञान।
कहा पसीने ने दिये,
दुनिया भर को दान॥

मेरे श्रम से दुर्ग है,
मेरे श्रम से फूल।
धरती पर जो दृश्य हैं,
प्रकृति पुरुष के मूल॥

कहा शराबी शुद्ध ने,
खूब पिलाई नाथ!
नशा ज्ञान का चढ गया,
चला आपके साथ॥

याचक दाता हो गये,
निर्धन हुए अमीर।
ऊसर मे मोती उगे,
दिया प्यास ने नीर॥

चन्दना प्रकट थी देशभक्ति, भारत की सेवा करती थी।
दुर्बल की दुर्गा धरती माँ, हिंसा पर निज पग धरती थी॥
जब कोई साधू रोता है, सारी धरती हिल जाती है।
आँखो से गिरे आँसुओ को, सागर की गति मिल जाती है॥

भगवान वीर की ध्वनियों में, भारत माता साकार हुई।
भगवान वीर की वाणी से, भोली जनता सरकार हुई॥
अनगिनत श्राविकाएँ थी या, भारत माता के विविध रूप।
तीर्थंकर सब से बड़े सिद्ध, तीर्थंकर सब से बड़े भूप॥

भारत माता ने कहा मुझे, सत्यों के स्वर साकार मिले।
तीर्थंकर महावीर आये, उपवन उपवन के फूल खिले॥
मिल गये मुझे अनमोल बोल, मिल गई देश को अमर शक्ति।
युग युग को वीरायन देगी, यह भारत माँ की महा भक्ति॥

प्रभु महावीर की वाणी में, धरती बोली अम्बर बोला।
ब्रह्माण्ड सूक्ष्म चोले में था, आलोक पुंज ने मुँह खोला॥
धरती बन बोले महावीर, अम्बर बन बोले महावीर।
ईश्वर तीर्थंकर के पग छू, सूखे कूपों मे भरा नीर॥

निर्ग्रन्थ ज्ञान का शब्द शब्द, किरणों में है फूलों मे है।
भगवान वीर की वर वाणी, नदियों में है कूलों में है॥
'त्रिशला-नन्दन' आलोक पुज, लहरों में है पानी में है।
आहार लिया तो साधू हैं, वरदान दिया तो दानी है॥
भगवान वीर के विविध रूप, प्रभु स्यादवाद के शान्त सूर्य।
प्रभु शीतकाल के मधुर सूर्य, प्रभु नयी भोर के कान्त सूर्य॥
प्रभु कमल खिलाते किरणो से, फूलो में है उनकी भाषा।
मैं रक पुजारी चरणों का, पूरी हो मेरी अभिलाषा॥

मेरी बाधाएँ हरो,
महावीर भगवान।
लो पूजा के फूल लो,
दूर करो अज्ञान॥

अब हम किससे क्या कहें,
कर ली बन्द जबान।
आग लगी विश्वास को,
निन्दा सुनते कान॥

घुटा जा रहा जगत में,
लुटा जा रहा मित्र।
चरण आपके चाहता,
मेरा स्याह चरित्र॥

मुझे न कुछ भी चाहिए,
मुझे चाहिए ज्ञान।
मोह छुड़ा कर मुक्ति दो,
महावीर भगवान !

तुम न सुनोगे नाथ यदि,
कौन सुनेगा बात।
बात बिखर अपनी गई,
दिवस बन गया रात॥

हार बने हर कंठ मे,
वार बार की हार।
आशा है विश्वास है,
बदलेगा ससार॥

श्वास श्वास में बस गये,
महावीर भगवान।
मित्रो! अब आपत्ति क्या,
अब कैसा अज्ञान॥

# अनन्त

अनन्त ज्ञान ज्योति से, रात जगमगा उठी।
उषा गुलाल ज्योति का, गाल पर लगा उठी॥

अनन्त ब्रह्मचर्य का, अपार बल प्रकाश था।
अनन्त सुख मिला हमें, अपार प्यार पास था॥
मोक्ष मार्ग रत्न तीन, रूप वीर के महान।
पूज्य है चरित्र मित्र! व्यर्थ कागजी विधान॥

अनन्त साम्य ज्योति से, बात जगमगा उठी।
अनन्त ज्ञान ज्योति से, रात जगमगा उठी॥

चरित्र यदि उठा नही, विचार दान व्यर्थ है।
चरित्र यदि दिया नही, अधर्म है अनर्थ है॥
चरित्र वीर ने दिया, पवित्र सृष्टि हो गई।
न वृष्टि थी जहाँ वहाँ, अभीष्ट वृष्टि हो गई॥

अनन्त शक्ति भक्ति से, ज्योति जगमगा उठी।
अनन्त ज्ञान ज्योति से, रात जगमगा उठी॥

जगमगा उठा प्रभात, जगमगा उठा चरित्र।
जिस जगह गये जिनेन्द्र, पाप हो गये पवित्र॥
अनन्त साम्य भाव था, अनन्त न्याय नीति थी।
अनन्त नीर क्षीर था, अनन्त गाय नीति थी॥

श्राविका प्रसाद हेतु, फूल फल लगा उठी।
अनन्त ज्ञान ज्योति से, रात जगमगा उठी॥

अगणित आदित्यों से निर्मित तन ज्योतित मन ।
चन्दन वन इन्द्रेश्वर ।
अर्चित श्री चर्चित श्री ।
मन्त्रोदय ज्ञानोदय ।
नवधा निधि ऋद्धि सिद्धि ।
चतुषश्री स्वामी वीर ज्ञान सुख दर्शन धीर ।
रत्न त्रय सम्यग्दृष्टि ।
सम्यक चरित्र मूर्त,
सम्यक दर्शन स्वरूप,
ज्ञान ध्यान सम्यक सेतु,
त्रय रत्न सारे शास्त्र ।
मोक्ष मार्ग के प्रकाश ।
अभिवादन बार बार ।
अर्चन अहिंसा से ।
पूजा जय दीपो से ।
गीतो से आरती उतारते रहेगे हम ।
झरनों का अर्घ्य वर्य पर्वत चढाते है ।
स्यादवाद सगीतज्ञ दीपक जलाते है ।
फूल वायुयानो से सौरभ उड़ाते है ।
एक घाट बकरी शेर पानी पी जाते है ।
हिंसक पशु स्वर सुन सुन धेनु बन जाते है ।
सिंह गउमाता को खाना खिलाते है ।

साधना सिद्धि हुई ।
अर्चना वृद्धि हुई ।
वर्द्धमान क्या आये रत्नो की वर्षा हुई ।
बाल ब्रह्मचारी वीर ।
प्यासो के लिएं नीर ।
शीतल समीर धीर ।
अग्नि के शरीर सौम्य ।

ज्योतिवन्त सुख अनन्त शाश्वत वसन्त सन्त ।
सक्षम वे विराट वे ।

रक्तपात होते थे शासक गण सोते थे ।
मनचले दीवाने रक्त बीज बोते थे ।
होते थे अत्याचार इतिहास रोता था ।
पृथ्वी के आँगन का फूल मुँह धोता था ।
धर्म कर्म खोये थे ।
ज्ञान से स्वर थे भिन्न सम्बन्ध टूटा था ।
इच्छा का शासन था, वासना प्रहरी थी ।
हिंसक दुपहरी थी ।
धर्म की कथाओ मे श्रोतागण बहरे थे ।
प्रकट तब ज्योति हुई ।
तप का तन, गति का मन,
सागर समन्वय का पर्वत सब धर्मों का ।
चारों दिशाओं मे वाणी का हुआ नृत्य,
जन जन को मिला ज्ञान ।
ज्ञान के सूरज से घर घर मे खिली धूप,
चरणो में झुके भूप ।
मुक्त हुए भारत भक्त ।
"चन्दना कारा में वन्दिनी प्यासी थी ।"
तीर्थंकर आयेंगे आँखों में आशा थी ।
आहार लेंगे वे ।
सत्कार लेंगे वे पूजा का पीड़ा का ।

एक दिन आये वीर ।
तीर्थंकर महावीर ।
कारा के खुले द्वार,
हाथों की हथकड़ियाँ पैरों की जंजीरे—
झनझन झन गिरी टूट ।

चन्दना चरणों में मुक्ति की पूजा थी।
मुक्त थी ऐसे वह जैसे अब भारत माँ।
महावीर स्वामी ने स्वीकार पूजा की।
पाषाण प्रतिमा को जीवन का दिया दान।
मानो 'अहल्या' का उद्धार दर्शन था।
प्रभु का यह पावन मर्म प्रभु का यह मानव धर्म,
धरती पर अंकित है अम्बर में अंकित है।
धर्म वह शाश्वत जो। कर्म वह हितकर जो।
मर्म यह समझाया, भारत को दुनिया को।
वाणी हर ओर गई, गीत हर ओर उगे।
पूजा से पाषाणी चन्दना भक्ति बनी।
भारत की शक्ति बनी॥
कौदों की बनी खीर।
आहार स्वीकारा कौदो का दाता ने।
सुख पाया माता ने।
जिस तरफ बढ़े पैर वृद्धियाँ होती गईं।
कुरीतियाँ खोती गईं।
वीर की वाणी ही गाँधी की वाणी बनी—
भारत आजाद हुआ।
भारत 'प्रह्लाद' हुआ।
अद्भुत आह्लाद हुआ।
शान्ति चाहते हो यदि कान्ति चाहते हो यदि।
ऋद्धि चाहते हो यदि वृद्धि चाहते हो यदि।
पूजों सब उनके पैर चलो सब उनकी राह
राह जो चल चल कर।

शब्दो मे है उनकी सुगन्ध, जो भूमि बने सहते सहते
नदियो मे है उनका पानी, जो सिन्धु बने बहते बहते
वे धरती वे आकाश मित्र, जो केवल ज्योति जागरण है
उनकी वाणी मेरी वाणी, जो केवल शुद्ध आचरण है

वे पग मेरे मन के गुलाब, जो पग काँटों में फूल बने।
वे स्वरालोक मेरे स्वर हैं, जो जल प्लावन में कूल बने॥
दीपो मे वे दिल बोल रहे, जो जल जल उजियाला देते।
वाणी उनकी पूजा करती, जो सुधा पिला विष पी लेते॥

तीर्थंकर महावीर मेरे, हर ओर दिखाई देते हैं।
धनवान सभी धनवानों के, निर्धन की पूजा लेते हैं॥
श्रद्धा के फूल चढ़ाता हूँ, मनचाहे मोती पाता हूँ।
वे मौन स्वरो मे बोल रहे, मैं जोर जोर से गाता हूँ॥

वे महावीर वे धर्मवीर, वे मुक्तवीर वे शुद्ध वीर।
वे दयावीर मेरे दीपक, जो हर प्यासे के लिए नीर॥
वे बोल रहे मैं लिखता हूँ, वे कहते है मै सुनता हूँ।
जो बिखरे पड़े मन्दिरो मे, वे फूल दृगो से चुनता हूँ॥

लिख लिए गगन ने ध्रुव अक्षर, विद्युत की स्वर्ण उजाली से।
फूलो में मुखरित ज्ञान ग्रन्थ, तप से उज्ज्वल हरियाली से॥
जो शब्द महात्माओ के है, वे शब्द चयन कर लाया हूँ।
तीर्थंकर महावीर के स्वर, दुनिया मे गाने आया हूँ॥

ये बोल पर्वतो से लाया, ये बोल हवाओ से लाया।
ये शब्द सूर्य से लाया हूँ, ये शब्द दिशाओ की काया॥
ये स्वर सरिताओं के स्वर हैं, ये स्वर उत्ताल तरगों के।
ये गीत अमृत से भरे घड़े, ये रग अनेक अरगों के॥

अनमोल बोल लाया, आलोक घोल लाया।
ये फूल ज्योति के है, इनमे न मोह माया॥

ये शब्द शून्य के है, ये शब्द भाव भीगे।
ये फूल मन्दिरों के, ये फूल चाव भीगे॥
हर दिन मुझे पढाता, हर रात गीत गाती।
यह वीर वाङ्मय है, कविता मुझे न आती॥

वे बहुत दूर मुझसे, मैं बहुत पास आया।
अनमोल बोल लाया, आलोक घोल लाया॥

मैं साथ चल रहा हूँ, मैं साथ गा रहा हूँ।
गोते लगा लगा कर, ये रत्न पा रहा हूँ॥
जो कुछ पढ़ा सुना है, तुमको सुना रहा हूँ।
हुंडी बहुत पुरानी, मैं अब भुना रहा हूँ॥

मेरी अनाम काया, मेरी अनाम माया।
अनमोल बोल लाया, आलोक घोल लाया॥

तस्वीर वीर की फिर, साकार हो रही है।
उस नाम की कहानी, पतवार हो रही है॥
जो गीत हर गली का, वह गीत गा रहा हूँ।
जो बोल सो गये थे, उनको जगा रहा हूँ॥

मैं बोलता वही हूँ, जो वीर ने बताया।
अनमोल बोल लाया, आलोक घोल लाया॥

नदियो मे ककड़ गिरते है, सघर्ष सभी ने झेले है।
तीर्थंकर नारायण तक भी, काले नागो से खेले है॥
बालक 'प्रह्लाद' भक्त तक पर, कितने कितने तूफान गिरे।
उनका न बाल बॉका होता, जो कभी सत्य से नही फिरे॥

'ध्रुव' का प्रताप कब मिट पाया, 'ईसा' की याद न मिट पाई।
'गाँधी' जी का बलिदान देख, लोहे की गोली शर्माई॥
जय सदा अहिसा की होती, हिसा की विजय नही होती।
यह और बात है कभी कभी, मेघो में उजियाली खोती॥

यह दुनिया है इस दुनिया मे, कोई हँसता कोई रोता।
कोई बोकर काटा करता, कोई सोता बोता बोता॥
कैसा सुख कैसा दु.ख यहाँ, जग मे जीना आसान नही।
जो जग में अधिक भला होता, उसका जग में कल्याण नही॥

अपने भी यहॉ सताते है, अपने भी यहॉ रुलाते है।
प्राय. अपने ही हाथो से, हम अपनी दशा बुलाते है॥
आशा से मन ने रोग लिया, तृष्णा ईर्ष्या से भटक रहे।
कुछ भवसागर से पार हुए, कुछ अर्ध 'त्रिशकू' लटक रहे॥

कैसी विचित्र जग की क्रीड़ा, तज पाते मिथ्या ज्ञान नही।
जड़ जड़ है चेतन चेतन है, गुरु ज्ञान कही नादान कही॥
हम भोग रहे है ज्ञान मित्र! यह ज्ञान नही, क्या जीम रहे?
जब घोर नरक में मन भटका, प्रभु महावीर के शब्द कहे॥

मिल गई पूर्ति मिल गई ज्योति, जग में जीने का ज्ञान मिला।
भगवान वीर की वाणी से, गिरती गति को उत्थान मिला॥
बढते चरणों की चापो से, सुरभित उजियाला चमक उठा।
तृण तृण में वाणी मुखर हुई, कण कण में सूरज दमक उठा॥

ज्योति श्री सुरभित,
सुगन्धित हवा गाती है।
हर दिशा मुखरित,
तपस्या गुनगुनाती है॥

गुनगुनाती है अहिंसा बीन की धुन मे।
गीत गाती है तपस्या शान्त गुनगुन में॥
वीर की वीणा मधुर स्वर से जगाती है।
शान्ति की क्रीड़ा मधुर मुरली बजाती है॥

गीत गाता ज्ञान,
हिंसा गुल मचाती है।
ज्योति श्री सुरभित,
सुगन्धित हवा गाती है॥

ज्ञान की बाते न सुनते मद भरे प्याले।
प्यार के जल से न धुलते हृदय के काले॥
दुष्ट दर्शन मार्ग में बाधा बढाता है।
पेड़ ऊसर भूमि में सज्जन लगाता है॥

डाह की डायन,
बहुत किस्से बढ़ाती है।
ज्योति श्री सुरभित,
सुगन्धित हवा गाती है॥

हर सुगन्धित वायु जग में वीर की वाणी।
ज्ञान गहनों से सुसज्जित भूमि का प्राणी॥
ज्योति के अक्षर धरा के कागजो पर है।
विविध सन्यासी सजग स्वर विविध शकर हैं॥

आँधियों से गगन की लौ,
बुझ न पाती है।
ज्योति श्री सुरभित,
सुगन्धित हवा गाती है॥

सीचे से पेड़ हरे होते, अधिकार कर्म से फलते हैं।
पहले बलिदान दिये जाते, तब दिये देश मे जलते है॥
सौरभ से भरे गुलाब लाल, काँटे मे हँसते खिलते हैं॥
जो गहरे गहरे जाते है, मोती उनको ही मिलते है॥

संसार-सिन्धु में सब कुछ है, जिसकी जो इच्छा हो लेले।
जो तैर नही सकता डूबे, जिसमे दम है नौका खेले॥
कोई साधू निर्ग्रन्थ ज्ञान, सुख पाता है सुख देता है।
कोई व्रत जप तप से उठ कर, निर्वाण प्राप्त कर लेता है॥

कर्मो के बन्ध तभी मिटते, जब कर्म न करने को रहता।
जीवन अनन्त बन जाता है, प्यासो के हित बहता बहता॥
जप तप तब तक जब तक न ज्ञान, जब साध्य मिला फिर साधन क्या?
जब मुक्ति मिले फिर इच्छा क्या, आराध्य मिला फिर साधन क्या?

जो मुक्त हो गये कर्मो से, वे तप से आगे शुद्ध शान्त।
जो हर इच्छा से पूर्व पूर्ति, वे युग युग के आलोक कान्त॥
कर्मो के जितने बन्धन थे, सब महावीर से छूट गये।
स्वागत को मोक्ष पगो मे था, सब घडे सिन्धु में टूट गये॥

आत्मा अबद्ध शुचि असयुक्त, एकत्व रूप उज्ज्वल अनन्य।
शुद्धात्मा मे शुचि शासन है, शुद्धात्मा मे सब फल अनन्य॥
मिथ्यात्व बन्ध का कारण है, अज्ञान हटे तब मोक्ष मिले।
जब मिथ्यादृष्टि मोह त्यागे, तब अमर ज्योति का फूल खिले॥

जब भेद नही रहता कोई, आत्मा निर्मल हो जाता है ।
सोना ज्वाला में तप तप कर, सुरभित सोना कहलाता है ।।
ज्ञानी ज्ञानत्व नही तजता, ज्वाला पी और चमकता है ।
सूरज मे ज्वाला का प्रकाश, सूरज में वीर दमकता है ।।

जीवन इतना शुद्ध हो, निन्दक मिले न एक ।
यदि कोई निन्दा करे, मिले न उसको टेक ।।

दिव्य वही दाता वही, जिसका हर पग राह ।
जिसमे चाहे सभी की, अपनी एक न चाह ।।

ज्ञान विजय की ज्योति है, ज्ञान सृष्टि का सार ।
ज्ञान धर्म का रूप है, ज्ञान मोक्ष का द्वार ।।

चलो देखकर राह में, रखो सँभल कर पैर ।
कैसी किससे मित्रता, कैसा किससे वैर ।।

कर्म शुभाशुभ बन्ध सब, ज्ञान मोक्ष का मन्त्र ।
मित्र ! कर्मक्षय के बिना, जीव भूमि पर यन्त्र ।।

कर्म बन्ध का रूप है, कर्म बन्ध का भाव ।
ज्ञान मोक्ष का मार्ग है, ज्ञान मोक्ष का चाव ।।

जब तक मिटते है कर्म नही, तब तक आना जाना रहता ।।
जीवन अनन्त हो जाता है, ज्ञानोदधि तक बहता बहता ।
तीर्थंकर कर्मो से ऊपर, सब ओर उजाले के स्वरूप ।
जप तप के बन्धन तोड बढे, आलोक पुज अद्‌भुत अनूप ।।

चल दिये कर्म के बन्धन तज, बढ चले सिद्धियो से आगे ।
जागरण कमाने को देकर, सोये न कभी ऐसे जागे ।।
तज दिये पदार्थो के प्रपच, पुद्‌गल से पृथक् प्रकाश हुआ ।
सद्‌भाव प्राणियो में फैले, सद्‌कर्मो का अभ्यास हुआ ।।

त्रिशलासुत तीर्थंकर अनन्त, नातो से नाते तोड चले ।
धर्मो को दीपक दिखा दिखा, कर्मो के बन्धन छोड चले ।।
जिस ओर जहाँ तक दृष्टि गई, तीर्थंकर के दर्शन पाये ।
जब भी आँखो ने पूजा की, तीर्थंकर आँखों मे आये ।।

हर ओर कर्म से पृथक् मुक्त, हर ओर मुक्त की वाणी थी।
हर तरफ पूज्य की पूजा मे, धार्मिक जनता कल्याणी थी॥
इच्छा ज्ञानोदधि में जल थी, तृष्णादि नीर मे नीर बनी।
मुक्तेश्वर महावीर में घुल, इच्छाएँ अद्भुत वीर बनी॥

अणु से विभु विभु से अणु विराट, जो मुक्त वीर वह गुरु अनन्त।
तीर्थंकर के गुण गाते है, दुनिया भर के सामन्त सन्त॥
गुण गाते है उस ज्ञानी के, जो ज्ञान सिन्धुओ के जल है।
पूजा पुकारती है उनको, जिनमे अद्भुत अनन्त बल है॥

अभिमान ज्ञान का है जिनको, वे मुक्त नही हो सकते है।
जो कमी देखते औरो में, वे दाग नही धो सकते हैं॥
जो सम्यग्दृष्टि अनन्त हुए, उनका आचरण वरण होता।
अधिकार मोक्ष का उनको है, जिनका पग चरण धरण होता॥

कर्ममुक्त भगवान ने, काटे सारे बन्द।
स्वयम् मुक्त सब कर्म से, मुझे दे गये छन्द॥

पुद्गल या परमाणु में, शब्द भेद गुण एक।
आत्मा की तस्वीर के, जग में नाम अनेक॥

जड़ चेतन मे दुख सुख, सब मे चेतन व्याप्त।
जड़ की परिणति चेतना, अनेकान्त मे आप्त॥

आत्मा की काई हटी, गगा बना शरीर।
शुद्ध जिन्दगी सूर्य है, शुद्ध जिन्दगी नीर॥

वह है अनन्त जो सब में है, ईश्वर अनेक रूपो में है।
जल पर धरती धरती पर जल, पानी पर्वत कूपो मे है॥
अद्भुत समर्थ उज्ज्वल अनन्त, ईश्वर सन्तो के सन्त हुए।
तीर्थंकर महावीर स्वामी, कर्मो से मुक्त अनन्त हुए॥

कहने सुनने या चिन्तन से, ज्ञानी को मिलता मोक्ष नही।
वह ज्ञानी मोक्ष प्राप्त करता, जिसके हित शेष न कर्म कही॥
जो परिचित मोक्ष रूप से है, उसको भी मोक्ष नही मिलता।
जब कोई कर्ममुक्त मिलता, पूजा का फूल तभी मिलता॥

चिन्ता करने या गाने से, क्या वन्ध किसी के कटे कहो ?
इच्छा यदि मोक्ष प्राप्ति की है, तो मत वन्धन में मित्र रहो ॥
प्रज्ञा से वन्ध काट डालो, आत्मा से वन्ध अलग कर दो ।
प्रज्ञा कारण से मुक्तात्मा, आत्मा परमात्मा में भरदो ॥

आत्मा से अन्य भाव त्यागो, पर द्रव्यों में कुछ सार नहीं ।
आत्मा निर्दोष अनन्त शुद्ध, जिस पर चलती तलवार नही ॥
आत्मा प्रकृति से बँधा हुआ, दुःखों मे सुख खोजा करता ।
आत्मा कष्टो से वँधा हुआ, प्रतिदिन जीता प्रतिदिन मरता ॥

आत्मा निर्द्वन्द्व अकर्ता को, कर्मो की कारा से छोड़ो ।
क्यों वन्ध कुम्भ मे वन्द पड़े, जागो यह कच्चा घट फोड़ो ॥
भगवान वीर ने भारत को, दुर्भाग्यों से स्वाधीन किया ।
आनन्द लोक जन जन को दे, सब कर्मो से सन्यास लिया ॥

सुरपति नरपति ऋषि मुनि ज्ञानी, पद-चिन्हों की रज सिर धरते ।
तीर्थंकर आगे वढ़ते थे, घन घिर घिर कर गाया करते ॥
'पावापुर' के पावन पथ पर, आये विहार करते करते ।
पत्तो की वीणा वजती थी, घर घर में पवन फूल धरते ॥

यह पथ 'पावापुरी' का, तप करते तरु ताड़ ।
या धरती पर वीर के, दिये ज्ञान ध्वज गाड़ ॥
महावीर भगवान को, मिला जहाँ निर्वाण ।
दर्शन कर उस भूमि के, मिले मित्र को प्राण ॥
कमल खिले जो ताल में, उपदेशों के फूल ।
ताल वन गया जव उठी चुटकी चुटकी धूल ॥
'पावापुर' में गूंजते, उपदेशों के गीत ।
महावीर की मुक्ति के, गाता गीत अतीत ॥
महावीर भगवान का, हुआ यहाँ निर्वाण ।
उड़ती यहाँ सुगन्ध है, दर्शन देते प्राण ॥
'पावापुर' में गूंजते, 'विपुलाचल' के गीत ।
मौन प्रकृति में मुखर थी, महावीर की जीत ॥

तन कपूर बन उड़ गया, शेष रहे नख केश।
महावीर भगवान की, सुरभि रह गई शेष॥
'जल मन्दिर' में मोक्ष के, खिले हुए हैं फूल।
फूल फूल में वीर के, उपदेशों के मूल॥

आत्मा अनन्त शुचि अप्रमेय, आलोक लोक हो गये व्याप्त।
फैला प्रभात छाया प्रकाश, 'पावापुर' में थे मुक्त शान्त॥
जब कर्मों के बन्धन छोड़े, वीणा स्वतन्त्रता की बोली।
अरुणाभ उजाला फैल गया, थी उषा सृष्टियों की रोली॥

हर ओर सुगन्धित झरने थे, हर तरफ रश्मियाँ फूलों पर।
स्वाधीन तितलियाँ गाती थी, हर तरफ हवा के झूलों पर॥
खग-कुल गाते थे ज्ञान-गीत, रटती थी मोक्ष मोक्ष धरती।
भारत माता धरती माता, मुक्तेश्वर की पूजा करती॥

कल्याणक मोक्ष हुआ ऐसा, जैसा सुषमा सुषमा का सुख।
धरती पर केवल ज्ञान रहा, धरती पर रहा न कोई दुख॥
पृथ्वी की हँसती आँखों में, भगवान दिखाई देते थे।
भारत माता के बेटों में, सम्मान दिखाई देते थे॥

अपने चित्रों की भाषा मे, धरती माता ने कथा कही।
सत्यो मे और अहिंसा में, पृथ्वी की पुस्तक मुखर रही॥
पृथ्वी ने मुझको गीत दिये, नीरवता ने दे दिया ज्ञान।
संगठित शक्ति में मुखर हुआ, भारत माता का स्वाभिमान॥

धरती माँ को सन्तोष हुआ, मुझ जैसी शक्ति अहिंसा है।
जन जन मे ज्ञान मुक्त का है, प्राणी की भक्ति अहिंसा है॥
धनहीन नहीं बलहीन नहीं, धरती पर कोई दीन नहीं।
कैसा भी कही अभाव नही, भिक्षुक न कही भूखे न कही॥

सारे सुख थे सब को सुख थे, नभ में से ज्यादा दीप जले।
नभ में दीपोत्सव होते थे, स्वर दीप छोड़ भगवान चले॥
दीवाली को निर्वाण हुआ, घर घर में लक्ष्मी बिखर गई।
काई की कविता साफ हुई, आत्मा की कविता निखर गई॥

जिनके मिलने से मिले, मनवांछित फल-फूल ।
मित्रो! चन्दन वन बनी, उन चरणों की धूल ।।

माँगे पर जो दान दे, उस धन का क्या अर्थ ।
दृग नीचे कर, कर उठा, करते दान समर्थ ।।

ऐसे दाता वीर थे, याचक बने नरेश ।
वीर दे गये सभी को, माँगे बिना अशेष ।।

आलोक पुंज अद्‌भुत अनन्त, तीर्थंकर अन्तर्द्धान हुए ।
साकार सत्य में विलय हुआ, मोक्षेश्वर केवल ज्ञान हुए ।।
सौरभ में प्रभु के गीत मिले, आदर्शों में आलोक मिले ।
अम्बर में केवल दीप जले, धरती पर केवल कमल खिले ।।

मेरा जीवन दीपक जैसा, अक्षत जैसा रोली जैसा ।
मैं रंगबिरंगा दीपक हूँ, 'वृन्दावन' की होली जैसा ।।
मैं चौराहे पर लुटा चाँद, मैं हूँ डाली से गिरा फूल ।
मैं अपनों ही से ठगा हुआ, बन गया बुरा हो गया शूल ।।

ऋणविद्ध जल रहा हूँ रह रह, तलवार शीश पर लटक रही ।
उनकी छुरियाँ भी कंठहार, मेरी पूजा भी खटक रही ।।
कितना असत्य कितना अनर्थ, तम सूरज को तम कहता है ।
जिसको अपने सुख सौंप दिये, वह निन्दा करता रहता है ।।

यह ऐसा युग है इस युग मे, अच्छा होना है बहुत बुरा ।
इस युग में सज्जन पीड़ित है, सहता रहता विष-भरा छुरा ।।
बल दो अनन्त भगवान मुझे, विष पीता पीता थकूँ नही ।
सत्युग बन कर उपकार करूँ, कलयुग न कभी भी बनूँ कही ।।

मेरे दु:खो से दीप जले, मेरे काँटों में फूल खिले ।
मैं गाऊँ तो कोयल रीझे, मैं रोऊँ तो भगवान मिले ।।
बोलूँ तो सद्ग्रन्थो जैसा, नाचूँ तो 'मीरा' सा नाचूँ ।
प्रश्नो में और उत्तरों में, पूजा की कविताएँ बाचूँ ।।

मुझमें हिम की शीतलता हो, मुझमें धरती की काया हो।
मुझमें किरणो के झरने हों, मुझमें तरुओं की छाया हो॥
पथ बनूँ चरण-चिह्नो पर चल, तपता तपता तप बन जाऊँ।
भगवान! तुम्हारे गुण गाये, भगवान! तुम्हारे गुण गाऊँ॥

वे तपे इतने तपे,
इंसान थे भगवान है।
वे चले इतने चले,
पथ बन गये गुरु ज्ञान है॥

वे विविध उनमे विविध, वे चल अचल उत्थान है।
वे है सभी उनमें सभी, वे फूल वे उद्यान हैं॥
मैं मिला उनसे मिला, हर बाग में हर राग मे।
मैं शलभ उनका शलभ, हर दीप मे हर आग मे॥

वे बसे मुझमें बसे,
वे मुक्त कवि के गान है।
वे तपे इतने तपे,
इंसान थे भगवान है॥

आरती भारती करती है, दीपो से धरती भरती है।
उपवन उपवन पूजा करता, हर दिशा आरती करती है॥
रश्मियाँ दीपमालाएँ है, चाँदनी भक्ति की उजियाली।
ये गीत सुमन है श्रद्धा के, इन गीतों में मन की लाली॥

स्वाधीन देश के फूलों से, भारत माँ पूजा करती है।
भगवान वीर के चरणो मे, 'गाँधी' की थाती धरती है॥
सुन्दर आँखो की गगा से, मानवता चरण पखार रही।
बढते चरणो से ज्ञान मिला, बढते चरणो से नदी बही॥

धरती माता की भाषा में, वे बोल सुनाई देते है।
उत्थानो के ज्ञानोदय से, सूरज तक शिक्षा लेते है॥
लो उनकी पूजा का प्रसाद, जो स्वाद बन गये हैं मेरे।
वीरायन परिक्रमा उनकी, मैं घूम रहा जिनको घेरे॥

जो कुछ वीरायन में गाया, वह जन जन मे गा कर जीलूँ।
अपने गीतो के अधरों से, सारे समाज का विष पीलूँ ।।
आशाएँ 'अगर वत्तियाँ' है, चाहे दीपक वन जलती है।
भगवान वीर के चरणो में, राहे दीपक वन जलती है ।।

सुख मिले सभी को इसी लिए, छन्दों से पूजा करता हूँ।
शिव के ओठो से विष पीता, आँखो के दीपक धरता हूँ ।।
ये बोल तपस्या के स्वर है, मैं भी गाऊँ तुम भी गाओ!
ये गीत ज्ञान के गाये है, इन गीतो में घुल मिल जाओ ।।

मेरे गीतो के तीर्थंकर! ये गीत सुमन स्वीकार करो!
हर आँसू के आधार बनो, हर निर्धन का उद्धार करो!!
मैं फूल फूल का बोल नाथ! मैं आँसू आँसू का मन हूँ।
मैं मन्दिर मन्दिर का गायक, मैं पूजा पूजा का धन हूँ ।।

जय जय महावीर भगवान।
जय जय केवल ज्ञान महान ।।

रश्मियाँ फूलों पर गातीं।
फुहारे झूलों पर गाती ।।
तुम्हारी चरण धूलि चन्दन।
तुम्हारा गीतों से वन्दन ।।

जय जय धरती के उत्थान।
जय जय महावीर भगवान ।।

निवारण दुःखों का करते।
धर्म के दीपों को धरते ।।
तुम्हारा काल नाग पर पग।
तुम्हारा दिशा दिशा में डग ।।

जय जय लोक लोक के ज्ञान।
जय जय महावीर भगवान ।।

अनन्त

जय जय सब भोगों के त्याग ।
जय जय वीतराग के राग ॥
जय जय जय दुखियो के ध्यान ।
जय जय महाकाव्य के ज्ञान ॥

जय जय जय जन जन के ध्यान ।
जय जय महावीर भगवान ॥

जो वीरायन काव्य को,
पढे सुनाये मित्र !
ज्ञान बढे श्रद्धा बढे,
जीवन रहे पवित्र ॥

महावीर भगवान की,
कथा बड़ी अनमोल ।
वीरायन मे मुखर है,
महावीर के बोल ॥

अभिमत फल दातार है,
वीरायन के बोल ।
वीरायन मे गुथे है,
मित्रो ! सुख अनमोल ॥

जो सप्रेम इस कथा को,
गाये विविध प्रकार ।
ज्ञान ध्यान निशि-दिन बढे,
वैभव बढे अपार ॥

उन्नति हो पदवृद्धि हो,
यश धन बढे अपार ।
उन्नति का आधार है,
वीरायन का सार ॥

गूंगे को वाणी मिले,
लंगड़ा पाये पैर।
महावीर के नाम से,
दुश्मन छोड़े वैर॥

मृत्यु टले जीवन मिले,
लाभ बढे दिन रात।
महावीर भगवान की,
बात बात में बात॥

वीर युगों के धर्मध्वज,
वीर सत्य के सूर्य।
वीर विश्व की विजय है,
मित्र वीर का तूर्य॥

# युगान्तर

महावीर भगवान को, बना रहा हूँ मूर्ति ।
बोलेगी जब मूर्ति यह, तब समझूँगा पूर्ति ।।
गीतकार कहने लगा, मूर्तिकार को चूम ।
मूर्ति बोलती गीत मे, गीत रहे हैं झूम ।।
मौन सुरभि नीरव धरा, मौन नही हैं मित्र !
भूमि बोलती मूर्ति मे, बोल रहा है इत्र ।।
मूर्तिकार की मूर्ति मे, गीतकार के गीत ।
गीत गीत मे मुखर है, मुक्तेश्वर की जीत ।।
चित्रकार के चित्र में, स्यादवाद के रग ।
रग रग मे विविध स्वर, रग रग के ढग ।।

विपुलाचल के स्वरदीपो से, आरती उतारी कण कण ने ।
पत्थर पत्थर पर मूर्ति बना, हर रग भर दिया तृण तृण ने ।।
उन श्वासो के उन गीतों के, अम्बर मे अकित चित्र हुए ।
जो पाप पंक मे पीड़ित थे, वे सुन सुन गीत पवित्र हुए ।।

पत्ते पत्ते पर वीर कथा, पत्थर पत्थर पर वीर कथा ।
जिससे जीवन का सुधा मिला, ज्ञानेश्वर ने वह सिन्धु मथा ।।
वह ज्ञान दे गये दुनिया को, जिसका उजियाला शाश्वत है ।
वह मान दे गये भारत को, जिसकी हर माला शाश्वत है ।।

यह धरा धर्म से ठहरी है, यह गगन धर्म से ठहरा है ।
हर धर्म मूल का विविध रूप, हर ध्वज त्यागो से फहरा है ।।
हर मुक्ति मिली है जप तप से, हम धन्य वीर की वाणी से ।
यह बात कह रहा हूँ मित्रो ! बाते करके हर प्राणी से ।।

जो नही अहिंसा का दीपक, वह नही उजाला हो सकता।
जो गंगा बन कर बहा नही, वह दाग न काला धो सकता॥
जो त्यागी है वह योद्धा है, जो क्षमाशील वह वीर व्रती।
जो सहनशील वह धरा गगन, युग युग का सूरज धीर व्रती॥

प्रभु महावीर की वाणी से, कविताओं को मिलता प्रकाश।
स्वाधीन देश के फूलो मे, तीर्थंकर का खिलता प्रकाश॥
'गाँधी जी' के सिद्धान्तों में, प्रभु महावीर की वाणी थी।
जन जन के हित के लिए मित्र, जिन की वाणी कल्याणी थी॥

ओ मूर्तिकार, ओ चित्रकार, ओ शिल्पकार, ओ कलाकार।
निर्मिति निर्मिति मे मुखरित हो, सन्देश देशना का प्रचार॥
फिर भ्रष्टाचार बढे जाते, फिर दुखी देश फिर दुखी धरा।
आलोक पुज की धरती पर, हर ओर शोर है 'हाय मरा'!

देखो तो यह कौन है,
जड़वत् बिल्कुल मौन।
सहती है कहती नही,
वृद्धा युवती कौन?

मन मन मे तूफान आँधियाँ है काली पीली।
हृदय हृदय में आग देश की आँखें हैं गीली॥

उन उजलों से सावधान जो काले मन वाले।
तड़प रहे है नगे भूखे छलक रहे प्याले॥
सोने की दीवारो में है 'सीता' के आँसू।
महावीर के भारत में है 'गीता' के आँसू॥

मन्दिर की प्रतिमा पूजा के फूलों ने छीली।
मन मन में तूफान आँधियाँ है काली पीली॥

चित्रकार! हृदयो के काले चित्र लाल करदो।
गीतकार स्वाधीन देश मे अमर गीत भरदो॥
मूर्तिकार पाषाण तरासे मन न तरासे क्यो?
धरती पर रहने वाले है दूर धरा से क्यों?

वीरों के प्यारे भारत की देह हुई नीली ।
मन मन में तूफान आँधियाँ है काली पीली ।।

देखो यह प्यारा भारत है या कंकाल खड़ा ।
वस्त्रहीन भूखी जनता है या यह दुखी वड़ा ।।
झुकी हुई है कमर हाथ में है खाली प्याला ।
या कोई साधू तप करता आसन है ज्वाला ।।

उधड़ी पड़ी खाल अपनों ने खाल बहुत छीली ।
मन मन मे तूफान आँधियाँ है काली पीली ।।

और कौन यह दूर दूर तक जिसकी काया है ।
कौन मौन यह जिससे सब ने जीवन पाया है ।।
खिला रही है स्वय न खाती गोद नही खाली ।
खाली कभी नही रहती है इस माँ की थाली ।।

जाने किस पीड़ा से इसने निज वाणी सी ली ।
मन मन में तूफान आँधियाँ है काली पीली ।।

बलिदानो से स्वाधीन देश, तम में प्रकाश को खोज रहा ।
जनता ने कितने दु ख सहे, जन प्रतिनिधियो से कुछ न कहा ।।
भारत माता चुपचाप दुखी, दर्शन के पृष्ठ विचार रही ।
आँखों में गीली आँखे है, पीडा के चित्र निहार रही ।।

तप से स्वतन्त्रता आई थी, काँटों की माला पहना दी ।
किसने गगा की धारा को, बल खाती ज्वाला पहना दी ।।
यह मन्दिर मित्र ! अहिसा का, जिस मे हिसाएँ होती है ।
जो दूध दिया करती हमको, वे कटती है वे रोती है ।।

यह कौन घास के बदले में, जीवन को गिरवी धरती है ।
यह कौन भूख से तडप तडप, तन बेच बेच कर मरती है ।।
यह कौन रात दिन कविता लिख, दाने दाने को तरस रहा ।
यह कौन रम्य लाचारी पर, अगारा बन कर बरस रहा ।।

यह सड़क रक्त से रँगी पड़ी, यह गली लहू से लाल हुई।
यह कौन क्रान्ति का विगुल बना, यह कौन 'द्रौपदी' काल हुई।।
यह कौन कर रहा बम-वर्षा, यह कौन पी रहा है प्याले।
यह कौन नोचता सिंहासन, यह कौन तोड़ता है ताले।।

ये किसकी आँखो में आँसू, यह किसकी आँखों में ज्वाला।
यह बगुला भक्त कौन देखो, यह कौन बाँह में है काला।।
देखो तो उठ कर राज पुरुष! यह कौन न जो पीड़ा कहती।
पूछो तो कलाकार जा कर, यह कौन मौन जो है सहती।।

ये अद्भुत अनुपम कौन मित्र! उपकार कर रही है सब का।
ये कौन दिव्य है शक्ति भक्ति, सत्कार कर रही है सब का।।
पग छुओ आरती करो मित्र! जनता की वाणी में गाओ।
इनके अधरो के बोल बनो, इनकी पीडा मे घुल जाओ।।

मस्तक पर ज्योति का तिलक।
भाल पर उषा की लाली।
आँखों में सारे युग।
कानो में सब के बोल।
अधरो पर मौन,
कौन तुम कौन?

रूप, जिसकी उपमा नही।
कभी छाया कभी धूप।
कभी सुबह कभी शाम।
कभी दिन कभी रात।
फूलों के आभरण,
तारों के आभरण,
गति में यति, यति मे गति,
घूमते बढते चरण।
पानी के अन्दर,
पानी के बाहर।

सहती हो सब कुछ,
कुछ भी न कहती हो।
कौन सी तुम मे शक्ति,
कौन सी तुम में भक्ति ?

अर्चन तुम्हारा तन।
तन में हर मन्दिर है।
पूजा का हर दीपक—
देह से बनाया है देह से जलाया है।
देह से निर्मित दुर्ग,
देह से निर्मित घर
जितना है दृश्य जगत—
धरती की महिमा से, मिट्टी के तत्त्वो से।
क्रोधानल जल से पी शान्ति की महिमा तुम,
उज्ज्वल अहिंसा हो।
आँसू से पीडित हो जब कभी काँपी तुम,
काँपे तब पर्वत तरु,
काँपा तब झंझानिल।
काँपी दिशाएँ सब,
दिन मे निशाओ के कालभूत करते त्रस्त
अस्त्रो से शस्त्रो से खाली, उजाली तुम,
पल भर मे गर्वीले तुम मे मिल जाते है।
गर्त मे धँस धँस कर गड्ढे बन जाते है।
विस्फोटक अणु उद्जन धूलि बन जाते है।
शान्ति के जल की शक्ति,
शक्ति की पावन भक्ति,
जीव को जीवन शक्ति।

धर्म पर दृढ हो तुम,
मौन व्रत रत हो तुम
शुद्ध हो शाश्वत हो।

जीवों के हित हो तुम।
सब कुछ तुम्हारे पास
कुछ भी न अपने हित,
कितने प्रहारों को रात दिन सहती हो,
कुछ भी न कहती हो,
अद्भुत क्षमा हो तुम,
अद्भुत दया हो तुम,
ममता हो पूजा हो।
बोलो कुछ बोलो तो!
मौनव्रत खोलो तो!

सूक्ष्म तुम विराट तुम,
सागर तुम घाट तुम,
पेड़ों के रूपों मे,
ऊँचे पहाड़ो में,
राहो मे चाहो मे,
महिमा तुम्हारी है—
मिट्टी के धरती के मानो हम शिशु है सब!
तुम ही तो भोजन हो, तुम ही तो पानी हो,
'सीता' की माता हो, 'लव कुश' की नानी हो—
या कही कवियो की बीती कहानी हो?
बोलो तुम बोलो कौन?
खोल दो अपना मौन?

धरती के स्वर फूटे मुनियो की वाणी मे,
मुखरित थी पृथ्वी माँ गीतों की ध्वनियो में।
गउओ के दूध से रसना पर गूजे छन्द।
दु खो में धैर्य के गीतो के गूजे गीत,
शान्ति से बोले फूल,
शान्ति से बोले कूल,

डाली पर झूल झूल लहरों से खेल खेल।
फूलो ने कूलों ने,
धरती के गाये गीत,
हँस हँस कर रो रो कर—
स्वाधीन भारत में,
धरती के आँगन में,
माता के मन्दिर मे कवियो की वाणी थी।

शोर है पीड़ित प्राण।
मिलता नही है त्राण।
'बापू' की थाती पर—
नृत्य और गाने हैं।
धर्म के दीपो पर—
आँधियाँ मँडराती।
भूले सब धर्म कर्म,
रिश्वत की दुनिया है,
पैसे का शासन है।
सोने के अक्षर हैं।
काँटो का आसन है।

सगीत छिडा वीणा गूंजी, जनता की वाणी गीत बनी।
मित्रो! अतीत पर वर्तमान, तप के ऊपर तलवार तनी॥
तीर्थंकर तप तप मुक्त हुए, 'गाँधी' जी के स्वर मौन हुए।
शिव के पीछे पड गये असुर, वरदाता 'शंकर' मौन हुए॥

वरदान 'वृकासुर' को देकर, शकर भागे भागे फिरते।
जिनके तप से मैं धरा टिकी, वे साधु सकटो से घिरते॥
जो भले भलाई करते है, वे चलते हे अगारो पर।
जो राह प्यार की चलते है, वे चलते हैं तलवारो पर॥

दुनिया बदली सब बदल गया, तुम कलाकार कब बदलोगे ?
कब तक याचना करोगे तुम, कब नयी क्रान्ति कर सँभलोगे ?
सब की चिन्ता करने वाले, साधू ! अपना भी ध्यान करो ।
जीते हो मेरे लिये लाल ! लिख लिख भूखे तो नही मरो ।।

अब ऐसे 'राजा भोज' नही, जो कवि को अपना मन माने ।
अब नही 'शिवाजी' सा कोई, जो कवि 'भूपण' को पहचाने ।।
दोहे दोहे पर गिन्नी दे, 'जयसिह' 'विहारी' नही रहे ।
अब नही 'रहीम' मित्र जिनसे, 'क्यो दृग नीचे कर उठे ? कहे' ।।

हर मन्दिर मे भगवान वहुत, भक्तो का नाम निशान नही ।
भारत मे सभी विधायक है, विधि-पीडित, कही विधान कही ।।
कहने को है गणतन्त्र मित्र ! पर राजतन्त्र में होश नही ।
दुर्भिक्ष अन्नदाता के घर, ढूंढे न मिला सन्तोप कही ।।

पूजा अपमानित होती है, सभ्यता रक्त मे रँगी पडी ।
जिसका सुत फाँसी पर झूला, रो रही वही माँ खडी खडी ।।
आँसू की कीमत नही रही, वलिदानो का सम्मान गया ।
स्वप्नो का भारत मूर्च्छित है, भापण तक है भगवान नया ।।

चारो ओर अनर्थ है, जगह जगह तकरार ।
चला रहे तलवार सब, जता रहे है प्यार ।।

भूल गये कर्तव्य सब, शेप रहा अधिकार ।
जन जीवन मँझधार मे, नाव पडी मँझधार ।।

सत्युग को आवाज दो, कलयुग करता राज ।
सन्त दुखी सज्जन दुखी, नहीं किसी को लाज ।।

ज्ञान गया गरिमा गई, चारो ओर कुचक्र ।
चोरो का ससार है, घर घर घोर कुचक्र ।।

आजादी इतनी मिली, नगा हुआ समाज ।
शासक परम स्वतन्त्र है, चारो ओर अराज ।।

वहुत दुखी हर व्यक्ति है, वहुत दुखी है देश ।
स्वतन्त्रता परतन्त्र है, न्याय नही है शेष ।।

धर्म कर्म के वृषभ पर, श्रम शिव रहे सवार ।
दुःख हरे मंगल करे, निर्वाचित सरकार ।।

महावीर भगवान का, फैलाओ सन्देश ।
देशवासियो! देश को, दे दो अमृत अशेष ।।

जन जन की पीड़ा वोल उठी, जय महावीर जय महावीर।
'दुःशासन' पुनः हरण करता, नारी के तन पर ढका चीर ।।
शासक मद में मतवाला है, कुर्सी कुर्सी पर मनमानी ।
दो दिन की सव की दुनिया है, हर चीज़ यहाँ आनी जानी ।।

सन्तोष नही सुख चैन नही, नैतिकता नही विवेक नही!
अम्वर में भण्डा फहर रहा, धरती पर ध्वज की टेक नहीं ।।
जीवन शराव में वहता है, यौवन पैसों पर विकता है ।
नीलाम हो रही देशभक्ति, हर श्वास तवे पर सिकता है ।।

जीने को तो हम जीते है, लेकिन यह भी क्या जीना है ।
रोटी न रही पानी न रहा, आँसू का आँसू पीना है ।।
डाकू भारत को डसते हैं, हिंसा की सीमा नही रही ।
जो शिक्षक था जो दाता था, खाली हाथो है आज वही ।।

रोटी कपड़े की चिन्ता मे, हर व्यक्ति चिता सा जलता है ।
रोटी ज़िन्दों को खाती है, अपना अपनो को छलता है ।।
'गाँधी वावा' के भारत में, भगवान खेत पर भूखे हैं ।
जो पेड़ लगाये गुरुओ ने, वे पेड़ विना जल सूखे हैं ।।

हर महल रुदन से भरा पडा, हर कुटी दुखी टुकड़ा न रहा ।
आकाश वरसता पीड़ा से, पर्वत टूटे कुछ भी न कहा ।।
नेताओ को सन्तोष नहीं, सन्तोष न है धन वालो को ।
परिणाम सताने का क्या है, क्या पता न मन के कालो को ।।

नंगी हथकड़ियाँ घूम रही, सम्मान किसी का नही रहा।
भारत माता के आँगन में, भूखे पेटों से रक्त बहा॥
कहते हैं सुनता कौन आज, रोने का कुछ भी अर्थ नही।
दे गये दिगम्बर ज्योति जहाँ, तम के तीखे उत्पात वही॥

शान्ति नही है कही व्यक्ति को,
पैसा पैसा पैसा !
कैसी कैसी बाते हैं अब,
वक्त व्यक्ति पर कैसा ?

न्याय नही विश्वास नही है,
नही कुओं में पानी।
प्यार नही सत्कार नही है,
नंगी बेईमानी॥

धर्म नही है कर्म नही है,
कर्ज बहुत है सिर पर।
कॉय कॉय दुनिया भर में है,
हाय हाय है घर घर॥

ऐसा समय नही देखा था,
समय आ गया जैसा।
शान्ति नही है कही व्यक्ति को,
पैसा पैसा पैसा !

रहा न अब विश्वास मित्र का,
पथ से भटक गये सब।
स्वतन्त्रता क्या करे विचारी,
धर्महीन जीवन जब॥

सब के सब स्वाधीन मित्र हैं,
अपने अपने स्वर में।
घर घर मटियाले चूल्हे हैं,
पीड़ा है घर घर मे॥

रूप हमारा कैसा कैसा,
देश हमारा कैसा ?
शान्ति नही है कही व्यक्ति को,
पैसा पैसा पैसा !

बिना धर्म के कर्म व्यर्थ सब,
धरा धर्म से ठहरी।
स्वतन्त्रता की ध्वजा देश मे,
वीर धर्म से फहरी ॥

देश दुखी आचरण भ्रष्ट से,
पीड़ा तकरारो से।
निर्माणो, के महल दुखी है,
मन के अगारो से ॥

स्वतन्त्रता की कस्तूरी में,
जीवन है मृग जैसा ।
शान्ति नही है कही व्यक्ति को,
पैसा पैसा पैसा !

निर्माण कर रहे कुछ योगी, विध्वस कर रहे कुछ भोगी।
आजाद देश तप का फल है, मत नष्ट करो गाता जोगी ॥
ये कैसे पुल वन रहे आज, कल पानी में वह जाते है।
हम आगे वढते जाते है, पर पीछे ही रह जाते हैं ॥

युग वदला वदल गई दुनियाँ, झूठे ईमान नही वदले।
प्रभु महावीर के भारत मे, गाँधी जी सच्ची राह चले ॥
गाँधी जी की वाणी गूँजी, या महावीर स्वामी वोले।
जो सारे वन्धन तोड गये, वे वोल वुझाते है शोले ॥

अनमोल वोल वे धरती पर, भारत में स्वतन्त्रता लाये।
उनके पद-चिह्नों के दीपक, तम में प्रकाश वन कर आये ॥
उन धर्मवीर की वाणी से, भारत में मुक्त वीर जागे।
उन दानवीर की वाणी से, धनवान वन गये हतभागे ॥

दुर्गा वन शक्ति अहिंसा ने, योद्धाओं में भर दिया रक्त।
यह शक्ति अहिंसा है जिसने, वीरो के हाथो लिया तक्त।।
'तीर्थकर दयावीर के स्वर, हर युग में रक्षा करते है।
यह स्यादवाद की महिमा है, चित्रांकित दीपक घरते हैं।।

सिंहासन आसन उसको दो, जिसको गद्दी का मोह नही।
जो सर्प इन्द्रपद से चिपटे, 'जनमेजय'! फूँको उसे वही।।
ओ मेरे निर्वाचित साधू, तुम दीपक हो अँगारे हो।
मत वार करो विश्वासों पर, तुम माता पिता हमारे हो।।

जो शक्ति देश में दीख रही, उन चरणों की जो अथक चले।
दीपो से सूरज प्रकट हुए, दुनिया मे इतने दीप जले।।
वे वीर खिल रहे फूलों में, जो मिले देश के पानी में।
ये कमल नही पगचिह्न मित्र! जो खिले देश के पानी में।।

खुला न कोई द्वार है, वन्द न कोई द्वार।
अन्धकार पर ज्योति का, रूपक है संसार।।

दीप दीप में वीर हैं, गीत गीत मे वीर।
नीर क्षीर मे वीर हैं, जीत जीत में वीर।।

ज्ञान मिला सब कुछ मिला, क्या दौलत क्या चाह।
साथ हमारे हर समय, महावीर की राह।।

राह नही तब तक मिली, जब तक मिले न आप।
आप मुझे जब मिल गये, छूटे सारे पाप।।

तुम भाषा तुम भाव हो, तुम मन्दिर तुम मूर्ति।
तुम कवियो की कामना, तुम युग युग की पूर्ति।।

निर्धन कवि धनवान है, रत्न रत्न में यत्न।
'वीरायन' में सिद्धियाँ, यत्न हुए त्रय रत्न।।

तुम चलते चलते राह,
तुम्हारी थाह अथाह अनन्त।
मैं प्रभु के पथ का पथिक,
पथिक की चाह अथाह अनन्त।।

मैं हूँ पूजा का गीत, गीत मैं हूँ हर भापा का।
मैं हूँ श्रद्धा का दीप, दीप मैं सब की आशा का॥
मेरी भूलों को चरणों से फूलों में बदल दिया।
तुम तब तब मेरी प्यास! पास जब जब भी याद किया॥

तुम युग युग के उत्साह,
तुम्हारा मुक्त प्रवाह अनन्त।
तुम चलते चलते राह,
तुम्हारी थाह अथाह अनन्त।

तुम मुझ से छिपते रहे, न मेरे स्वर से छिप पाये।
तुम मेरी पीडा देख दु.ख मे सुख बन कर आये॥
तुम आये बन कर गीत, गीत हर वाणी पर गूँजा।
तुम मेरे मन के फूल, फूल पर हर मधुकर गूँजा॥

मुझ में चलने की चाह,
तुम्हारी राह अथाह अनन्त।
तुम चलते चलते राह,
तुम्हारी थाह अथाह अनन्त॥

मैं बढा पकडने साँप आपने मुझको पकड लिया।
मैं बौना अम्बर बना आपने मुझको गगन दिया॥
मैं पढा लिखा था नही आपने मुझको पढा दिया।
मै पैरो में आ पडा आपने सिर पर चढा लिया॥

मुझ मे दीपक का दाह,
दाह में चाह अथाह अनन्त।
तुम चलते चलते राह,
तुम्हारी थाह अथाह अनन्त॥